ગુજરાત રાજ્યના શિક્ષણવિભાગના પત્ર-ક્રમાંક
મશબ-1215/178/છ, તા.24-11-2016થી--મંજૂર

इतिहास

कक्षा 12

प्रतिज्ञापत्र

भारत मेरा देश है।
सभी भारतवासी मेरे भाई-बहन हैं।
मुझे अपने देश से प्यार है और इसकी समृद्ध तथा बहुविध परम्परा पर गर्व है।
मैं हमेशा इसके योग्य बनने का प्रयत्न करता रहूँगा।
मैं अपने माता-पिता, अध्यापकों और सभी बड़ों की इज्जत करूँगा एवं हरएक से नम्रतापूर्वक व्यवहार करूँगा।
मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने देश और देशवासियों के प्रति एकनिष्ठ रहूँगा।
उनकी भलाई और समृद्धि में ही मेरा सुख निहित है।

રાજ્ય સરકારની વિનામૂલ્યે યોજના હેઠળનું પુસ્તક

ગુજરાત રાજ્ય શાલા પાઠ્યપુસ્તક મંડલ
'વિદ્યાયન', સેક્ટર 10-એ, ગાંધીનગર - 382010

© गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल, गांधीनगर
इस पाठ्यपुस्तक के सर्वाधिकार गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल के अधीन हैं।
इस पाठ्यपुस्तक का कोई भी भाग किसी भी रूप में गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल के नियामक की लिखित अनुमति के बिना प्रकाशित नहीं किया जा सकता।

विषय-सलाहकार
डॉ. के. सी. बारोट

लेखन-संपादन
डॉ. एम. जे. परमार (कन्वीनर)
डॉ. जी. टी. सरवैया
डॉ. जनक गढ़वी
डॉ. नयना त्रिवेदी
डॉ. नरेन्द्र परमार

अनुवाद
डॉ. वीरेन्द्र नारायण सिंह
श्री राजेश सिंह क्षत्रिय

समीक्षा
डॉ. किशोरीलाल कलवार
श्री उपमा सिसोदिया
श्री अवधेशकुमार जे पांडेय

चित्रांकन
श्री ग्राफिक्स

संयोजन
डॉ . राघवजी माधड
(विषय-संयोजक : गुजराती-संस्कृत)

निर्माण-आयोजन
डॉ.कमलेश एन. परमार
(नायब नियामक : शैक्षणिक)

मुद्रण-संयोजन
श्री हरेश एस. लीम्बाचीया
(नायब नियामक : उत्पादन)

प्रस्तावना

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के अनुसार गुजरात माध्यमिक और उच्चत्तर माध्यमिक शिक्षण बोर्ड ने नये पाठ्यक्रम तैयार किए हैं। ये पाठ्यक्रम गुजरात सरकार द्वारा मंजूर किए गए हैं।

गुजरात सरकार द्वारा मंजूर किए गए **कक्षा 12, इतिहास** विषय के नये पाठ्यक्रम के अनुसार तैयार की गई इस पाठ्यपुस्तक को विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल आनंद अनुभव कर रहा है।

इस पाठ्यपुस्तक का लेखन तथा समीक्षा विद्वान शिक्षकों और प्राध्यापकों से करवाई गई है। समीक्षकों के सुझावों के अनुरूप पांडुलिपि में योग्य सुधार करने के बाद यह पाठ्यपुस्तक प्रकाशित की गई है। गुजराती में लिखी गई मूल पाठ्यपुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है।

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक को रोचक, उपयोगी और क्षतिरहित बनाने के लिए मंडल ने पर्याप्त सावधानी रखी है। फिर भी शिक्षा में रुचि रखनेवाले व्यक्तियों से पुस्तक की गुणवत्ता में वृद्धि करनेवाले सुझावों का स्वागत है।

एच. एन. चावडा
नियामक

डॉ. नीतिन पेथाणी
कार्यवाहक प्रमुख

दिनांक.27-3-2017

गांधीनगर

प्रथम आवृत्ति : 2017

प्रकाशक : गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल, 'विद्यायन', सेक्टर 10-ए, गांधीनगर की ओर से एच. एन. चावडा, नियामक

मुद्रक :

मूल कर्तव्य

भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह* –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करनेवाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आवाहन किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो; ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले;

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने बालक या प्रतिपाल्य के लिए यथास्थिति शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

* भारत का संविधान : अनुच्छेद 51–क

अनुक्रमणिका

1.	पूर्वभूमिका और अर्वाचीन भारत के इतिहास की आधार सामग्री	1
2.	18वीं सदी के उत्तरार्ध में भारत में सत्ताप्राप्ति हेतु संघर्ष	7
3.	भारत में यूरोपीय आगमन	12
4.	भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासनतंत्र	19
5.	1857 का संग्राम	24
6.	कंपनी शासन का आर्थिक प्रभाव	35
7.	सामाजिक और धार्मिक सुधार का आंदोलन	42
8.	राष्ट्रीय आंदोलन (1857-1919)	52
9.	स्वराज के लिए संघर्ष (ई.स. 1919-1947)	69
10.	प्रगति का मार्ग एवं सुदृढ़ राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया	80
11.	आधुनिक युग का आरंभ	93
12.	19वीं सदी के अंत में विश्व की स्थिति से प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति तक	101
13.	ई.स. 1919 से 1939 के बीच का विश्व	111
14.	द्वितीय विश्वयुद्ध (1939-1945)	120
15.	द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद का विश्व	126
16.	समकालीन विश्व में राजनीति, अर्थनीति एवं समाज	135
17.	विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के कारण समाज तथा संस्कृति में परिवर्तन	142

●

CERTIFICATE OF THE MAPS

1. © Government of India, Copyright 2016
2. The responsibility for the correctness of internal details rests with the publisher.
3. The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
4. The external boundaries and coastlines of India agree with the Record/Master Copy certified by Survey of India.
5. The state boundaries between Uttarakhand & Uttar Pradesh, Bihar & Jharkhand and Chattisgarh & Madhya Pradesh have not been verified by the Governments concerned.
6. The spellings of names in this map, have been taken from various sources.

1 पूर्वभूमिका और अर्वाचीन भारत के इतिहास की आधार सामग्री

ऐतिहासिक साधन-सामग्री (दस्तावेज) के बिना हम इतिहास नहीं जान सकते हैं, इसीलिए कहा गया है कि ''दस्तावेज नहीं तो इतिहास नहीं।'' ऐतिहासिक सामग्री विभिन्न प्रकार की होती है। वह अलिखित अर्थात् पुरातत्त्वीय और लिखित अर्थात् साहित्यिक तथा अन्य अभिलेखित सामग्री, जो लिखित विषयों से संबद्ध है।

इतिहासकार ऐसी विभिन्न सामग्री का अध्ययन करके उनमें से सत्य को अलग करके हमारे समक्ष रखते हैं। इतिहास लेखन के लिए इतिहासकार बहुत सारे सामाजिक विज्ञान जैसे कि समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, भूगोल और मनोविज्ञान का भी आधार लेते हैं। तो प्राकृतिक विज्ञान जैसे कि भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, जीवशास्त्र, पुरातत्त्वशास्त्र, नृवंशशास्त्र का सहयोग भी प्राप्त करता है। पुरातत्त्वशास्त्र और भूगोल के विकास से इतिहास लेखन खूब समृद्ध बना है। इतिहास में समय और स्थान का विशेष महत्त्व होने से भूगोल को इतिहास की आँख कहा जाता है। नेपोलियन की प्रसिद्ध उक्ति है कि ''आप मुझे किसीभी राष्ट्र के भूगोल के विषय में बताइए, मैं आपको उस राष्ट्र का इतिहास बताऊँगा।'' ऐसे विविध विज्ञानों के साथ-साथ इतिहासकार मौखिक परंपराओं के अध्ययन द्वारा भी इतिहास जानने का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। इसीलिए कहा गया है कि ''इतिहास मानवजीवन की प्रयोगशाला है।''

भारत के संपूर्ण इतिहास में आधुनिक भारत का इतिहास और उसमें भी स्वातंत्र्य संग्राम दरम्यान देश की मुक्ति के लिए हुए आंदोलन अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। प्रजा की संवेदना, पीड़ा और बलिदान के साथ जुड़ा यह महान मुक्ति संग्राम होने से यहाँ लगभग 200 वर्ष की गुलामी से मुक्त होने के संघर्ष हम सब इस पुस्तक में समाहित प्रकरणों में समाहित माध्यम से रूबरू होंगे।

अर्वाचीन भारत का इतिहास जानने के लिए काफी अनुपात में ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई है। भारत में राष्ट्रीय अभिलेखागार (दिल्ली) और राज्य स्तर पर (गांधीनगर) स्थित अभिलेखागार में इस जानकारी का संग्रह किया गया है। उसमें से आधुनिक भारत की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति पर प्रकाश डालनेवाले दस्तावेजों, ग्रंथों और पुस्तकों का समावेश होता है। 18वीं, 19वीं और 20वीं सदी के पूर्वार्ध का लगभग 200 वर्ष का समय इतिहास लेखन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। भारत में आई विदेशी कंपनियों और उनके साथ संबद्ध जानकारियों को इस आधार सामग्री में से हम अलग कर सकते हैं। इसके लिए आवश्यक जानकारी क्रमबद्ध रूप से नीचे अनुसार देख सकते हैं :

पुर्तगाली साधन-सामग्री

पुर्तगाली नाविक वास्को-द-गामा भारत आया (ई.स. 1498) तब से (लेकर 1963 तक की) पुर्तगाली इतिहास के साथ जुड़ी साधन-सामग्री का यहाँ समावेश होता है। इस समय से संबंधित महत्त्वपूर्ण दस्तावेज भारत में पुर्तगलियों के मुख्य केन्द्र रहे गोवा से मिले हैं। साथ-साथ तत्कालीन पुर्तगाली शासनतंत्र द्वारा भारतीय पुर्तगाली कंपनी का पत्रव्यवहार और दस्तावेजों का समूह पुर्तगाल की राजधानी लिसबन में संग्रहित किया गया है। भारत के आधुनिक इतिहासकारों ने इन दस्तावेजों का अध्ययन करके पुर्तगाली कंपनी का इतिहास भी तैयार किया है। गोवा और लिसबन के दस्तावेजों पर आधारित एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ एफ.सी.

डनवर्स ने 'रिपोर्ट ऑन दी पुर्तगीज़ रिकाड्र्स' (1892) प्रकाशित किया। सुरेन्द्रनाथ सेन जैसे भारतीय इतिहासकार ने गोवा के दस्तावेजों का अध्ययन करके विस्तृत रिपोर्ट तैयार किया है। पुर्तगाली गवर्नर और पर्यटकों की टिप्पणी में से भी तत्कालीन भारतीय इतिहास हमें जानने को मिलता है। वास्को-द-गामा, आल्बुर्क्क, डोमेंगो पायेज़, डुअर्टी बार्बोसा तथा पादरी मोन्सरेट ने तत्कालीन भारत के विषय में महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ लिखी हैं। तत्कालीन भारतीय भाषाओं में से भी पुर्तगलियों के विषय में बहुत-सी जानकारी प्राप्त होती है। मुगल शासकों, बीजापुर, गोल कोंडा, विजयनगर जैसे भारतीय राज्यों के साथ पुर्तगालियों के संबंधों पर विशेष जानकारी मिलती है। डॉ. जी. एम. मोरायस ने 'हिस्ट्री ऑफ क्रिश्चियानिटी इन इंडिया' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में पुर्तगालियों की भारत में हुई प्रवृत्तियों का अहवाल दिया है। भारतीय विद्या भवन ग्रंथ श्रेणी के आधुनिक भारत से संबंधित ग्रंथों में भी डॉ. आर. सी. मजमूदार जैसे समर्थ इतिहासकार और अन्य इतिहासकारों ने भारत में पुर्तगाली राज्य शासन का अहवाल और इतिहास लिखा है। 'मुंबई गेजेटियर' और 'केम्ब्रिज इंडियन हिस्ट्री' ग्रंथ श्रेणी में भी भारत में पुर्तगाली राजनैतिक और आर्थिक प्रवृत्तियों की विपुल जानकारी मिलती है। पुर्तगाली कंपनी भारत में 'एस्टाडोडा इंडिया' के रूप में जानी जाती थी। उसका भारतीय शासनकर्ताओं के साथ हुए पत्राचार से भी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है।

डच साधन-सामग्री

V.O.C. वेरिनिस्सी उस्ट इंडीज केम्पेयन - Vereenigde Oost-Indische Compagnie के रूप में पहचानी जाती डच ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत के साथ संबंध की ऐतिहासिक जानकारी उसके मुख्यालय बटाविया में से काफी मात्रा में उपलब्ध है। एमस्टर्डम के केन्द्रीय अभिलेखागार में से भी भारत के साथ डच प्रजा के राजनैतिक और व्यापारिक संबंधों की जानकारी प्राप्त होती है। इसके उपरांत कोचीन, चीनसुरा, कोलंबो, हेग और रीगा जैसे भारतीय और विदेशी केन्द्रों के कार्यालयों में से भी डच ईस्ट इंडिया कंपनी के विषय में ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। श्रीलंका के कोलंबो से डच ईस्ट इंडिया कंपनी के 8000 से भी अधिक दस्तावेज प्राप्त हुए हैं। कृषियर, गेलेटि, बर्ग और गृह जैसे इतिहासकारों ने इस कंपनी के साथ जुड़े लगभग 15 आधुनिक ग्रंथ संपादित किए हैं।

फ्रांसीसी साधन-सामग्री

फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ जुड़े महत्त्वपूर्ण दस्तावेज फ्रांस के पेरिस में स्थित केन्द्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित हैं। भारत में उनकी महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ चेन्नई, मैसूर और हैदराबाद के साथ जुड़ी थीं। उसके सरकारी अभिलेखागार में इस कंपनी की प्रवृत्तियों का इतिहास प्राप्त होता है। 17वीं और 18वीं सदी में भारत आए बर्नियर, टेवरर्नियर और थेवेनो जैसे फ्रेंच पर्यटकों की पर्यटन-टिप्पणी में से भी इस समय का इतिहास और विशेष तो भारत की आर्थिक परिस्थिति का उल्लेख मिलता है। इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी लंदन और दिल्ली के राष्ट्रीय अभिलेखागार में इस कंपनी से संबंधित दस्तावेज संग्रहित हैं। आधुनिक ग्रंथों में जी.बी. मेलेसन की पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ दी फ्रेंच इन इंडिया' महत्त्वपूर्ण है। इसके अलावा डॉडवेल का मद्रास आज्ञापत्रों का कैलेंडर तथा डुप्ले ऐंड क्लाइव ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है। हिल और फोरेस्ट जैसे लेखकों ने भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

लोरेन्स का ग्रंथ 'एंगलों फ्रेंच वार' महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्रदान करता है। आनंदरंग पिल्लाई की टिप्पणियाँ और एंग्लो फ्रेंचवार को बारह ग्रंथों में प्रकाशित किया गया है। विलकिन्स द्वारा लिखित 'दक्षिण भारत के इतिहास की रूपरेखा' भी ऐतिहासिक सामग्रीयुक्त ग्रंथ होने से पर्याप्त जानकारी देता है :

ब्रिटिशकालीन साधन-सामग्री

भारत में ब्रिटेन की ईस्ट इंडिया कंपनी का (1757 से 1857) शासन रहा है। तत्पश्चात् (1858 से 1947) ब्रिटिशताज का शासन रहा। भारत पर लगभग 200 वर्ष जितना लंबे समय तक अंग्रेजों का शासन होने से ब्रिटिशकालीन इतिहास जानने के लिए अधिक संख्या में ऐतिहासिक दस्तावेज मिलते हैं। लंदन में इंडिया ऑफिस पुस्तकालय में भारत को जानने के लिए लगभग 50,000 जितने ब्रिटिशकालीन ग्रंथ हैं। इतना ही नहीं, दिल्ली स्थित भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार में भी ब्रिटिशकालीन भारत से संबंधित कई दस्तावेज प्राप्त होते हैं। भारत के अधिकांश क्षेत्रों में 1857 तक ब्रिटिशशासन स्थापित हो गया था। जिससे विभिन्न भारतीय प्रदेशों में स्थित अभिलेखागारों और पुस्तकालयों में काफी संख्या में ग्रंथ संग्रहित हो गए । आधुनिक भारतीय तथा तत्कालीन अंग्रेज इतिहासकारों ने भी ब्रिटिशकालीन भारत पर महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं। अंग्रेज इतिहासकारों और लेखकों में वी. ए. स्मिथ, पी. ई. रॉबर्ट्स, थोम्बसन एंड गॅरेट, सर विलियम जॉन्स, कर्नल टोड, एलेक्जेंडर फार्बस, वाइसरॉय कर्जन, कर्नल वॉकर तथा जे. डब्ल्यू. वॉटसन का समावेश होता है। थोम्बसन ऐंड गॅरेट ने 'केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया' नामक ग्रंथ में ब्रिटिशकालीन भारत का आलेखन किया है।

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासनकर्ताओं पर भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। क्लाइव और वॉरन हेस्टिंग्ज जैसे प्रारंभिक गवर्नर जनरल के जीवन और चरित्र के विषय में श्रेष्ठ पुस्तकें लिखी गई हैं। इसी तरह कॉर्नवोलिस, वेलेस्ली, विलियम बेटिंग, ऑकलैंड, एल.एन. बरो, डलहौजी, लिटन, रिपन, कर्जन और माउंट बेटन के जीवन और चरित्र विषयक पुस्तकें लिखी गई हैं। इन पुस्तकों में गवर्नर जनरल के वाइसरॉय की भारत नीति संबंधी चर्चा की गई है। जिसमें उनके विभिन्न सुधार और साम्राज्य नीति का समावेश होता है। इस क्षेत्र में पोलवेल का 'लेंड सिस्टम ऑफ ब्रिटिश इंडिया' महत्त्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है।

ई.सन् 1857 के महाविप्लव से संबंधित साधन-सामग्री

भारत में 1857 के महाविप्लव के विषय में विशेष करके स्वतंत्रता के बाद अधिक अनुपात में साहित्य लिखा गया है। इस महाविप्लव से संबंधित दस्तावेज भारतीय पुरातत्त्व विभाग तथा लंदन की कॉमन वेल्थ कचहरी के ग्रंथालय में संग्रहित हैं। इस महाविप्लव के विषय में सर्व प्रथम (1859) सर सैयद अहमद ने लिखा था। उसके बाद वीर सावरकर ने 1857 के महाविप्लव को 'भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' नामकरण देते हुए पुस्तक लिखा। सुरेन्द्रनाथ सेन ने सबसे महत्त्वपूर्ण कहा जा सके, ऐसा 'अठारह सौ सत्तावन' नामक ऐतिहासिक ग्रंथ लिखा। स्वातंत्र्योत्तर भारत में इस महाविप्लव के विषय में काफी बड़े पैमाने पर संशोधन हुए हैं। जिसमें आर. सी. मजमुदार जैसे समर्थ इतिहासकार ने 'द सिपोय म्युटीनी ऑफ इंडिया - 1857' लिखा। एस. बी. चौधरी, बिपिनचंद्र, सुमित सरकार जैसे भारतीय इतिहासकारों ने इस महाविप्लव से संबंधित महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं।

1857 के महाविप्लव के विषय में महान साम्यवादी चिंतक कार्ल मार्क्स और इंग्लैंड के प्रधानमंत्री डिज डिजरायली द्वारा लिखा गया लेख सबसे महत्त्वपूर्ण है।

इस महाविप्लव के विषय में अंग्रेज इतिहासकारों ने भी काफी काम किया है। जे. डब्ल्यू. केची और कर्नल जी. बी. मोसेल ने 'हिस्ट्री ऑफ द सिपोय वॉर' लिखा। ज्होन के और सिग्येर ने भी इस महा विप्लव के विषय में महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे। गुजरात में 1857 के महाविप्लव के संदर्भ में डॉ. आर. के. धारैया ने महत्त्वपूर्ण संशोधनग्रंथ प्रस्तुत किया है।

ब्रिटिशताज के शासनकाल से संबंधित ऐतिहासिक साधन-सामग्री

भारत में 1857 के महाविप्लव के बाद ताज के शासन का प्रारंभ हुआ तब से लेकर स्वतंत्रता तक के समयकाल में अंग्रेजों की नीतियों का बयान करनेवाली कई पुस्तकें लिखी गई। उनमें वी.ए. स्मिथ का 'ऑक्सफर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया', पी. इ. रोबर्ट का 'हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया' और थोमसन ऐंड गेरेट का 'राइस ऐंड फुलफिलमेंट ब्रिटिश रूल इन इंडिया' महत्त्वपूर्ण ग्रंथ गिनाए जा सकते हैं। भारत के संवैधानिक इतिहास को उजागर करनेवाले ग्रंथों में ए.सी. बनर्जी कृत 'इंडियन कॉन्स्टिट्यूशनल डॉक्यूमेंट्स', ए. बी. कीथ का 'भारत का संवैधानिक इतिहास' महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं।

स्वतंत्रता संग्राम दौरान की साधन-सामग्री

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और इस संग्राम के महान नेताओं पर प्रचुर संख्या में पुस्तक, ग्रंथ, दस्तावेज, समाचारपत्र जैसे स्वरूप में साधन-सामग्री मिलती है। दादाभाई नवरोजी की पुस्तक 'पोवर्टी ऐंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया' तथा रोमेशचंद्र दत्त के 'इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया' से उसकी शुरुआत होती है। पट्टाभी सीतारमैया के ग्रंथ 'हिस्ट्री ऑफ इंडियन नेशलन काँग्रेस' तथा डॉ. ताराचंद के 'फ्रीडम मुवमेंट ऑफ इंडिया' के ग्रंथ इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण हैं। आधुनिक भारतीय इतिहासकारों ने स्वतंत्रता संग्राम के विषय में (1950 के बाद) विभिन्न दृष्टिकोण से भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास राष्ट्र के समक्ष रखा है।

ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में भारतीय विद्याभवन ग्रंथश्रेणी का समावेश होता है। आर. सी. मजमुदार के मार्गदर्शन में समग्र भारत का इतिहास लगभग बारह भागों में प्रकाशित किया गया है । सुमित सरकार, बिपिनचंद्र, रजनी पामदत्त, पंडित सुंदरलाल, अमलेन्दु गुहा जैसे बड़े स्तर के इतिहासकारों ने स्वतंत्रता संग्राम पर महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं। तो राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गाँधी तक के महान भारतीयों के विषय में भी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी गई हैं। नगेन्द्रनाथ गुप्ता की पुस्तक 'सेवन लाइव्स' इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती है। महात्मा गाँधी के जीवन और चरित्र के विषय में शायद सर्वाधिक लिखा गया है। महात्मा गांधी के पत्राचार से उनके विचारों के संबंध में लगभग सौ ग्रंथों में नवजीवन प्रकाशन ने 'गाँधीजी का अक्षरदेह' नाम से प्रकाशित किया है। गाँधीजी की आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' भी उतने ही महत्त्वपूर्ण ग्रंथ गिनाए जा सकते हैं। महादेव भाई देसाई ने गांधीजी की जीवनचर्या को चालीस भागों में 'महादेवभाई डायरी' शीर्षक के तहत ले लिया है। गाँधीजी के जीवन और चरित्र पर रोमारोला, नारायण देसाई, मनु गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और डॉ. अंबेडकर ने भी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे हैं। लेपिन्स और कोलियर ने 'आधी रात को आज़ादी' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं। तो रामचंद्र गुहा ने 'इंडिया आफ्टर गाँधी' और बिपिनचंद्र ने 'स्वतंत्रता के बाद का भारत' जैसे श्रेष्ठ ग्रंथ लिखे हैं।

प्रादेशिक ऐतिहासिक साधन-सामग्री

भारत में विभिन्न प्रदेशों में हुए स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलनों का इतिहास भी बड़े पैमाने पर लिखा गया है। गुजरात में ऐसे ग्रंथों का भो. जे. विद्याभवन द्वारा दस ग्रंथों की ग्रंथश्रेणी द्वारा कई भागों में ब्रिटिशकालीन इतिहास लिखा गया है। मगनलाल वखतचंद ने 'गुजरात देश का इतिहास' और 'अहमदाबाद का इतिहास' लिखा है। एलेक्जेंडर फार्बस ने 'रासमाला' में गुजरात का इतिहास लिखा है तो कर्नल टोड ने 'ट्रावेल्स इन वेस्टर्न इंडिया' में राजस्थान और गुजरात के प्रवास वर्णन पर टिप्पणी की है। जेम्स मेकमर्डो, कर्नल वॉकर जैसे अंग्रेजों ने भी

कच्छ और काठियावाड़ पर विशिष्ट ग्रंथ लिखे हैं। जदुनाथ सरकार और जी. एस. सरदेसाई नामक महान इतिहासकारों ने भी आधुनिककाल के विषय में ठीक-ठीक लिखा है। गायकवाड़ी शासन और कच्छ तथा काठियावाड़ के देशी राज्यों के साथ जुड़े अनेक पत्र भी इस समय के इतिहास बताने में मदद करते हैं।

समाचारपत्र और पत्रिकाएँ

ब्रिटिशकालीन भारत में राष्ट्रवाद के प्रचार-प्रसार के लिए और सामाजिक एवं धार्मिक सुधार के क्षेत्र में अनेक पत्रिकाएँ और समाचारपत्र प्रचलित हुए थे। भारत में (1780) जेम्स ए. हीकी ने 'बंगाल गेजेट' लेकर पत्रकारत्व की शुरुआत की। राजा राममोहनराय ने भारतीय नवजागृति और पत्रकारत्व के पिता थे। उन्होंने संवाद-कौमुदी जैसे पत्रों का संचालन किया था। स्वतंत्रता संग्राम के साथ संबद्ध विशिष्ट वर्तमानपत्र और पत्रिकाओं में दादाभाई नवरोजी का 'रास्तगोफतार', मुंबई का 'मुंबई समाचार', केशवचंद्र सेन का 'सुरती समाचार', लोकमान्य तिलक का 'मराठा' और 'केसरी', एनी बेसंट का 'न्यू इंडिया' और 'कोमनविल', वरीन्द्र और अरविंद घोष का 'युगांतर' और 'संध्या', ईश्वरचंद्र विद्यासागर का 'सोमप्रकाश', स्वामी विवेकानंद का 'प्रबुद्ध भारत', मोतीलाल घोष का 'अमृत बाजार पत्रिका', महात्मा गांधी का 'यंग इंडिया' और 'हरिजन', भारतेन्दु हरिश्चंद्र की 'पत्रिका हरिशचंद्र' (मैग्जीन), मोतीलाल नेहरू का 'इंडिपेंडेन्ट्स', मौलाना आजाद का 'अलहिलाल' तथा हिन्दुस्तान गदर पार्टी का 'गदर' को सबसे महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

सिक्का

अंग्रेज भारत में अपनी सिक्का पद्धति अमल (ई. सन. 1834) में लाए। उसके पूर्व मुगल बादशाहों का सिक्का, जिमसें दाम और रुपया का समावेश होता है, वे प्रचलित थे। कंपनी शासनकाल दौरान सोना का गिन्नी प्रकार का और चाँदी तथा ताँबा का सिक्का अमल में था। ताज के शासन की शुरुआत (ई.सन् 1818) होने पर, रानी विक्टोरिया की छविवाला और विक्टोरिया क्वीन लिखे सिक्के प्रचलित थे। एडवर्ड सातवें का सिक्का बोड़िया राजा सिक्का कहलाता था। जबकि राजा ज्योर्ज पंचम का सिक्का ताज और शाही पोशाकवाला प्रचलित था। भारत में ब्रिटिश प्रांतों में ब्रिटिश सिक्का का चलन था। जबकि हिंद के देशी रजवाड़ा के राजा अपने ढंग से सिक्का चलन में ला सकते थे। सौराष्ट्र, कच्छ और वडोदरा के राजा तथा अन्य भारतीय राजा का सिक्का देवनागरी लिपि में चलता था।

रानी विक्टोरिया की छविवाला और विक्टोरिया क्वीन लिखा सिक्का

भारत में आई विभिन्न यूरोपीय सत्ताओं के आगमन से क्रमशः भारत में परिवर्तन होता रहा। अंत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने (1757) अपने शासन की शुरुआत की। ब्रिटिश सत्ता लगभग 200 वर्ष तक भारत में रही। ब्रिटिश सत्ता की विभिन्न नीतियों के विषय में अंग्रेजी में ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त है, तो स्वतंत्रता संग्राम के विषय भी बड़ी मात्रा में भारतीय तथा विदेशी भाषा में ऐतिहासिक साधन सामग्री मिलती है। लगभग सौ वर्ष तक चले स्वतंत्रता संग्राम और उसे अग्रगण्य नेताओं के विषय में भी काफी लिखा गया है। इन सभी बातों को ध्यान में रखकर आधुनिक इतिहासकारों ने आधुनिक भारत का इतिहास लिखकर स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास पर प्रकाश डाला है।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) ''ऐतिहासिक साधन-सामग्री के बिना हम इतिहास नहीं जान सकते हैं'' विधान समझाइए।

(2) भारत में पुर्तगाली इतिहास से संबंधित साधन-सामग्री पर टिप्पणी लिखिए।

(3) भारत का ब्रिटिश कालीन इतिहास जानने के लिए कौन-सी साधन सामग्री प्राप्त होती है?

(4) ई.सन् 1857 के महाविप्लव को जानने के लिए किस प्रकार की साधन-सामग्री प्राप्त होती है?

(5) आधुनिक भारत का इतिहास जानने के लिए आधुनिक इतिहासकारों के ऐतिहासिक प्रदान की चर्चा कीजिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) पुर्तगाली कंपनियों ने अपनी कोठियों की स्थापना कहाँ-कहाँ की थी? उसकी जानकारी कहाँ से प्राप्त होती है?

(2) इतिहास की आधार सामग्री के रूप में समाचारपत्रों के विषय में बताइए।

(3) ब्रिटिश सिक्कों में से प्राप्त इतिहास समझाइए।

(4) भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार के विषय में लिखिए।

(5) फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी के जानकारी स्रोत के विषय में लिखिए।

3. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) राष्ट्रीय अभिलेखागार कहाँ है ?

(अ) मुंबई (ब) कोलकाता (क) दिल्ली (ड) चेन्नई

(2) सुरेन्द्रनाथ सेन ने महाविप्लव से संबंधित कौन-सी पुस्तक लिखी?

(अ) 'अठारह सौ सत्तावन' (ब) 'महाविप्लव'

(क) 'महासंग्राम' (ड) 'विद्रोह'

(3) भारतीय विद्याभवन ग्रंथश्रेणी के संपादक कौन थे?

(अ) एस.एन. सेन (ब) जवाहरलाल नेहरू

(क) आर. सी. मजमुदार (ड) जदुनाथ सरकार

(4) ई.सन. 1857 के महाविप्लव पर संशोधन करनेवाले गुजराती इतिहासकार कौन थे?

(अ) मगनलाल वखतचंद (ब) रमणलाल धारैया (क) देवेन्द्र भट्ट (ड) मकरंद मेहता

(5) 'गांधीजी का अक्षरदेह' प्रकाशित करनेवाला प्रकाशक बताइए।

(अ) दिल्ली युनिवर्सिटी (ब) राज्य अभिलेखागार

(क) नवजीवन प्रकाशन (ड) गुजरात युनिवर्सिटी

●

2 18वीं सदी के उत्तरार्ध में भारत में सत्ता प्राप्ति हेतु संघर्ष

18वीं सदी का भारत, भारत के इतिहास में महान परिवर्तन लानेवाला युग सिद्ध हुआ। मुगल साम्राज्य के अंतिम शक्तिशाली बादशाह औरंगजेब की मृत्यु के बाद उस विशाल साम्राज्य को संभालनेवाला कोई उत्तराधिकारी नहीं था, जिससे मुगल शासन पतन की तरफ बढ़ चला। मुगल साम्राज्य के पतन के परिणामस्वरूप भारत में अनेक छोटे-बड़े साम्राज्यों का उदय हुआ। वे सभी अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए आपसी लड़ाई में व्यस्त रहे। इसमें मराठा, मैसूर, हैदराबाद और बंगाल जैसे राज्य आगे रहे। उनके बीच एकता का अभाव था। इसी समय विश्वभर में महत्त्वपूर्ण राजनैतिक सत्ता का स्थान ब्रिटेन ने प्राप्त कर लिया था। ब्रिटेन ने भारत की इस राजनैतिक शून्यावकाश का लाभ लेना चाहा। शक्तिशाली सेना और कूटनीतिज्ञ अधिकारियोंवाले 'ब्रिटिश ईस्ट इंडिया' कंपनी ने महत्तम आर्थिक शोषण करने के लिए राजनैतिक सत्ता स्थापित करने का निश्चिय किया। परिणाम स्वरूप एक विदेशी सत्ता भारत के राजनैतिक मंच पर प्रतिस्पर्धी के रूप में आई। भारत के लिए यह कठिन समय था। एक तरफ भारतीय आपस की लड़ाई में व्यस्त थे, वहीं दूसरी तरफ ब्रिटेन उसका लाभ लेकर भारत में शासन स्थापित करने के लिए आतुर था। छिन्न-भिन्न और निर्बल भारतीयों को वे सरलता से अंकुश में ले सकते थे। इतना ही नहीं, महात्मा गांधी ने लिखा है कि, 'इंग्लैंड ने भारत को जीता नहीं बल्कि भारतीयों ने ही सोने की थाली में भारत इंग्लैंड को भेट में दिया था।' यह सत्य ही है।

भारत का मुगल साम्राज्य तत्कालीन विश्व में सबसे बड़े साम्राज्यों में से एक था। 18वीं सदी के पूर्वार्ध में विशेष करके औरंगजेब की मृत्यु के बाद वह पतनोन्मुख हुआ। नादिरशाह जैसे शक्तिशाली ईरानी आक्रमण (ई. सन् 1739) ने मुगल साम्राज्य के पतन को गति दिया। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके तीनों पुत्रों के बीच उत्तराधिकार को लेकर संघर्ष पैदा हुआ। अंत में बहादुरशाह गद्दी पर बैठा। वह एक विद्वान और योग्य राजा था। इतना ही नहीं बल्कि औरंगजेब से बिल्कुल विपरीत उसने हिन्दुओं के साथ समानतापूर्ण व्यवहार किया। राजपूतों के साथ भी उसने अच्छे संबंध बनाए। जबकि, राजा जयसिंह और अजीतसिंह तथा मराठा सरदारों के साथ उसकी अव्यवस्थित नीति के कारण अच्छे संबंध नहीं रहे। ताराबाई और साहू के बीच उत्तराधिकार के प्रश्न पर उसने योग्य कार्यवाही नहीं की, जिससे मराठा भी उसके विरुद्ध हो गए।

बहादुरशाह ने सिक्ख गुरु गोविंदसिंह के साथ भी अच्छे संबंध बनाए। गोविंदसिंह की मृत्यु के बाद बंदा बहादुर ने सिक्खों का नेतृत्व ले करके बहादुर शाह के विरुद्ध विद्रोह किया। इतना ही नहीं, बल्कि सतलज और यमुना नदी के बीच का समग्र क्षेत्र भी उन्होंने कब्जा कर लिया। बहादुरशाह ने बुंदेला सरदार छत्रशाल के साथ मित्रता बनाए रखी। जबकि, बहादुरशाह की शासनव्यवस्था बिगड़ रही थी। उसकी मृत्यु (ई.स. 1712) के बाद पुनः मुगल सत्ता अंधाधुंधी में फँस गई। फिर से उत्तराधिकार के लिए हुए युद्ध में जहाँदरशाह की जीत हुई। उसका वजीर जुल्फीकार महत्त्वाकांक्षी था। जबकि उसके समय में राजपूतों के साथ पुनसंबंध स्थापित हुआ। जुल्फीकार के विरुद्ध भी षड्यंत्र रचकर फर्खुशीयर गद्दी पाने में सफल (ई.स. 1713) हुआ। सैयद बंधुओं ने उसकी सहायता की। फर्खुशीयर भी सक्षम नहीं था। उसके समय में मुगल साम्राज्य निर्बल बना। ई.स. 1719 से ई.स. 1748 तक के लंबे समय तक फर्खुशीयर के बाद मुहमदशाह ने शासन किया। वह भी निर्बल होने के कारण खास करके मराठा, सरदारों, अवध, बंगाल और पंजाब पर अपना आधिपत्य बनाए नहीं रख सका। उसके समय में नादिरशाह के आक्रमण ने अधिक खराब स्थिति पैदा की। अब (ई.स. 1759) शाहआलम द्वितीय गददी पर बैठा। वह हिम्मतवाला और योग्य शासक था। परंतु मुगल साम्राज्य का उद्धार करना उसके लिए संभव नहीं था। अंग्रेजों ने (ई.स. 1757 और 1764) बंगाल पर महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त की थी और वे क्रमशः दिल्ली की तरफ आगे बढ़ रहे थे। अंत (ई.स. 1803) में अंग्रेजों ने दिल्ली पर अधिकार का लिया। मुगल शासन के ऐसे निर्बल उत्तराधिकारियों के कारण भारत ब्रिटिश सत्ता का भोग बना।

हैदराबाद और कर्नाटक

हैदराबाद राज्य की स्थापना (ई.स. 1724) आशफजहाँ ने की। वह बाद में निजाम-उल-मुल्क के नाम से जाना गया। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसने दक्षिण में जाकर क्रमशः हैदराबाद राज्य की नींव डाली। मन ही मन मुगल साम्राज्य से स्वतंत्र रहने का निश्चय किया। मुगल साम्राज्य के नमूना अनुसार दक्खन में भी उसने व्यवस्थित प्रशासनिक पद्धति प्रारंभ की। उसके दीवान पूरनचंद ने दक्खन में महसूली व्यवस्था स्थापित करने में उसकी मदद की। उसकी मृत्यु होने पर राज्य में अव्यवस्था फैल गई। कर्नाटक के नवाब शाहदतमुल्ला खां ने अपने भतीजे दोस्त डाली को अपना उत्तराधिकारी बनाया। उसके बाद (ई.स. 1740) दोनों राज्यों के बीच बार-बार संघर्ष होने से दोनों कमजोर हो गए और यूरोपीय कंपनियों ने भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया।

बंगाल

मुगल साम्राज्य के निर्बल होने पर (ई.स. 1717) मुरशीद कुली खां ने बंगाल में सूबेदार के बदले स्वंतत्र रूप से शासक बनना पसंद किया। उसके समय में बंगाली जमीनदारों ने विग्रह किया, जिसे उसने दबा दिया। उसकी मृत्यु के बाद उसका दामाद शुजाउद्दीन शासन में आया, उसने (1739 तक) बंगाल पर शासन किया। उसके पश्चात् उसका पुत्र सरफराज खां गद्दी पर बैठा, परंतु एक ही वर्ष बाद उसे हटाकर अलीवर्दी खां बंगाल का नवाब बना।

बंगाल में इन तीनों नवाबों के समयकाल में शांति और व्यवस्था बनी रही। उसने व्यापार और वाणिज्य का विकास किया। उसने ही नई जमीन महसूल पद्धति लागू करके महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इन तीनों नवाबों ने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को समान अवसर प्रदान किया। उसने व्यापार-वाणिज्य (खास करके विदेश व्यापार) का विकास करने के लिए नदी मार्गों को सुरक्षित किया। उसने अंग्रेजों और फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी को कोलकाता और चंद्रनगर में कारखानों की किलेबंदी पर रोक लगाई। बंगाल के नवाबों ने शक्तिशाली सैन्य रखने का बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य नहीं किया था, परिणाम स्वरूप उनका उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला के समय में प्लासी के युद्ध (1757) में ईस्ट इंडिया कंपनी ने नवाब की सेना की हराकर भारत पर अपनी सत्ता स्थापित कर दी।

अवध

शहादत खां को अवध का सूबेदार नियुक्त (ई.स. 1722) किया गया था, जिसे बुरहान-उल-मुल्क के नाम से पहचाना जाता था। उसने अवध के स्वतंत्र राज्य की स्थापना की थी। वह बुद्धिशाली और शक्तिशाली था। उसने नई जमीन महसूल पद्धति का प्रारंभ किया था। उसने हिन्दुओं और मुस्लिमों के बीच समानता पूर्ण व्यवहार किया था। उसकी मृत्यु होने पर सफदरजंग ने इलाहाबाद और अवध का संचालन अपने हाथ में ले लिया। बंगेस नवाबों के सामने (1750-51) उसका महत्त्वपूर्ण युद्ध हुआ। सफदरजंग ने शहादत खां की तरह व्यवस्थित नीति अपनाई। उसने लखनऊ और अवध का विकास किया। इतना ही नहीं साहित्य एवं कला तथा हस्तशिल्प का उसके समय में खूब विकास हुआ था। नैतिक रूप से भी वह साफ सुथरा था। बक्सर के युद्ध (ई.स. 1764) में ईस्ट इंडिया कंपनी के सामने अवध की पराजय हुई।

टीपू सुल्तान

मैसूर

दक्षिण भारत में विजयनगर साम्राज्य के अंत के बाद हैदराबाद के पास स्थित मैसूर हैदरअली के नेतृत्व में सबसे शक्तिशाली राज्य बना था। उसने मैसूर के राजा कृष्णराज वडियार को नाम मात्र का राजा बना करके वास्तविक सत्ता अपने हाथ में ले ली। कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभावान हैदरअली ने मैसूर का महत्त्वपूर्ण विकास किया था। फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी की मदद से उसने डिन्डीगुल में आधुनिक शस्त्रागार की स्थापना (ई.स. 1755) की। मैसूर के वास्तविक शासक (ई.स. 1761) बनकर उसने कन्नड और मलबार तक का क्षेत्र अपने राज्य में मिला लिया। उसने मुगल शासन प्रणाली जैसी ही व्यवस्था स्थापित की। मैसूर

सतत निज़ाम, मराठा और अंग्रेजों के साथ संघर्ष रहता था। उसने (1779) अंग्रेजों को हरा दिया था परंतु द्वितीय एंग्लो-मैसूर युद्ध (1782) में उसकी मृत्यु हुई और उसके स्थान पर टीपू सुल्तान गद्दी पर बैठा। चतुर्थ एंग्लो-मैसूर युद्ध में मृत्यु (ई.स. 1799) होने तक टीपू सुल्तान मैसूर में शासन करनेवाला शक्तिशाली सुल्तान था। फ्रांस की राज्यक्रांति से खूब प्रोत्साहित होकर समय के साथ अपने राज्य में व्यापक परिवर्तन करनेवाला वह एक शक्तिशाली सुल्तान था। नवीन कैलेंडर, नये सिक्के और नई प्रणाली से तौलमाप शुरू करनेवाला तथा आधुनिक पुस्तकालय तथा धर्म, इतिहास, विज्ञान और गणित जैसे विषयों में रुचि लेनेवाले शायद 18वीं सदी का वह एक मात्र सुल्तान था। श्री रंगपट्टम में स्वतंत्रता वृक्ष स्थापित करके वह 'जेकोबीन क्लब' का सदस्य बना था। सैन्य व्यवस्था में भी आधुनिकीकरण ला करके उसने उच्च कोटि की सेना तैयार की थी। यूरोपीय शैली में बंदूक और आधुनिक हथियारों से उसने सेना तैयार की थी। यूरोपीय शैली में बंदूक और आधुनिक हथियारों से उसने सेना का नवीनीकरण किया। इतना ही नहीं बल्कि उसने नौसेना तैयार करके (1776) जहाज भी बनवाया था। वह स्वयं भी प्रतिभासंपन्न सेनापति था। उसका कहना था कि ''बकरे की तरह लंबी जिन्दगी जीने की अपेक्षा सिंह की तरह एक दिन जीना योग्य है।'' चतुर्थ एंग्लो-मैसूर युद्ध में अंग्रेजों ने उसे हराया और वह वहीं लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हो गया। टीपू सुल्तान 18वीं सदी के राजनीतिज्ञों में सबसे अधिक श्रेष्ठ था। अंग्रेजों के रूप में आनेवाले खतरे का एहसास उसे था और इसीलिए अंग्रेज उसे अपना सबसे खतरनाक दुश्मन मानते थे।

दिल्ली के आसपास का क्षेत्र

मुगल साम्राज्य के पतन के बाद दिल्ली के आसपास के राजपूत राज्यों ने अपने राज्यों को स्वतंत्र करने का प्रयत्न किया। सबसे महत्त्वपूर्ण राजपूत शासक में आमेर के सवाई जयसिंह थे। वे कुशल राजनीतिज्ञ, सुधारक, कानूनविद् और विशेषकर विज्ञान एवं खगोल के विद्वान थे। भारत में विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में शून्यावकाश व्याप्त था तब उसने जयपुर में विज्ञान और कला का महत्त्वपूर्ण केन्द्र स्थापित किया। उसने दिल्ली, जयपुर, उज्जैन और मथुरा में आधुनिक विज्ञान और टेक्नोलॉजी का समावेश करती वेध-शालाएँ बनवाई। उसके समय में गणित के तत्त्व और त्रिकोणमिती आदि क्षेत्र में काफी काम हुआ। उसने राजपूतों में व्याप्त कई दूषणों के विरुद्ध समाज सुधार किया, जिसमें बेटी को दूधपीती करने की प्रथा का समावेश होता है।

बंगेस पठान और रोहिल्ला

अलीगढ़ और कानपुर के बीच के क्षेत्र में मोहम्मद खां बंगेस (फर्रुखाबाद के आसपास) ने एक छोटा, परंतु शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। हिमालय के दक्षिण भाग में और गंगा नदी के उत्तर में कुमाऊ तक फैले राज्य की राजधानी बरेली के आँवला और उसके बाद रामपुर में बनाया। वह अयोध्या, दिल्ली और जाट प्रजा के साथ सतत संघर्ष में रहता था।

राजपूताना

मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् राजपूताना क्षेत्र के राजपूत राज्यों की परिस्थिति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आए। खास करके जयपुर, उदयपुर तथा जोधपुर राज्य अपने विकास की निरंतरता बनाए रखे। परंतु अंग्रेजों के समय में उनके राजैतिक जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आए।

महाराजा रणजीतसिंह

सिक्ख सत्ता

17वीं सदी के प्रारंभिक सिख गुरु हरगोविंद ने सिखों को योद्धा बनाने का प्रयत्न शुरू किया, जो दसवें गुरु गोविंदसिंह के समय में अत्यंत शक्तिशाली बन चुके थे। गोविंदसिंह के सिक्ख सैन्य ने औरंगजेब के विरुद्ध कई युद्ध किए। उसके बाद बंदाबहादुर ने गोविंदसिंह के कार्य को चालू रखा। पंजाब के कई क्षेत्रों में

क्रमशः उनका शासन शक्तिशाली होता गया। भारत पर ईरानी आक्रमण होने के परिणाम स्वरूप सिख सत्ता का विकास हुआ। 18वीं सदी के अंत में सिखों की सुकरचकया जाति से आए रणजीतसिंह ने सिख साम्राज्य का विकास किया। उन्होंने लाहौर और अमृतसर जीत करके सतलज नदी के पश्चिमी क्षेत्र पर अपना साम्राज्य स्थापित किया। इतना ही नहीं, उन्होंने मुलतान, कश्मीर, पेशावर जीत करके सिख राज्य का विस्तार किया। उन्होंने यूरोपीय ढंग से शक्तिशाली सैन्य संरचना की थी। उनकी सेना में यूरोपीय अधिकारी के रूप में कार्य करते थे। धार्मिक रूप से भी वे सहिष्णु थे। अंग्रेजों ने उसके साथ अच्छे संबंध बनाए थे परंतु उनकी मृत्यु के बाद (1839) गवर्नर जनरल डलहौजी ने सिख राज्य का ब्रिटिश साम्राज्य में विलय कर दिया था।

छत्रपति शिवाजी

मराठा सत्ता

मुगल साम्राज्य को सबसे अधिक शक्तिशाली मुकाबला देनेवाले मराठे थे। एक सामान्य योद्धा के पुत्र के रूप में जन्म (ई.स. 1627) लेनेवाले शिवाजी ने अपने बल पर महान मुगल सत्ता तथा दक्षिण में ब्रहनी राज्यों के साथ भारी संघर्ष करके मराठासत्ता की नींव डाली। बाद में छत्रपति बनकर शिवाजी ने मराठा शासन और साम्राज्य का खूब विकास किया। उन्होंने (1680 तक) मराठा सत्ता को सबसे शक्तिशाली सत्ता बना करके मुगल साम्राज्य के समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया।

शिवाजी के पौत्र शाहू को औरंगजेब ने कैद कर लिया (1689)। जबकि औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसे जेल में से मुक्त किया गया। इस घटना के बाद शाहू और कोल्हापुर में रहती उनकी काकी ताराबाई के बीच विरासत विग्रह शुरू हुआ। ताराबाई ने अपने पुत्र शिवाजी द्वितीय के नाम पर (ई.स. 1700 तक) मुगल सत्ता के विरुद्ध संघर्ष किया। शाहू और कोल्हापुर के बीच के झगड़े के परिणाम स्वरूप मराठी सरकार में पेशवा प्रथा नाम की एक नई व्यवस्था का जन्म हुआ और पेशवा अब मराठी सत्ता के केन्द्र में आए।

प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ एक ब्राह्मण थे। उन्होंने शाहू का पक्ष लेकर दुश्मनों को दूर करके मराठा शक्ति का विस्तार किया, इतना ही नहीं पेशवा ने शाहू की सत्ता भी अपने हाथ में ले ली। उन्होंने मुगलों को भी अंकुश में रखा। उनकी मृत्यु के बाद उनका पुत्र बाजीराव प्रथम पेशवा बना। वह अत्यंत प्रतिभाशाली सेनापति था। शिवाजी के बाद गोरिल्ला युद्ध का सबसे शक्तिशाली प्रतीक के तौर पर वह जाना जाता है। मुगल सत्ता के विरुद्ध उसे काफी सफलता मिली थी। उसके समय में मराठा महाराष्ट्र से लेकर मालवा, गुजरात और बुंदेलखंड तक अपना अधिकार रखते थे। उसने जंजीरा पर विजय प्राप्त कर ली और पुर्तगालियों को भी अपने अंकुश में ले लिया। मराठा साम्राज्यवाद को खूब विस्तृत करनेवाले बाजीराव की मृत्यु (1740) के बाद उनका पुत्र बालाजी बाजीराव ने शासन संभाला। वे नानासाहब के नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने अपने पिता का अधूरा स्वप्न पूरा करने का प्रयास किया। अहमदशाह अब्दाली और मराठों के बीच पानीपत का तीसरा युद्ध (1761 की 14 जनवरी) हुआ। इस युद्ध में सदाशिव राव ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया, जिसमें मराठा पक्ष के 28,000 सैनिकों की मृत्यु हुई। इस घटना के आघात से जून-1761 में पेशवा की मृत्यु हुई। जबकि मराठों की हार हुई लेकिन वे एकदम से खत्म नहीं हुए। माधवराव के नेतृत्व में मराठा शक्ति का पुनः

बालाजी बाजीराव

उदय हुआ। माधवराव मराठा सत्ता को दिल्ली तक ले गए। सवाई माधवराव की मृत्यु हुई (1795), तब तक अंग्रेजों ने शक्तिशाली ढंग अपना करके मराठा शक्ति को ललकारा और तीन युद्ध किए। उसमें तीसरे मराठा विग्रह में मराठों की हार हुई और पेशवा प्रथा का अंत हुआ।

आसाम और उत्तर पूर्व राज्य

18वीं सदी के प्रारंभ में भारत के उत्तर पूर्वीय क्षेत्रों में सुप्रसिद्ध जनजाति के राज्य आए हुए थे। मुगलों को पराजित करनेवाले शक्तिशाली आसामी नेता बडफक्कन थे। उन्होंने आसाम को एक शक्तिशाली राज्य बनाया। अहोम के शासक रुद्रसिंहा को पूर्व भारत का छत्रपति शिवाजी कहा जाता है। कॉर्नवालिस ने आसाम और पूर्व भारत की तरफ ध्यान केन्द्रित करके साम्राज्यवादी नीति अपनाई। अंग्रेजों ने बर्मा जीतकर (1826) इन प्रदेशों पर अपना अधिकार बढ़ाया। उसके बाद (1885 तक) अधिकांश पूर्वी क्षेत्र अंग्रेजों के अधिकार में आ चुके थे।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) 18वीं सदी के उत्तरार्ध में भारत में मुगल साम्राज्य के अंत के बाद उसकी राजनीतिक स्थिति का वर्णन कीजिए।

(2) बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी की प्रवृत्तियों की चर्चा कीजिए।

(3) पंजाब में अंग्रेज-सिख संबंध स्पष्ट कीजिए।

(4) अंग्रेज-मराठा संबंधों का विश्लेषण कीजिए।

(5) कर्नाटक-विग्रह को समझाइए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) टीपू सुल्तान की आंतरिक नीति के विषय में बताइए।

(2) फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी के विषय में जानकारी दीजिए।

(3) प्लासी और बक्सर के युद्ध की जानकारी दीजिए।

(4) मराठा और अंग्रेजों के बीच हुए युद्ध के विषय में लिखिए।

(5) पानीपत के तीसरे युद्ध के बारे में लिखिए।

3. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) प्लासी का युद्ध कब हुआ?

(अ) ई.स. 1756 (ब) ई.स. 1757 (क) ई.स. 1758 (ड) ई.स. 1760

(2) सिख राज्य का विलीनीकरण किसने किया ?

(अ) डलहौजी (ब) कर्जन (क) क्लाइव (ड) वेलेस्ली

(3) नादिरशाह का भारत पर आक्रमण कब हुआ ?

(अ) ई.स. 1730 (ब) ई.स. 1735 (क) ई.स. 1739 (ड) ई.स. 1750

(4) हैदराबाद राज्य का स्थापक कौन था ?

(अ) सआदत खां (ब) टीपू सुल्तान (क) आसफ खां (ड) निजाम-उल-मुल्क

(5) मराठा सत्ता में सर्वप्रथम पेशवा कौन था?

(अ) शाहू (ब) बालाजी बाजीराव (क) बाजीराव प्रथम (ड) बालाजी विश्वनाथ

●

3 भारत में यूरोपीय आगमन

आपको कभी ऐसा विचार आता है कि अनेक यूरोपीय राष्ट्रों की प्रजा भारत क्यों आई थी? जवाब में कह सकते हैं कि वास्तव में प्राचीनकाल से ही भारत की समृद्धि से आकर्षित हो करके अनेक प्रजा भारत आती रही है।

ई.स. 13वीं सदी से 16वीं सदी तक यूरोप में नवजागृति, धर्मसुधार तथा भौगोलिक खोज के परिणाम स्वरूप कई परिवर्तन आ रहे थे। यूरोप सामंतशाही आचार-विचार का त्याग करके आधुनिक बन रहा था। उसमें भी इंग्लैंड का विशेष स्थान था, कारण कि उसने लोकशाही को स्वीकार किया और उसका विकास किया। उसने बुद्धिगम्य शासन से प्रगतिशील समाजव्यवस्था भी विकसित की थी। संक्षेप में कहें तो 18वीं सदी में यूरोप में कई महान विद्वानों ने प्रबुद्ध युग का सर्जन करके मानवतावाद, समानता और स्वतंत्रता का संदेश दिया था। दूसरी तरफ हमने पिछले प्रकरण में देखा कि भारत अभी भी सामंतशाही मूल्यों और संकुचितता से जकड़ा था।

भारत मुगल युग में भी विश्व अर्थ व्यवस्था में विशेष स्थान रखता था। विशाल नदियों के उपजाऊ मैदानों में कृषि का खूब विकास हुआ था। कृषि विकास के साथ-साथ अनेक हस्त उद्योग भी विकसित हो चुके थे। भारत के सूती कपड़े, नील, मिर्च-मसाला, इमारती लकड़ी तथा रेशमी वस्त्र की यूरोप में खूब माँग थी। परिणाम स्वरूप इस व्यापार का लाभ लेने के लिए वे भारत आए थे।

भारत का यूरोप और विश्व के अन्य लोगों के साथ प्राचीनकाल से व्यापारिक संबंध रहे हैं। ग्रीक और रोम के साम्राज्य काल से उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही। मध्ययुग में अरबों ने भारत और यूरोप के बीच के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित कर लिया था। फिर भी गुजराती और दक्षिण भारतीय व्यापारी यूरोप, अफ्रीका और पूर्व एशियाई देशों के व्यापारियों के साथ संपर्क में थे। अत्यंत लाभदायक व्यापार का लाभ लेने के लिए सतत संघर्ष भी चलता रहता था।

तुर्कों ने कान्स्टेन्टिनोपल पर अपना अधिकार स्थापित किया (ई.स. 1453)। परिणाम स्वरूप पूर्व और पश्चिम के व्यापारिक मार्गों पर तुर्कों ने नियंत्रण स्थापित कर लिया। इतना ही नहीं बल्कि शेष यूरोप और एशिया के व्यापार पर वेनिस और जिनेवा के व्यापारियों का दबदबा था। वे पश्चिमी यूरोप के स्पेन और पुर्तगाल जैसे राष्ट्रों को व्यापार में घुसने देना नहीं चाहते थे। परिणाम स्वरूप पश्चिम यूरोप के राष्ट्र भारत और इंडोनेशिया के मसाला के केन्द्रों तक पहुँचने के लिए समुद्री मार्ग खोजने लगे। मसाला के द्वीप कहे जानेवाले इंडोनेशिया के आसपास के क्षेत्र ईस्ट इंडीज कहे जाते थे। 15वीं सदी में समुद्री जहाज के निर्माण और संचार में काफी प्रगति हुई थी। साथ ही साथ नवजागृति और वैज्ञानिक सोच के बदले यूरोपीय प्रजा साहसिक बनकर भौगोलिक खोज की तरफ आगे बढ़ी।

पुर्तगाल और स्पेन इस क्षेत्र में पहल करनेवाले राष्ट्र थे। उनके नागरिकों ने अपनी सरकार की सहायता से भौगोलिक खोज के एक युग का आरंभ किया। स्पेन कोलंबस अमरीका की खोज (ई.स. 1492) करके प्रसिद्ध हुआ। तो पुर्तगाल के वास्को-डी-गामा ने यूरोप से भारत तक के अत्यंत सुरक्षित और नए मार्ग की खोज (ई.स. 1498) की। उसने इस समुद्री प्रायद्वीप को 'केप ऑफ गुड हॉप' नाम दिया। विश्व इतिहास में समुद्रीमार्ग की इस खोज द्वारा उसने नए अध्याय की शुरूआत की।

वास्को-डी-गामा

16वीं सदी में यूरोप के व्यापारी और सैनिकों ने एशिया के राष्ट्र में प्रवेश करने का प्रयत्न तेज किया। अत्यंत लाभकारी व्यापार उनके लिए मुख्य कारण था।

पुर्तगाली

भारत में पुर्तगालियों का आगमन पहले बताए अनुसार कालीकट राज्य में सामुद्रिक (जामोरिन) नामक शासक के समय में हुआ था। उसके बाद उन्होंने कोचीन, गोवा, दीव और दमण में अपना व्यापारिक केन्द्र शुरू किया। व्यापार के साथ समुद्र पर अधिकार करने के लिए उन्होंने नौकाशक्ति का प्रयोग भी किया। जमीन पर भारत और एशिया के राष्ट्र अधिक शक्तिशाली थे, फिर भी मुट्ठी भर पुर्तगाली सैनिक समुद्र में अपना वर्चस्व बनाए रख सके, कारण कि उनकी नौसेना भारत और एशिया के अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक मजबूत थी।

पुर्तगालियों ने गोवा पर अधिकार जमा लिया। समुद्री डकैती और लूटफाट का सहारा लेकर भारतीय समुद्र में उन्होंने महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया। पुर्तगाली सरकार ने हिन्द में अपने प्रथम गर्वनर के रूप में आल्मेड़ा की नियुक्ति की (ई.स. 1507)। उसके बाद आल्फान्जो अल्बुर्क्क गवर्नर नियुक्त किए गए। गोवा जीतकर उसने उसे पुर्तगाली राज्य की राजधानी बनाई, (ई.स. 1510) उसके बाद लगभग 100 वर्ष तक भारतीय जलसीमा पर उनका ही राज चलता रहा।

डच

16वीं सदी के उत्तरार्ध में हॉलैंड भी विश्व व्यापार में कूद पड़ा। भारत में पुर्तगाली व्यापार-वाणिज्य को तोड़ने के लिए उसने कार्य किया। हॉलैंड की छोटी-छोटी व्यापारिक कंपनियों को जोड़कर (ई.स. 1602) एक नई 'डच ईस्ट इंडिया' कंपनी की स्थापना हुई। डच मुख्य रूप से इंडोनेशिया के जावा, सुमात्रा जैसे मसाले के समृद्ध केन्द्रों पर एकाधिकार प्राप्त करना चाहते थे। उन्होंने इस क्षेत्र से पुर्तगालियों को खदेड़ दिया। इतना ही नहीं, बल्कि भारत के गुजरात में सूरत, भरुच, खंभात और अहमदाबाद तथा केरल के कोचीन, मद्रास के नागपट्टम्, आंध्र के मुसलीपट्टम्, बंगाल के चीनसुरा, बिहार के पटना और उत्तर प्रदेश के आगरा में व्यापारी कोठियों की स्थापना की। इन डचों ने (ई.स. 1658) पुर्तगालियों के पास से श्रीलंका जीत करके पुर्तगाली सत्ता को बहुत बड़ा नुकसान पहुँचाया।

अंग्रेज

पुर्तगाली और डच व्यापारियों की तरह अंग्रेज व्यापारी भारत के व्यापार का महत्त्व समझते थे। इन दोनों प्रजा की सफलता से और भारत के साथ व्यापार से प्राप्त बेहिसाब लाभ से प्रेरित हो करके अंग्रेज भी भारतीय व्यापार में आने के लिए लालायित हुए। ब्रिटेन के कुछ व्यापारियों ने मर्चन्ट एडवेन्चर्स (साहसिकों की व्यापारी मंडली) नामक पूर्व के साथ व्यापार करने का संगठन बनाया। जिसे बाद में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के नाम से जाना गया। ब्रिटेन में महारानी एलिजाबेथ ने एक रॉयल चार्टर ऐक्ट (31 दिसम्बर 1600) द्वारा इस कंपनी को भारत सहित पूर्वी विश्व के साथ व्यापार करने का एकाधिकार दिया।

सूरत

इस ईस्ट इंडिया कंपनी ने गुजरात के सूरत में कोठी स्थापित करने का निश्चय किया। कैप्टन हॉकिन्स इस व्यापारी कोठी की अनुमति लेने के लिए तत्कालीन मुगल सम्राट जहाँगीर से विनती करता रहा, जिससे जहाँगीर ने एक शाही फरमान द्वारा अंग्रेज कंपनी को ऐसी कोठियाँ स्थापित करने के लिए आज्ञा (ई.स. 1612-13) दे दी। ब्रिटिश कंपनी ने अपने दूत थोमस रो को मुगल शहंशाह

के समक्ष भेजा (ई.स. 1615)। रो के प्रयत्नों से ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने मुगल साम्राज्य के तमाम क्षेत्रों में व्यापार करने और कोठियाँ स्थापित करने का अधिकार प्राप्त हुआ। ब्रिटेन के सम्राट चार्ल्स द्वितीय का विवाह पुर्तगाली राजकुमारी के साथ हुआ। पुर्तगालियों ने अंग्रेज राजा को मुंबई टापू दहेज में दिया। इस टापू को कंपनी ने अपने अधिकार में ले लिया। गोवा, दीव और दमन के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों से इस तरह पुर्तगालियों का अधिकार खत्म हो गया। अंग्रेजों और डच कंपनियों के बीच भी इंडोनेशिया के मसाले के व्यापार के मामले में सतत संघर्ष शुरू हो गया। (ई.स. 1654 से ई.स. 1667) एंग्लो-डच वॉर के नाम से पहचाने जानेवाले इन महत्त्वपूर्ण युद्धों के बाद अंग्रेजों और डचों के बीच एक संधि हुई। उसके अनुसार अंग्रेजों ने इंडोनेशिया में व्यापारी कार्यवाही बंद करने और डचों ने भारत में जहाँ अंग्रेजी कोठियाँ थीं वहाँ व्यापार न करने का समझौता किया। इस तरह अंग्रेज भारत में सबसे शक्तिशाली यूरोपीय सत्ताधीश बन गए।

फ्रांसीसी

'फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी' की स्थापना पेरिस-फ्रांस (ई.स. 1664) में हुई। भारत में पूर्वी तट पर कोलकाता के पास स्थित चंद्रनगर, पुडुच्चेरी और माहे पर अपना अधिकार जमाया। मोरेशियस और ईस्ट इंडिया के कुछ टापुओं पर भी उनका अधिकार था।

भारत में इंग्लैंड और फ्रांस के बीच सत्ता संघर्ष

फ्रांस और इंग्लैंड के बीच युद्ध (ई.स. 1742) हुआ, जिससे भारत में भी ब्रिटिश और फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच विग्रह शुरू हो गया। भारत में रह रहे फ्रांस के गवर्नर जनरल डुप्ले खूब शक्तिशाली थे। उन्होंने भारत में से अंग्रेजों को भगा देने के लिए भारत के स्थानीय राजाओं और नवाबों के साथ मिल करके कुछ योजनाएँ बनाईं। हैदराबाद में भी फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी सफल रही। क्रमशः राजमुंद्रि, मुस्तफानगर और ऐलोर तथा चिकाकोल जैसे क्षेत्रों पर उनका अधिकार स्थापित हुआ। परिणाम स्वरूप अंग्रेज सावधान हो गए। भारत के आंतरिक और राजनैतिक विषय को लेकर दोनों के बीच युद्ध हुआ (ई.स. 1750)। क्लाइव के नेतृत्व में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने तिरुचिरापल्ली फ्रांसीसी को हराया। अंत में (ई.स. 1754) दोनों के बीच हुई एक संधि के अनुसार डुप्ले को भारत से वापस बुलाया गया। पुनः एक बार कर्नाटक युद्ध (ई.स. 1756) शुरू हुआ और अंग्रेजों ने (ई.स. 1760 तक) फ्रांसीसियों को भारतीय राजनीति में से हटाने के लिए। पेरिस की संधि (ई.स. 1763) के अनुसार फ्रांसीसियों ने सभी कोठियाँ अंग्रेजों को सौंप दी और उन्होंने स्वीकार किया कि अब वे कोई भी ऐसा राजैतिक कार्य नहीं करेंगे।

भारत में ब्रिटिश सत्ता का प्रभुत्व

हमने पहले देखा कि ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में विभिन्न क्षेत्रों में कोठियाँ स्थापित की थीं। व्यापारिक प्रवृत्तियाँ शुरू की थी। दक्षिण में उन्होंने अपनी स्थिति मजबूत बना ली थी। मुसलीपट्टनम् में उन्होंने कोठी स्थापित की और पैर फैलाना शुरू किया। यहाँ स्थानीय राजा से अनुमति लेकर वर्तमान चेन्नई में एक किला भी बनाया, जो फॉर्ट सेन्ट ज्योर्ज (ई.स. 1639) कहलाया। ईस्ट इंडिया कंपनी ने ब्रिटिश सरकार से मुंबई टापू लेकर उसकी किलेबंदी की (ई.स. 1668) और फिर अपना मुख्य केन्द्र सूरत से हटाकर मुंबई ले गए।

उन्हें ओडिशा (ई.स. 1633) और बंगाल (ई.स. 1651) में व्यापार करने की अनुमति मिल गई। परिणामतः पटना, बालाशोर और ढाका में कोठियों की स्थापना हुई। भारत की डामाडोल राजनैतिक परिस्थिति देखकर बंगाल में उसने सत्ता प्राप्त करने का मन बनाया। अंग्रेजों ने हुगली पर आक्रमण करके

मुगल सम्राट के विरुद्ध युद्ध शुरू कर दिया। औरंगजेब ने अंग्रेजों की इस हरकत को कुचल डाला, इतना ही नहीं बल्कि सूरत, मसुलीपट्टम और विशाखापट्टनम् की कोठियों पर भी मुगल सत्ता ने अपना अधिकार जमा लिया। परिणामतः अंग्रेजों ने मुगल सत्ता के सामने अपनी हार मान ली। चापलूसी और विनम्रता का आँचल ओढ़कर पुनः व्यापारी प्रवृत्तियाँ शुरू कर दी। मुगलों ने उन्हें माफ करके जैसे अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मार ली। कंपनी ने सुतनती, कालीघाट और गोविंदपुर जैसे गाँवों की जमीनदारी (ई.स. 1698) प्राप्त कर ली। उसके आसपास किले बनाए, जिसे फोर्ट विलियम कहा गया था। आज वह कोलकाता कहलाता है। इस संदर्भ में मुगल बादशाह फर्रुखशियर ने उन्हें विशेष अधिकार देते हुए फरमान जारी किया, जो (ई.स. 1651 में) गुजरात और दक्षिण भारत को भी लागू पड़ा। इस दौरान ईस्ट इंडिया कंपनी को व्यापार से खूब लाभ हुआ। (ई.स. 1708 में कंपनी का निर्यात 5 लाख पाउंड था, वह ई.स. 1740 में 17,95,000 पाउंड तक पहुँच गया)

मुगल साम्राज्य के अत्यंत कमजोर होने पर ब्रिटिश कंपनी को भारत में पैर फैलाने का अवसर मिल गया। कंपनी पुर्तगाली और डच प्रतिस्पर्धियों को भी अब तक हरा चुकी थी। अब उसके सामने एकमात्र फ्रांसीसी कंपनी थी, जो टिक सकती थी। इस दौरान (ई.स. 1744 से ई.स. 1763) फ्रांस और इंग्लैंड के बीच भयानक युद्ध हुआ, जिसका परिणाम कर्नाटक विग्रह में आया। इस कर्नाटक विग्रह के अंत में (ई.स. 1763) अंग्रेजों की विजय हुई और भारत पर उनकी पकड़ मजबूत हुई।

बंगाल में ब्रिटिश सत्ता का प्रभुत्व

सिराज-उद्-दौला

भारत में अंग्रेजों की राजनैतिक सत्ता का आरंभ (ई.स. 1757) प्लासी के युद्ध से शुरू हुआ। ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना ने तत्कालीन नवाब सिराज-उद-दौला को हराया। बंगाल भारत का महत्त्वपूर्ण और विकसित प्रांत था। अंग्रेजों को यहाँ व्यापार करने का अधिकार (ई.स. 1717 से) प्राप्त था। अंग्रेजों और नवाबों के बीच युद्ध का कारण यह फरमान ही था। बंगाल के मुर्सीदकुली खां और अलीवर्दी खां तक के सभी नवाबों ने कंपनी की कार्य पद्धति का विरोध किया था। नवाब सिराज-उद्-दौला (अलीवर्दी खां का दत्तक पुत्र) ने अंग्रेजों को अपनी शर्तों पर व्यापार करने के लिए कहा। परंतु अब परिस्थिति भिन्न थी। अंग्रेज नवाब के प्रभाव में नहीं आए। अंत में नवाब क्रोधित हुए अंग्रेजों द्वारा फोर्ट विलियम की किलेबंदी करने पर क्रोधित नवाबने कासिम बाजार की फैक्टरी पर कब्जा करके (20 जून, 1756) कोलकाता पर अधिकार प्राप्त कर लिया। जिससे सिराज-उद्-दौला को बदनाम करने के लिए कालकोटडी की कहानी बनाकर अंग्रेजों ने समुद्रकिनारे स्थित कुल्टा में शरणागति स्वीकार ली। साथ-साथ उन्होंने मद्रास के अधिकारी को सूचना देकर सहायता माँगी। इसके उपरांत नवाब के दरबार के विशेष लोगों के साथ मिलकर नवाब के विरुद्ध षडयंत्र रचा। नवाब के अत्यंत विश्वसनीय सेनापति मीरजाफर तथा बड़े व्यापारी माणेकचंद, अमीचंद, जगत सेठ और खादिम खां को खरीदकर नवाब के विरुद्ध षड्यंत्र रचा। मद्रास से एडमिटर वॉट्सन और कर्नल क्लाइव नौकासेना लेकर आ पहुँचा। उसने नवाब को हराकर कोलकाता को जीत करके नवाब को संधि (ई.स. 1757) करने के लिए मजबूर कर दिया।

फोर्ट विलियम (कोलकाता)

उसने मीरजाफर को बंगाल की गद्दी पर बैठाने का वचन दिया। मुर्सीदाबाद से 20 मील दूर प्लासी के मैदान में हुआ यह प्रसिद्ध युद्ध (23 जून 1757) भारत में अंग्रेजी सत्ता की स्थापना से जुड़ा हुआ है। मीरजाफर और रायदुर्लभ जैसे गद्दारों के कारण नवाब हार गए। अंत में उनकी हत्या कर दी गई। नवीनचंद्र सेन के मतानुसार, 'अब (इस प्रसंग से) भारत हमेशा के लिए दु:ख की कालरात्रि में घिर गया।' अंग्रेजों ने मीरजाफर को नवाब बनाया और अपनी माँगे मनवाई। प्लासी के युद्ध का ऐतिहासिक महत्त्व खूब है, कारण कि उसने बंगाल और उसके बाद समग्र भारत पर अंग्रेजों का अधिकार लाद दिया। इतना ही नहीं बल्कि एक अंग्रेज व्यापारी कंपनी भारत के साम्राज्य की सत्ता के लिए दावेदारी करने लगी। बंगाल से काफी मात्रा में महसूल मिलने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति सुधरी। फ्रांसीसियों को भी उन्होंने हरा दिया। बंगाल, बिहार और उड़ीसा में मुक्त व्यापार कर सके। बंगाल की प्रजा को लूटकर खूब धन-दौलत ब्रिटेन ले गए।

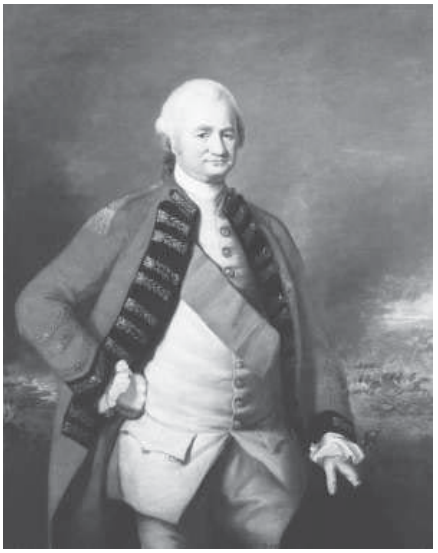

रॉबर्ट क्लाइव

मीरजाफर ने अंत में (ई.स. 1760) अपने दामाद मीरकासिम को गद्दी दे दी। वह एक योग्य और शक्तिशाली शासक था। उसने आधुनिक सेना की स्थापना करने और भ्रष्टाचार दूर करने का प्रयत्न किया, इतना ही नहीं बल्कि ईस्ट इंडिया कंपनी को अंकुश में रखने का प्रयत्न किया। अंग्रेजों की बदमाशी बढ़ती जा रही थी। अंग्रेजों ने बड़े पैमाने पर सत्ता का दुरुपयोग करके धन प्राप्त किया। मीरकासिम उनसे खूब क्रोधित था। अंत में दोनों के बीच युद्ध अनिवार्य बन गया। एक महत्त्वपूर्ण लड़ाई (ई.स. 1763) में मीरकासिम हार गया और वह अवध भाग गया। अवध के तत्कालीन नवाब सुजा-उद्-दौला और मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय के साथ उसने एक संधि की। अंत में तीनों की संयुक्त सेना ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने का निश्चय किया। भारत के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण कहा जा सके, ऐसा बक्सर युद्ध (22 अक्टूबर 1764) हुआ। जिसमें इन तीनों सत्ताओं को हराकर अंग्रेज सही अर्थ में भारत में सबसे शक्तिशाली सिद्ध हुए। यह युद्ध अंग्रेजों के पक्ष में निर्णायक साबित हुआ, कारण कि वह अंग्रेजी सेना की श्रेष्ठता का द्योतक था। इस युद्ध के परिणाम से अंग्रेज बंगाल, बिहार और उड़ीसा के वास्तविक शासक बने। क्लाइव बंगाल का गर्वनर बना। उसके बाद (ई.स. 1763) अंग्रेजों ने मीरजाफर को पुन: नवाब बनाया। फिर निजाबुद दौला को नवाब बनाया। अंत में (ई.स. 1765) नवाब ने अपनी सेना भंग करने की संधि की और इस तरह अंग्रेज बंगाल के वास्तविक शासक बन गए।

बंगाल में द्विमुखी शासन पद्धति

ब्रिटिश कंपनी बंगाल में वास्तविक शासक (ई.स. 1765) बन चुकी थी। उसके हाथ में राजनैतिक और सैनिक नियंत्रण आ चुका था। नवाब अब कंपनी पर आधारित था। कंपनी ने दीवानी अधिकार प्राप्त करके महसूल वसूलना शुरू किया। उसने उपसूबेदार की नियुक्ति करने का अधिकार प्राप्त करके न्याय, पुलिस दोनों पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। इतिहासकारों ने बंगाल की इस व्यवस्था को द्विमुखी शासन पद्धति कहा है कारण कि सत्ता का नियंत्रण कंपनी के पास था परंतु प्रशासन की जवाबदारी नवाब के पास थी। बंगाली प्रजा के लिए यह कठिन परिस्थिति थी। कारण कि कंपनी या नवाब कोई उनका हित करे, ऐसा नहीं था। कंपनी के अधिकारी बंगाली प्रजा पर अत्याचार करते थे। इस द्विमुखी शासन पद्धति ने बंगाल का भयंकर शोषण किया। जिससे बंगाल गरीबी और बेहाली का भोग बना तथा बंगाल में अकाल की परंपरा शुरू हुई।

हेस्टिंग्स (ई.स. 1813-ई.स. 1822) के समय में ब्रिटिश कंपनी की सर्वोपरिता

वारेन हेस्टिंग्स, कोर्नवालिस और वेलेस्ली के समय में ईस्ट इंडिया कंपनी ने मराठा मैसूर के टीपू और मुगल शासकों को हराकर अपने वर्चस्व का विस्तार किया था। टीपू की सत्ता (ई.स. 1799 में) समाप्त कर दी गई। दिल्ली पर भी अधिकार कर लिया गया। मराठों को भी हार स्वीकार करनी पड़ी। अब भारत में मराठों के सिवाय कोई संस्था अंग्रेजों के सामने टिक सके, ऐसी नहीं थी। मराठों ने हेस्टिंग्स के समय (ई.स. 1817) में अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इस समय मराठा चार भाग में बँट चुके थे। उन्होंने संयुक्त मोरचा बनाकर अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध शुरू किया। पूना के पेशवा ने, नागपुर में अप्पासाहब ने और माधवराव होल्कर ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध शुरू किया। हेस्टिंग्स ने अपनी पूरी ताकत लगाकर पेशवा, भोंसले और होल्कर की सेनाओं को हरा दिया। पेशवा को गद्दी पर से उतारकर कानपुर के पास स्थित बिठूर की जागीर में भेज दिया और मुंबई प्रेसीडेन्सी की रचना की। होल्कर और भोंसले ने भी शरणागति स्वीकार करके संधि कर ली। इस तरह (ई.स. 1818 तक) पंजाब और सिंध को छोड़कर अधिकांश भारत अंग्रेजों के नियंत्रण में आ गया था और उनकी सर्वोपरिता स्थापित हो चुकी थी। इसलिए अंग्रेज इतिहासकार पी. ई. रॉबर्ट्स यहीं से भारत में आधुनिक युग का आरंभ मानते हैं।

सिंध पर विजय

अंग्रजों ने भारत विजय का अपना कार्य (ई.स. 1818 से ई.स. 1857 तक) जारी रखा, जिसमें सिंध का विजय महत्त्वपूर्ण है। रशिया के भय के कारण उसमें सिंध का विजय महत्त्वपूर्ण है। रशिया के भय के कारण उसने सिंध को जीतने का निश्चय किया। अफगानिस्तान और सिंध के रास्ते रशिया भारत में अपना वर्चस्व न बढ़ाए इसके लिए ऐसा करना उनके लिए अनिवार्य हो गया था। सिंधु नदी व्यापार के लिए भी खूब उपयोगी थी। एक संधि (ई.स. 1832) द्वारा सिंध के अमीरों ने सिंध का व्यापारी मार्ग अंग्रेजों के लिए खोल दिया था। उसके बाद (ई.स. 1839) एक दूसरी संधि भी हुई परन्तु अंत में चार्ल्स नेपीयर ने सिंध पर आक्रमण करके सिंध को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया (ई.स. 1843)।

डलहौजी और खालसा नीति

भारत के गवर्नर जनरल के रूप में आए (ई.स. 1848) डलहौजी ने शुरूआत से ही समग्र भारत पर अंग्रेजी शासन लादने का प्रयास किया। उसने कहा था कि ''भारत के देशी राज्यों का अंत बहुत जल्दी होनेवाला है।'' साम्राज्यवादी डलहौजी ने भारत जीतने के लिए एक विचित्र सिद्धांत - 'खालसा नीति' द्वारा भारत के राज्यों को हड़प करना शुरू किया। इस सिद्धांत के अनुसार कोई भी राज्य का शासक उत्तराधिकारी बिना मृत्यु पाता है तो उसका राज्य अंग्रेजी साम्राज्य में मिला देना था। इस सिद्धांत के तहत उसने सतारा (1848), नागपुर (1854), झाँसी (1854) जैसे राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला दिया उसने भारत के भूतपूर्व राजाओं को मान्यता देने और पेन्शन देने से इन्कार कर दिया। जिसके तहत कर्नाटक, सूरत और तान्जोर के राजा की उपाधि छीन ली। भूतपूर्व पेशवा बाजीराव द्वितीय के पुत्र नाना साहब को पेन्शन देने से मना कर दिया। अवध को अव्यवस्था के बहाने (ई.स. 1856) ब्रिटिश साम्राज्य में मिला दिया गया और इस तरह भारत के अधिकांश क्षेत्रों में अंग्रेजी शासन की स्थापना कर दी गई।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) भारत में अंग्रेज-फ्रांसीसी संघर्ष का वर्णन करके उनके परिणाम बताइए।

(2) भारत में आई अलग-अलग यूरोपीय कंपनियों के आगमन का कारण स्पष्ट कीजिए।

(3) प्लासी का युद्ध भारत के इतिहास में क्या स्थान रखता है, स्पष्ट कीजिए।

(4) बक्सर के युद्ध के कारणों और परिणामों की चर्चा कीजिए।

(5) डलहौजी की खालसा नीति समझाइए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) 'द्विमुखी शासन पद्धति' अर्थात् क्या?

(2) अंग्रेज-मराठा विग्रह की संक्षेप में जानकारी दीजिए।

(3) बंगाल के नवाबों के विषय में टिप्पणी लिखिए।

(4) भारत में यूरोपीय कंपनियों के उपनिवेश का वर्णन कीजिए।

(5) सिंध विजय के कारण और परिणाम स्पष्ट कीजिए।

3. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) किस मुगल सम्राट के समय में अंग्रेजों ने व्यापारिक कोठियाँ स्थापित करने का अधिकार प्राप्त किया?

(अ) अकबर (ब) जहाँगीर (क) शाहजहाँ (ड) औरंगजेब

(2) मुंबई टापू अंग्रेजों को किसके पास से मिला था?

(अ) मराठा (ब) मुगल (क) फ्रांसीसी (ड) पुर्तगाली

(3) फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना कब हुई थी?

(अ) 1661 (ब) 1662 (क) 1663 (ड) 1664

(4) बक्सर के युद्ध के समय बंगाल का नवाब कौन था?

(अ) मीरजाफर (ब) सिराज-उद्-दौला (क) आसफ खां (ड) मीरकासिम

(5) ब्रिटिश भारत में सिंध का विलय कब किया गया?

(अ) 1820 (ब) 1832 (क) 1842 (ड) 1843

●

4 भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासनतंत्र

भारत में (ई.स. 1757) साम्राज्य की स्थापना करने के बाद उस पर शासन चलाने और नियंत्रण रखने के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी ने शासन-तंत्र की स्थापना की। उसके बाद सौ वर्ष दौरान कंपनी की प्रशासन नीति बीच-बीच में बदलती रही है। जबकि उसका मुख्य लक्ष्य समग्र भारत पर अधिकार प्राप्त करना और कंपनी के लाभ में वृद्धि करके भारत का आर्थिक शोषण करना था। इस लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए उसने अपनी विशिष्ट प्रशासनिक नीति बना रखी थी।

सरकारी शासनतंत्र

बक्सर युद्ध (ई.स. 1764) के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर लिया। जबकि प्रशासनिक ढाँचे में प्रारंभ में उसने कोई परिवर्तन नहीं किया था। कंपनी का व्यापार विकसित हो और इंग्लैंड में बड़े पैमाने पर व्यापारिक लाभ भेजा जा सके, ऐसी शासन व्यवस्था शुरू की। उसके बाद (ई.स. 1765 से 1772) बंगाल में द्विमुखी शासन पद्धति का उसने प्रारंभ किया। अब भारतीय कर्मचारी ब्रिटिश अधिकारियों के नियंत्रण में कार्य कर सकते थे। उनके पास जिम्मेदारी थी परंतु अधिकार नहीं था। जबकि कंपनी के अधिकारियों के पास अधिकार थे, कोई जिम्मेदारी नहीं। इस दौरान बंगाल का खूब शोषण हुआ। जबकि (1772 से) कंपनी ने द्विमुखी शासन पद्धति को तिलांजलि दी और समग्र बंगाल का शासनतंत्र अपने हाथ में लेकर अपने अधिकारियों द्वारा चलाना शुरू किया।

ईस्ट इंडिया कंपनी एक व्यापारी कंपनी थी। उसका ढाँचा व्यापार करने के लिए ही बनाया गया था। उसका सर्वोच्च मुखिया इंग्लैंड में रहकर भारत पर नियंत्रण रखता था। जबकि ब्रिटिश सरकार ने इस विचित्र परिस्थिति पर अपना नियंत्रण रखने के लिए अलग प्रकार का शासनतंत्र खड़ा किया था। रेग्युलेटिंग ऐक्ट (नियामक धारा) (ई.स. 1773) द्वारा ब्रिटिश सांसदों ने शासनतंत्र में परिवर्तन की शुरुआत की। कंपनी के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर (नियामक मंडल) पर ब्रिटिश संसद का नियंत्रण रखा गया। पिट्स इंडिया ऐक्ट (हिंद धारा)(ई.स. 1784) द्वारा यह नियंत्रण अधिक सख्त बनाया गया। इस कानून द्वारा छः कमिश्नरों को भारतीय विषयों के लिए नियुक्त किया गया, जिसे बोर्ड ऑफ कंट्रोल कहते थे, उसमें इंग्लैंड के दो कैबिनेट मंत्रियों का समावेश किया गया था। भारत पर शासन करने के लिए गवर्नवर जनरल और तीन सदस्यों की बनी एक काउंसिल के हाथ में भारत का शासनतंत्र सौंप दिया गया। पीट्स के कानून के बाद (1857 तक) कंपनी ने कानून द्वारा कई परिवर्तन किए। गवर्नर जनरल को विशिष्ट सत्ताएँ दी गईं। चार्टर ऐक्ट (ई.स. 1813) अनुसार भारत के साथ के व्यापार पर लागू कंपनी का एकाधिकार समाप्त कर दिया गया। अंत में (ई.स. 1833) नए चार्टर ऐक्ट द्वारा कंपनी को संपूर्ण रूप से ब्रिटिश संसद के नियंत्रण में रख दिया गया।

इस तरह, संसदीय कानून द्वारा कंपनी और उसके शासनतंत्र को ब्रिटिश सरकार के नियंत्रण में लाया गया। परंतु वे छः हजार मील दूर बैठकर भारत का राज्य चला नहीं सकेंगे, ऐसा विश्वास होने पर गवर्नर जनरल की परिषद को सर्वोच्च अधिकार के साथ-साथ कुछ विशिष्ट सत्ताएँ दी गईं। (जिसके अनुसार वे अपने परिषद की सलाह की भी अवगणना कर सकते थे।) अब भारत का सबसे प्रभावशाली और वास्तविक शासक गवर्नर जनरल बना। उसे ब्रिटिश सरकार के नियंत्रण और मार्गदर्शन में शासन चलाना था। अंग्रेज प्रशासनतंत्र का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश अर्थव्यवस्था का महत्तम लाभ लेना और उसके लिए भारत का शोषण

करना था। उसे भारत का शोषण करके ही शासन और युद्ध का खर्च पूर्ण करना था। अर्थात् ब्रिटिश प्रशासन-तंत्र का स्वरूप महत्तम रूप से भारत का आर्थिक शोषण करके इंग्लैंड का भला करना था।

प्रशासनिक सेवाएँ (सिविल सर्विसिज़)

भारत में प्रशासनिक सेवाएँ शुरू करने का श्रेय गर्वनर जनरल कॉर्नवालिस को है। कॉर्नवालिस ने प्रशासन-तंत्र को शुद्ध बनाने के लिए कंपनी के कर्मचारियों को व्यापार करने से मुक्ति दी और मात्र प्रशानिक कार्य करने के लिए ही बाध्य किया। उसने भ्रष्टाचार के विरुद्ध कड़े नियंत्रण लाए। कंपनी के कर्मचारियों को वेतन वृद्धि दी। उसने कलेक्टर का वेतन बढ़ाकर हर महीने 1500 रुपए कर दिया। साथ-साथ प्रशासनिक सेवाओं का एक विशिष्ट ढाँचा तैयार किया। प्रशासनिक सेवाओं से जुड़े अधिकारियों को उनकी सेवाओं और वरिष्ठता को ध्यान में रखकर प्रमोशन देने की पद्धति अपनाई।

फोर्ट विलियम कॉलेज

गर्वनर जनरल वेलेस्ली ने (ई.स. 1800) भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में आनेवाले युवा अधिकारियों के लिए कोलकाता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की, जो इन अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के लिए थी। ब्रिटिश सत्ता ने इंग्लैंड के हेलीबरी में ईस्ट इंडियन कॉलेज शुरू (ई.स. 1806) की। इस तरह कंपनी सरकार ने प्रशासनिक अधिकारियों के प्रशिक्षण का कार्य अपने हाथ में ले लिया।

पहले नागरिक सेवाओं में अधिकांशत: नियुक्ति ईस्ट इंडिया कंपनी के नियामक मंडल द्वारा होती थी। अब (ई.स. 1853) चार्टर ऐक्ट द्वारा प्रशासनिक सेवा के लिए एक विशिष्ट कानून पारित किया गया। जिसमें ऐसा तय किया गया कि प्रशासनिक सेवा में प्रवेश लेने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को स्पर्धात्मक परीक्षा देकर उत्तीर्ण होना पड़ेगा।

अंग्रेजों द्वारा निर्मित प्रशासनिक सेवा की एक विशेषता थी कि, ''भारतवासियों को नियंत्रणपूर्वक अपनों से दूर रखना।'' उसके अनुसार (ई.स. 1793 तक) नागरिक सेवाओं, सेना, पुलिस, न्यायतंत्र जैसे महत्त्वपूर्ण तमाम उच्च पदों पर अंग्रेज अधिकारियों की ही नियुक्ति की गई थी। उनके अनुसार इसके लिए अंग्रेज ही योग्य थे, वही ये कार्य कर सकेंगे। वे भारतीयों को नैतिक जिम्मेदारी के अभाववाले, पतित और निम्नकोटि के मानते थे। गर्वनर जनरल कॉर्नवोलिस व्यक्तिगत रूप से मानता था कि, ''सभी हिन्दुस्तानी भ्रष्ट हैं।'' अत: उच्चसेवा और उच्च वेतन दोनों से भारतीयों को वंचित रखा जाता था। छोटे पदों और कम वेतनवाली नौकरी पर ही भारतीयों की नियुक्ति की जाती थी।

भारतीय प्रशासनिक सेवा दुनिया में सबसे अधिक प्रचलित हो गई थी। जबकि उसने भारतीय हितों के बदले ब्रिटिश हितों के लिए काम किया। ब्रिटिश शासन का पोषण करने का काम उसने किया।

सैन्य

भारत में ब्रिटिश शासन का दूसरा महत्त्वपूर्ण स्तंभ ब्रिटिश सैन्य थी। एक तरफ उसने भारत जीतने का कार्य किया तो दूसरी तरफ अन्य विदेशी कंपनियों से या ताकतों से भारत में ब्रिटिश शासन की रक्षा की। इतना ही नहीं, आंतरिक विद्रोह को दबा दिया और एशिया अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य का विकास किया।

कंपनी की सेना भारतीय सैनिकों से बनी थी। उत्तरप्रदेश और बिहार के बहुत से लोग कंपनी की सेना में सैनिक के रूप में कार्य करते थे। 1857 के विप्लव तक कंपनी की सेना में कुल 311400 सैनिक थे, जिनमें से 265900 तो भारतीय सैनिक ही थे। जबकि उच्च अधिकारियों के रूप में अंग्रेजों की ही पसंदगी होती थी। तब तक सेना में मासिक वेतन पानेवाले मात्र तीन ही भारतीय थे। वे सूबेदार स्तर के थे। मुट्ठीभर अंग्रेजों से बनी सेना भारत पर नियंत्रण बनाए हुए थी। उनमें भारतीयों की संख्या अत्यधिक थी, जो आश्चर्यजनक और शोषणखोर अर्थव्यवस्था की प्रतीक थी। अंग्रेजी सैन्य में भारतीय सैनिकों को नियमित वेतन मिलता था, जिससे अपना गुजारा चलाने के लिए भारतीय सैनिक ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए कार्य करते थे।

पुलिस

ब्रिटिश साम्राज्यवाद में महत्त्वपूर्ण यदि कोई तंत्र हो तो वह पुलिसतंत्र था। भारत में पुलिसतंत्र शुरू करने का श्रेय गर्वनर जनरल कॉर्नवालिस को है। उसने जमीनदारों और जागीरदारों को पुलिस कार्य से अलग करके कानून और व्यवस्था नियमित करने के लिए पुलिस विभाग की स्थापना की। परंपरागत भारतीय व्यवस्था का आधुनिकीकरण किया। उसने पुलिस स्टेशन की स्थापना की और उसमें एक फौजदार की नियुक्ति की। आगे चलकर जिला स्तर पर पुलिस अधिकारी के रूप में जिला पुलिस अधीक्षक (DSP) की नियुक्ति की। जो जिले का सर्वोच्च पुलिस अधिकारी था। पुलिसतंत्र में उच्च पदों पर मात्र अंग्रेजों की नियुक्ति की जाती थी। गाँवों में चौकीदारों की नियुक्ति होती थी। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को कुचल डालने में अंग्रेजों ने इस पुलिसतंत्र का महत्तम उपयोग किया था। इस दृष्टि से यह पुलिसतंत्र जनता का रक्षक बनने के बदले अंग्रेज हितों के लिए ही कार्य करते थे।

न्यायतंत्र का संगठन

अंग्रेजों ने दीवानी और फौजदारी जैसी श्रेणियों द्वारा न्याय व्यवस्था शुरू की। उसकी शुरुआत वोरेन हेस्टिंग्स ने रेग्युलेटिंग ऐक्ट (1773) में की। कॉर्नवालिस ने (1793) न्यायतंत्र की व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए। उसने प्रत्येक जिला में जिला न्यायाधीश के तहत दीवानी अदालत की स्थापना की। इसके द्वारा उसने कलेक्टर और न्यायाधीश को उनके कार्यों और पदों के अनुसार अलग किया। इसके अलावा उसने 4 प्रांतीय अदालत शुरू की। जिला अदालतों पर सदर दीवानी अदालतों की स्थापना की। जिला न्यायालय के नीचे रजिस्ट्रार की अदालतों की स्थापना की। उसके नीचे तहसील स्तर पर छोटी अदालतें स्थापित की गईं। इन न्यायालयों के न्यायाधीश मुनसफ और अमीन कहे जाते थे, ये न्यायाधीश भारतीय होते थे। फौजदारी केसों के लिए कॉर्नवालिस ने बंगाल प्रेसीडेन्सी को चार विभागों में बाँटा था। जो क्षेत्रीय न्यायालय कहलाते थे। उसमें निम्न स्तर पर भारतीय न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाती थी। उसने मुस्लिम कानून में परिवर्तन करके अंग्रेजी कानून लागू किया। विलियम बेन्टिक ने भी न्यायतंत्र में काफी परिवर्तन किया। उसने भारतीयों को न्यायतंत्र में उच्च पदों पर रखना शुरू किया। उसने प्रांतीय और क्षेत्रीय न्यायालय बंद करके उनके कार्य जिला न्यायाधीशों को सौंप दिया। कोलकाता, मद्रास (चेन्नई) और मुंबई में हाईकोर्ट की स्थापना की गई। सुप्रिम कोर्ट की स्थापना भी (ई.स. 1773) हो चुकी थी। उसने तत्कालीन अधिनियम को व्यवस्थित करके कानून की नई प्रणाली स्थापित की। भारतीय न्यायव्यवस्था परंपरा और प्रचलित रिवाजों पर आधारित थी। वह हिन्दू और मुस्लिम के लिए अलग-अलग थी, उसके बदले अंग्रेजों ने एक समान न्याय

व्यवस्था की शुरुआत की। कानून को संहिताबद्ध किया गया। उसकी स्पष्ट व्याख्या करके उसे आधुनिक स्वरूप दिया गया। नए (ई.स. 1833 के) चार्टर ऐक्ट के अनुसार कानून के समक्ष सबको समान माना गया।

ब्रिटिश सरकार ने मैकाले के नेतृत्व में भारतीय कानून को संहिताबद्ध करने के लिए एक LAW COMMISSION (विधि आयोग) की नियुक्ति (ई.स. 1833) की। उसने पश्चिमी देशों जैसी पद्धति भारत में लागू की। भारतीय दंडसंहिता और दीवानी प्रक्रिया के साथ जुड़े कानूनों का निरूपण किया। अब समग्र भारत में एक ही प्रकार का कानून लागू करना था और उसी तरह भारत में कानून के समक्ष सबको समान अधिकार देना था।

वैधानिक शासन और संविधान के सम्मुख सबकी समानता

अंग्रेजों ने RULE OF LAW (कानून का शासन) की आधुनिक विचारधारा प्रस्थापित की। इसका अर्थ यह था कि अंग्रेजी शासन सैद्धांतिक रूप से कानून के अनुसार चलेगा, शासक की व्यक्तिगत इच्छा अनुसार नहीं। कानून से जनता के अधिकार और कर्तव्य स्पष्ट किए गए। परंपरागत भारतीय शासनव्यवस्था में शासक की इच्छा ही कानून था, जबकि ब्रिटिश शासन ने कानून के आधार पर प्रशासन का स्वरूप लागू किया था। अंग्रेजी शासन दौरान भारतीय न्याय प्रणाली कानून समक्ष सबकी समानता के सिद्धांत पर आधारित थी। उस दृष्टि से, कानून की दृष्टि में मानवमात्र समान है। जाति-धर्म या वर्ग के आधार पर कानून की दृष्टि में कोई भेदभाव नहीं था। परंपरागत भारतीय न्यायव्यवस्था में जाति आधारित न्याय दिया गया। उच्च वर्ण की अपेक्षा निम्न वर्ण को एक ही अपराध के लिए अधिक सजा दी जाती थी, इतना ही नहीं, जमीनदारों और सामंतों के विरुद्ध न्यायालय में केस नहीं चलाया जाता था। जबकि ब्रिटिश शासन ने सामान्य लोगों के लिए भी न्यायालय के दरवाजे खोल दिए थे।

उसकी गुणवत्ता और क्षति

ब्रिटिश शासनतंत्र ने आधुनिक शासनतंत्र, पुलिसतंत्र, सैन्यतंत्र और न्यायतंत्र की स्थापना की; जो गुणवत्ता आधारित थी और आधुनिक स्वरूप की थी। परंतु हमें यह याद रखना चाहिए कि, भारत में ब्रिटिश शासन का एकमात्र उददेश्य ब्रिटिश साम्राज्य को भारत में मजबूत बनाना था। अत: आधुनिक संस्थाओं की स्थापना तो हुई परंतु भारतीयों को उसका लाभ नहीं मिल सका। जैसे कि, प्रशासनिक, सेना, पुलिस और न्यायतंत्र में भारतीयों को उच्च पद नहीं दिया जाता था। अंग्रेजी कानून त्रुटिपूर्ण था कारण कि एक विदेशी शासन भारत पर निरंकुश रूप से लाद दिया गया था। यूरोपियों के लिए अलग न्यायालय और अलग कानून थे। उनके क्रूर व्यवहार के सामने भारतीय कुछ नहीं कर सकते थे। व्यवहार में कानून की असमानता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। न्याय बहुत महँगा था, वर्षों तक केस चलते रहते थे। अज्ञानी और निरक्षर भारतीय जटिल न्यायालय व्यवस्था से बाहर थे। मानो कि धनाढ्य लोगों के लिए कानून और न्यायालय व्यवस्था से बाहर थे। मानो धनाढ्य लोगों के लिए कानून और न्यायालय था। पुलिस और न्यायालय में व्यापक भ्रष्टाचार था। जमीनदार सामान्य किसानों पर अत्याचार करते थे।

अविश्वास के तत्त्व

ब्रिटिश शासन की नीतियों के कारण भारत में एक अविश्वास का वातावरण-सा था। भारतीयों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के इस शोषणखोर प्रतीक का विरोध किया। दादाभाई नवरोजी से लेकर गाँधीजी तक के महान चिंतकों ने अंग्रेजों की प्रशासनिक, आर्थिक और न्यायव्यवस्था की भरपूर आलोचना की। महात्मा गाँधी ने कहा कि ''भारत की प्रजा के लिए विदेशी शासन और विदेशी कानून दोनों अस्वीकार्य हैं, कारण कि उसका उद्देश्य भारत की जनता के सुख के बदले ब्रिटिश स्वार्थ की पूर्ति करना था।'' संक्षेप में, अंग्रेजों द्वारा निर्मित यह शासनतंत्र और खास करके कानून तथा न्यायतंत्र के क्षेत्र में अविश्वास के तत्त्व सविशेष थे।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) अंग्रेज सरकार की न्यायतंत्रीय व्यवस्था समझाइए।

(2) अंग्रेजी सत्ता का महसूलतंत्र स्पष्ट कीजिए।

(3) अंग्रेजी सत्ता की प्रशासनिक सेवाओं की जानकारी दीजिए।

(4) अंग्रेज सरकार के पुलिसतंत्र की रूपरेखा बताइए।

(5) ईस्ट इंडिया कंपनी के शासनतंत्र की विशेषता बताइए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) द्विमुखी शासन पद्धति पर टिप्पणी लिखिए।

(2) कॉर्नवालिस का शासनतंत्र के निर्माण में क्या योगदान था?

(3) रेग्युलेटिंग (ई.स. 1773) ऐक्ट के विषय में बताइए।

(4) अंग्रेजी शासनतंत्र का स्वरूप बताइए।

(5) विलियम बेन्टिक के न्याय विषयक सुधार बताइए।

3. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) रेग्युलेटिंग ऐक्ट कब अमल में आया ?

(अ) ई.स. 1770 (ब) ई.स. 1771 (क) ई.स. 1772 (ड) ई.स. 1773

(2) फोर्ट विलियम कॉलेज कहाँ था?

(अ) कोलकाता (ब) मुंबई (क) चेन्नई (ड) अहमदाबाद

(3) किस वर्ष के चार्टर ऐक्ट से कंपनी का व्यापारिक एकाधिकार खत्म हुआ ?

(अ) ई.स. 1773 (ब) ई.स. 1793 (क) ई.स. 1813 (ड) ई.स. 1833

(4) ब्रिटिश हिन्द में सुप्रिम कोर्ट की स्थापना कब हुई ?

(अ) ई.स. 1750 (ब) ई.स. 1773 (क) ई.स. 1785 (ड) ई.स. 1800

(5) किस गर्वनर जनरल ने भारत में पुलिसतंत्र की शुरुआत की ?

(अ) क्लाइव (ब) हेस्टिंग्स (क) कॉर्नवालिस (ड) डलहौजी

●

5 1857 का संग्राम

ई.स. 1857 का संग्राम भारतीय प्रजा द्वारा अंग्रेजी शोषणखोर शासन की दी गई एक बड़ी चुनौती है। ई.स. 1757 से लगभग 100 वर्ष के अंग्रेजी शासन को उसने डगमगा दिया। भारतीय प्रजा के मानसपटल पर आज भी इस महाकथा का प्रभाव साफ देखा जा सकता है। वीर सावरकर ने सच ही कहा कि विदेशी शासन को भारतभूमि से उखाड़ देनेवाला भारत का यह प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम था। सभी भारतीयों ने राजा हो या जागीरदार, कारीगर, किसान, सैनिक, हिन्दू, मुस्लिम आदि ने अपनी क्षमता अनुसार योगदान दिया था। यूरोप के दो सबसे बड़े राष्ट्रों की प्रजा जितनी प्रजा ने और उनके विस्तार जितने बड़े विस्तार में भारतीय प्रजा द्वारा किया गया यह अनोखा संग्राम था। शहीदों के रक्त से मानो आजादी के जंग का ऐलान हुआ था। संपूर्ण देश एक साथ विदेशी शासन, आर्थिक शोषण, सामाजिक भेदभाव, सैन्य भेदभाव जैसे कारणों के विरुद्ध खड़ा हो गया था। इतना ही नहीं बल्कि उसके लिए जिम्मेदार अंग्रेजी शासन को हटा देने के लिए कटिबद्ध हो गया था। उसने पहली बार ही एक विदेशी शासन को जड़ से हिला दिया था। परिणामत: स्वतंत्रता प्राप्ति की तरफ हिंद का प्रयाण संभव हो सका।

1857 का संग्राम भारतीय इतिहास की एक गौरवपूर्ण गाथा है। कोई भी क्रांति, विप्लव या अदावत कुछ कारणों से ही पैदा होती है, ऐसी सोच अपूर्ण कही जा सकती है। उसकी प्रक्रिया वर्षों से चल रही होती है। कई इतिहासकार 1857 के संग्राम का मुख्य कारण सैनिक असंतोष तथा चर्बीवाली कारतूस के उपयोग के आदेश को मानते हैं। परंतु राजनीतिक दमन, प्रशासनिक अव्यवस्था, सैनिक असंतोष, पराधीनता का दु:ख, आर्थिक शोषण, सामाजिक भेदभाव, रंगभेद की नीति, राष्ट्रीय संस्कृति एवं धर्म के प्रति उपेक्षा या अवहेलना की कोशिश धार्मिक असहिष्णुता, शासितों को शासन में योग्य हिस्सा देने से इन्कार आदि कारणों में से कोई एक कारण नहीं, बल्कि अनेक कारणों से इस संग्राम का जन्म हुआ। अमरीका, फ्रांस, इटली, रूस, आयरलैंड तथा अफ्रीका और एशिया के कई देशों में ऐसे ही कारणों से स्वतंत्रता संग्राम का जन्म हुआ था।

ईस्ट इंडिया कंपनी के अंतिम गर्वनर जनरल के रूप में केनिंग भारत आया (1856), तब उसने शंका व्यक्त करते हुए कहा कि, ''मैं चाहता हूँ कि भारत में मेरा समयकाल शांतिपूर्ण रहे। मैं यह नहीं भूल सकता कि भारत का आकाश अभी शांत है, परंतु कभी भी (असंतोष का) छोटा बादल, भले वह एक हाथ का ही क्यों न हो ! परंतु यह निरंतर विस्तृत होकर, फटकर हम सबको निगल सकता है।'' केनिंग की उपर्युक्त शंका सही सिद्ध हुई। 1857 के संग्राम की ज्वाला भारतभर में फैल गई। इस संग्राम की शुरुआत सैनिक विद्रोह के रूप में हुई परंतु भारत की अधिकांश जनता, किसान, मजदूर, कारीगर, जनजाति के लोग, सैनिक और राजा-रजवाड़ों ने अपने-अपने ढंग से उसमें आहुति दी।

शासन के समक्ष असंतोष के कारण

राजनैतिक कारण

1857 तक भारत की ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने युद्धनीति, चाणक्यनीति तथा 'फूट डालो राज करो' की नीति का सहारा लेकर भारत में अपने राज्य का खूब विस्तार किया। वेलेस्ली की सहायक योजना ने भारत के कई राज्यों को कंपनी के अधीन बना दिया था। हैदराबाद (निजाम) और अवध (नवाब) के राज्यों पर अंग्रेजों का अंकुश हो गया। तांजोर, सूरत और कर्नाटक के राज्यों का शासन अंग्रेजों के हाथ में चला गया। मराठा सत्ता के केन्द्र पूना, इंदौर, ग्वालियर, नागपुर को हिला दिया। हेस्टिंग्स ने वेलेस्ली के विस्तारवाद को आगे बढ़ाया।

डलहौजी ने युद्ध करके, प्रशासनिक अव्यवस्था का बहाना करके और दत्तक पुत्र लेने का अधिकार छीनकर उग्र रूप से और आक्रमक शैली से हिन्द के असंख्य देशी राज्यों को खालसा करके ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल कर दिया।

जिनमें सतारा, जैतपुर और संभलपुर, बघाट, उदयपुर, झाँसी, नागपुर, अवध वगैरह का समावेश होता है। पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहब की पेन्शन (वर्षासन) और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को उनके राज्य से विमुख कर दिया गया।

इसके उपरांत डलहौजी ने 'ईनाम कमीशन' नियुक्त करके जमीनदारों की जमीनें जप्त कर ली थी। इस तरह डलहौजी की खालसा नीति ने राजाओं, जमीनदारों तथा लोगों के असंतोष को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया, इससे लोगों में ऐसी भावना दृढ़ हो गई कि राजा-महाराजाओं की जो ऐसी दशा है तो सामान्य जनता का क्या होगा?

प्रशासनिक कमियाँ

कंपनी के शासन में हिंदवासियों को ऐसा कुछ खास दिया नहीं गया, जिससे उनमें कंपनी के प्रति विश्वास और संतोष की भावना पैदा हो। अंग्रेजों ने सभी उच्च पदों पर हिंदवासियों के स्थान पर अंग्रेजों को नियुक्त किया था। 1833 की धारा की एक कलम अनुसार योग्यता के आधार पर हिंद के लोगों को पदोन्नति नहीं की गई थी। जिससे शिक्षित लोगों में असंतोष व्याप्त था। अंग्रेजों द्वारा स्थापित प्रशासनिक व्यवस्था लोकाभिमुख नहीं थी, यह उनकी सबसे बड़ी कमी थी। अंग्रेजों की कठोर महसूल नीति, सामान्य तथा गरीब वर्ग पर डाला गया भारी कर, खर्चीली न्याय व्यवस्था, शिथिल और रिश्वतखोर प्रशासन आदि ने भी लोगों के असंतोष में वृद्धि की। पुलिसतंत्र भी ज्यादातर निष्क्रिय था, जिससे शायद ही सही अपराधी पकड़ा जाता था। सरकार जनकल्याण कार्य हेतु अपनी जिम्मेदारी नहीं मानती थी। इस तरह, लोगों की परेशानी बढ़ने पर 1857 के संग्राम की भूमिका तैयार हुई।

आर्थिक शोषण

कंपनी की आर्थिक नीति ने भारत के विदेशी व्यापार को नष्ट कर दिया। इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति का भारत के व्यापार पर प्रभाव पड़ा। अब भारत केवल कच्चे माल और अनाज का ही निर्यात करनेवाला देश रह गया। बंगाल में कंपनी की सत्ता की स्थापना हुई तब से ही ग्रामोद्योग, हस्तकला, कारीगरी के उद्योग और विदेशी व्यापार मृतप्राय हो गए थे। अंग्रेजों ने भारत को कच्चा माल प्राप्त करने का संस्थान तथा तैयार माल बेचने का बाजार बना दिया था। जिससे भारत की अथाह धन-संपत्ति इंग्लैंड से भारत आनेवाले कपड़े और माल-सामान पर सरकार सामान्य आयातकर लेती थी, जबकि भारत में तैयार माल भारत में ही महँगा पड़ने लगा। परिणामत: भारत के उद्योग-धंधे टूट गए। व्यापार और उद्योग के केन्द्र समान ढाका, मुर्शिदाबाद, सूरत, मदुराई वगैरह शहर बर्बाद हो गए।

कृषि, उद्योग और व्यापार के विनाश के साथ-साथ हिंद के लोगों को अपने ही देश में महत्त्वपूर्ण तथा नौकरी में उच्च पदों से दूर रखा गया। भारतीय देशी रियासतों के नाश से दरबार भी बंद हो गए। नागरिक और सैनिक नौकरियों में भी हिंद के लोगों को योग्य स्थान नहीं दिया जाता था। न्यायतंत्र में वे सामान्य पद ही प्राप्त कर सकते थे, इससे बेरोजगारी और गरीबी का आगमन हुआ।

तदुपरांत ईस्ट इंडिया कंपनी के समय में 1801 से 1855 तक भारत में बीच-बीच में अकाल पड़ा, जिसने हिन्दुस्तानियों का सामाजिक और आर्थिक जीवन बदल डाला। कंपनी ने अकाल पीड़ितों की मदद के लिए कोई भी प्रयत्न नहीं किया।

सामाजिक और धार्मिक कारण

विलियम बेन्टिक के शासनकाल के बाद हिंद में तेजी से पाश्चात्य सुधार की हवा चल पड़ी, इससे सदियों पुरानी समाज व्यवस्था का ढाँचा खंडित होने लगा। कंपनी शासकों द्वारा शुरू किए गए समाजसुधार को भारत का रूढ़िचुस्त समाज भय और शंका की दृष्टि से देखने लगा। अंग्रेजों ने सतीप्रथा, दूधपीती प्रथा तथा बालविवाह को रोकने के लिए कानून बनाया, विधवा विवाह को कानून सम्मत बनाया। इन परिवर्तनों को भारत के रूढ़िचुस्त समाज ने अपनी धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था में हस्तक्षेप माना।

इसके उपरांत अंग्रेज सरकार के कई कानून तो मानो सनातन चली आ रही समाजव्यवस्था पर व्यवस्थित प्रहार करने के लिए तथा हिन्दू-मुस्लिमों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने के लिए ही बनाए गए हों, ऐसा लग रहा था। ईसाई धर्म प्रचारकों और पादरियों ने भारतीयों के धर्म परिवर्तन के लिए खूब प्रयत्न किए। हिन्दू-मुसलमानों के विरुद्ध प्रचार किया। ईसाई धर्म प्रचारकों और पादरियों को सरकारी संरक्षण प्राप्त था। ईस्ट इंडिया कंपनी के अध्यक्ष आर. डी. मेंगल्ज ने 1857 में ब्रिटिश पार्लामेन्ट में कहा कि, ''परमात्मा ने हिन्दुस्तान का विशाल साम्राज्य इंग्लैंड को इसलिए दिया है कि हिन्दुस्तान में एक छोर से दूसरे छोर तक ईसा मसीह का विजय ध्वज फहराता रहे। हम सब में से प्रत्येक को अपनी पूरी ताकात इस कार्य में लगाना चाहिए, जिससे समग्र भारत में ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए किसी भी प्रकार की कोई कसर न रह जाए।''

धर्म परिवर्तन के लिए अब पुलिस का सहयोग लिया जाता था, सेना में सरकारी खर्च पर पादरी रखकर ईसाई धर्म का प्रचार और धर्म परिवर्तन होता था। सैनिक छावनी में ईसाई बनाने के लिए साहित्य वितरण होने लगा। Religious Disabilities Act (1850) के कानून ने ईसाई हो गए हिन्दू या मुस्लिम को पैतृक संपत्ति में हिस्सा पाने का हकदार माना। इससे पूर्व परंपरागत नियम अनुसार धर्मान्तर करनेवाले व्यक्ति को पैतृक संपत्ति में हिस्सा नहीं मिलता था। अत: हिन्दू तथा मुस्लिमों की सरकार की धार्मिक नीति के प्रति शंका अधिक दृढ़ हो गई। आगरा में ऐसा फरमान जारी किया गया कि प्रत्येक हिन्दुस्तानी अग्रेजों को सलाम करे। यदि ऐसा न करे या ऐसा करने में निष्फल हो तो वह दंड या सजा का पात्र माना जाय। अंग्रेज भारतीयों के साथ दुत्कार पूर्ण व्यवहार करते थे और उनका तिरस्कार भी करते थे। ईसाई पादरियों ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा देनेवाले कई विद्यालय खोले और उनमें ईसाई धर्म की शिक्षा अनिवार्य बनाकर (1833 से 1859) खुलेआम ईसाई धर्म का प्रचार किया। मात्र विद्यालयों में ही नहीं, बल्कि जेल, सैन्य केन्द्रों, सरकारी कार्यालयों वगैरह में भी ईसाई धर्म का प्रचार किया जाता था। धार्मिक भावना को उस समय गहरी चोट पहुँच जब कंपनी सरकार ने मंदिरों और मस्जिदों की संपत्ति पर कर लगा दिया। इससे पूर्व भारतीय शासकों द्वारा धार्मिक संस्थाओं को करमुक्त रखा गया था। कई हिन्दू-मुस्लिम परिवारों का जीवननिर्वाह मंदिर-मस्जिद की जमीन की आय पर निर्भर था। इन सबका संयुक्त प्रभाव भारत के अज्ञान, अबोध होने पर भी प्राण से भी अधिक धर्म को चाहनेवाले जन समुदाय पर पड़ा। जिसने उनके दिल में अंग्रेजों के प्रति रोष और नफरत की भावना पैदा की।

सैनिक कारण

इतिहास में यह एक पहेली रही है कि भारत के सैनिक और खास करके बंगाल के सैनिक (Bengal Army), अंग्रेजों के प्रति वफादारी में सबसे आगे रहे हैं, वही बाद में अंग्रेजों के सामने संग्राम में भी आगे रहे हैं। लोकमानस में अंग्रेजों के प्रति रोष और असंतोष भरा हुआ था। उसे प्रकट करने का कार्य सेना ने किया। भारतीयों को कठोर सैनिक-सेवा देनी पड़ती थी, फिर भी भारतीय सैनिकों का वेतन, भत्ता, सुविधा आदि अंग्रेज सैनिकों की तुलना में बहुत कम था। विशेष सेवा देने के बदले या युद्ध दौरान भारतीय सैनिकों को जो दैनिक भत्ता दिया जाता था, उसकी अपेक्षा अंग्रेज सैनिकों को दैनिक भत्ता तीन से चार गुना अधिक दिया जाता था। यदि कहीं भारतीय सैनिकों को देश में ही सेवा देनी होती थी तो वह भी बंद कर दिया जाता था। इसके बाद भी 25 से 30 वर्ष की वफादारीपूर्वक दी गई सेवा के बदले भारतीय सैनिक अधिक से अधिक सूबेदार के पद तक ही पहुँच पाता था, जिसका मासिक वेतन 60 से 70 रुपए था। जबकि अंग्रेज सैनिक सेना के किसी भी उच्च पद तक पदोन्नति पा सकता था। विशेष रूप से अंग्रेज अधिकारियों का व्यवहार भारतीय सैनिकों के प्रति अपमानजनक था। अवध को अंग्रेजी राज्य में मिला दिया (1856)। बंगाल के सैनिकों में अधिकांशत: अवध के सैनिक थे, इससे उनमें असंतोष की भावना फैल गई थी। सैनिक बैरक में समूह भोजन (mess) प्रथा उनके छूत-अछूत और जातिप्रता के नियमों को भंग करती थी। भारतीय सैनिकों को तिलक करने, दाढ़ी रखने और खास प्रकार की पगड़ी बाँधने पर प्रतिबंध लगाया गया था। गर्वनर जनरल केनिंग ने बंगाल की सेना के लिए सामान्य सेना भर्ती अधिनियम (General Enlistment Act-1856) लागू कर दिया था। जिसके अनुसार

नए भर्ती होनेवाले हर सैनिक को जमानत देनी पड़ती थी कि भारत या भारत के बाहर कहीं भी उसे लड़ने जाना पड़ा तो वह खुशी-खुशी जाएगा। उस समय लोकमान्यता के अनुसार समुद्र पार जाने से उनका धर्म भ्रष्ट माना जाता था।

कई युद्धों में अंग्रेज सेना की बहुत बड़ी हार हुई थी। उदाहरण स्वरूप; प्रथम अफगान विग्रह (1838-1842) में अंग्रेजों की बहुत बुरी हार हुई। पंजाब संघर्ष (1848-1849) में भी अंग्रेजों को बहुत बड़ा नुकसान उठाना पड़ा। इससे सैनिकों में अटूट आत्मविश्वास पैदा हो गया कि अंग्रेज अजेय नहीं हैं। इस तरह उत्पन्न सैनिक असंतोष और मान्यताओं ने भारतीय सैनिकों को संग्राम के प्रति प्रेरित किया।

अन्य कारण

प्लासी के युद्ध को (जून, 1757) सौ वर्ष पूरे हो रहे थे। ऐसी भविष्यवाणी की गई थी कि भारत में कंपनी का राज्य सौ वर्ष तक रहेगा। और समय पूरा होते ही वह नष्ट हो जाएगा। 1857 के मई महीने में सौ वर्ष पूरा हो रहा था। इस मान्यता ने 1857 के संग्रामकारियों को प्रेरणा दी। इस दौरान इटली, ग्रीस, बेल्जियम आदि देशों में स्वतंत्रता के लिए लड़ाइयाँ हुईं। उनसे भी भारतीयों को प्रेरणा मिली। संग्राम के सेनानियों ने (1857 के 31 मई के दिन) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का झंडा फहराने का निश्चय किया ।

1857 के संग्राम का तात्कालिक कारण

चरबीवाली कारतूस

अंग्रेजों ने चरबीवाली कारतूसयुक्त राइफल के उपयोग का आदेश दिया, जिसने स्वतंत्रता संग्राम में चिनगारी का काम किया। भारतीय सैनिकों को पुरानी लोहे की बंदूक ब्राउन बेज (Brown Bess) के बदले नई एन्फिल्ड रायफल (New Enfield Rifle) दी गई।

ब्राउन बेज (Brown Bess) रायफल

नई एन्फिल्ड (Enfield) रायफल

इस नई राइफल में कारतूस के ऊपर के भाग में लगे कैप को दाँत से तोड़ना पड़ता था। इसी समय (जनवरी, 1857) बंगाल की सेना में अफवाह फैली कि कारतूसों को बनाने में गाय और सुअर की चरबी का उपयोग होता है। हिन्दू तथा मुस्लिमों के लिए क्रमशः इन दोनों प्राणियों के माँस का स्पर्श वर्जित है। उसके बदले जब मुँह से खींचने की बात आई तो वे एकदम भड़क गए। उन्हें पूरा विश्वास था कि अंग्रेजों ने भारतीयों का धर्म भ्रष्ट करने लिए ऐसा इरादापूर्वक किया। इन कारतूसों में गाय तथा सुअर की चरबी का उपयोग होता था, यह बात सही थी। उसके विषय में पाश्चात्य इतिहास विवेचक सर जॉन लिखते हैं कि ''चिकना मसाला बनाने में गाय-सुअर की चरबी का उपयोग किया जाता था, इसमें जरा भी संदेह नहीं है।'' सिपाहियों द्वारा उस कारतूस का उपयोग करने से इंकार करने पर विद्रोह की शुरुआत हुई।

1857 के संग्राम का आरंभ और प्रसार

कुछ विद्वानों के मतानुसार 1857 का संग्राम सोच-विचार कर की गई पूर्व आयोजित योजना थी। उसका नेतृत्व अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग नेताओं ने की थी। उसमें धार्मिक नेता, भूतपूर्व राजा, किसान, कारीगर, सैनिक और सामान्य लोगों ने भाग लिया था। प्रचार माध्यम के लिए पुस्तिका, लालकमल और फूल का उपयोग हुआ था। प्रचार के लिए तीर्थस्थलों, मेलों और उत्सवों का उपयोग किया गया था। संग्राम की एक तारीख (31 मई, 1857) समग्र भारत के लिए तय की गई थी, परंतु वह निर्धारित समय से पहले ही शुरू हो गया।

पहली घटना बंगाल की बराकपुर छावनी में घटित हुई। वहाँ सेना की 19वीं पलटन ने चरबीवाले कारतूस के उपयोग से इंकार कर दिया। अत: (29 मार्च, 1857, रविवार) 19वीं पलटन को अंग्रेज अफसरों ने बिखर जाने का आदेश दिया, और तुरंत ही 34वीं पलटन के सिपाई मंगल पांडे भरी बंदूक लेकर आगे आ गए। जिससे मंगल पांडे को गिरफ्तार करने के लिए सार्जन्ट मेजर ह्युसन ने आदेश दिया। मंगल पांडे ने तुरंत गोली चला दी और ह्युसन वहीं ढेर हो गया। घोड़े पर सवार दूसरा अंग्रेज अधिकारी लेफ्टिनेंट बध आगे बढ़ा। मंगल पांडे ने उसकी तरफ भी गोली चला दी, वह भी घोड़े सहित वहीं ढेर हो गया। अत: मंगल पांडे को गिरफ्तार करके 8 अप्रैल, 1857 के दिन फाँसी दी गई। इस तरह वे 1857 के संग्राम के प्रथम शहीद बने। मंगल पांडे को फाँसी देने के बाद 19 और 34 नंबर की देशी पलटन से हथियार ले लिए गए और साथ-साथ पलटन को बिखेर दिया गया।

बहादुरशाह द्वितीय

संग्राम की सही शुरुआत मेरठ में (10 मई, 1857) हुई। मेरठ में 90 सिपाहियों की एक टुकड़ी को चरबीवाली नई कारतूसें उपयोग के लिए दी गईं और उन्हें दाँत से कारतूस की कैप तोड़ने को कहा गया। 90 में से 85 सिपाहियों ने नई कारतूस को स्पर्श करने से इन्कार कर दिया। जिससे उनका कोर्टमार्शल करके 10 वर्ष की कैद की सजा दी गई। उनकी वर्दी उतरवा ली गई और परेड मैदान पर ही हाथ-पैर में बेड़ियाँ डाल दी गईं तथा जेल में बंद कर दिया गया। जिससे मेरठ के अन्य सिपाहियों ने उत्तेजित होकर बलवा कर दिया। उन्होंने अपने 85 भाइयों को मुक्त कर दिया। उन्हीं के साथ दूसरे अपराधी कैदियों को भी छोड़ दिया गया। उन्होंने अंग्रेज अफसरों की हत्या कर दी। वहाँ से बलवाखोर सिपाही दिल्ली की तरफ कूच कर गए। उन्होंने दिल्ली जीत लिया और मुगल बादशाह बहादुर शाह द्वितीय को भारत का शहंशाह घोषित कर दिया।

इस तरह, दिल्ली संग्राम का मुख्य केन्द्र बन गई। हिंदुस्तान की प्राचीन राजधानी दिल्ली कंपनी के हाथ से संपूर्ण रूप से मुक्त हो गई (मई 1857) और सम्राट बहादुर शाह फिर से भारत के सही सम्राट के रूप में माने जाने लगे। बहादुर शाह का झंडा ही उस समय विप्लवकारियों का झंडा था।

बेगम जीन्नत महल

संग्राम के अन्य मुख्य केन्द्रों में उत्तर भारत में कानपुर,लखनऊ, झाँसी, पटना, जगदीशपुर और बरेली थे। कानपुर में संग्राम का संचालन नानासाहब पेशवा कर रहे थे। जबकि लखनऊ में पूर्व नवाब की बेगम हजरत महल ने संग्रामकारियों को बुद्धिमानी से उत्साहित किया। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई तथा उनकी महिलाओं की बनी सैनिक टुकड़ी लगभग पंद्रह दिन तक ह्युरोज के नेतृत्ववाली अंग्रेजी सेना का जमकर मुकाबला किया। उन्होंने कालपी, ग्वालियर और अन्य स्थलों पर अंग्रेजों से वीरतापूर्वक युद्ध किया। बिहार में जगदीशपुर के जागीरदार कुंवरसिंह ने 82 वर्ष की उम्र में भी सफलतापूर्वक संग्राम का संचालन किया। उन्होंने अपने तेज आक्रमण से अंग्रेजों को हँफा दिया। बरेली में बहादुर खान मुख्य नेता थे।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई

उत्तर भारत में बनारस, इलाहाबाद, फैजाबाद, आगरा आदि भी 1857 के संग्राम के केन्द्र थे। राजस्थान में नीमरा, नसीराबाद, आबू आदि संग्राम के मुख्य केन्द्र थे। मध्यप्रदेश में ग्वालियर, झाँसी, इन्दौर, महूव, मंदसोर और धार संग्राम के मुख्य केन्द्र थे। गुजरात में अहमदाबाद, गोधरा, पाटण, खेरालु, खेड़ा, द्वारका, ओखा, विजापुर, साबरकांठा वगैरह ने

भारत में 1857 के संग्राम के मुख्य स्थल

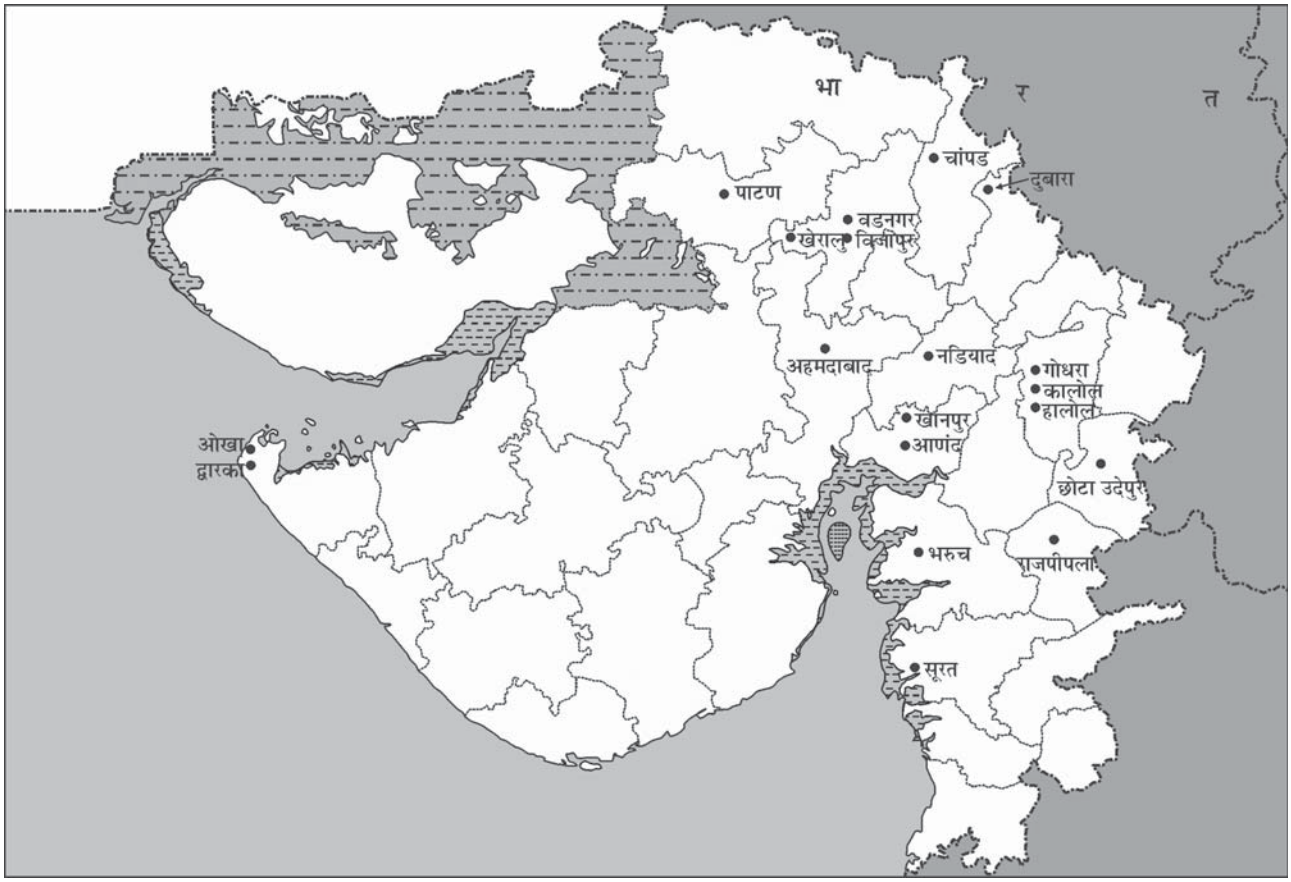

गुजरात में 1857 के संग्राम के मुख्य केन्द्र

संग्राम में सक्रिय हिस्सा लिया था। महाराष्ट्र में सतारा, कोल्हापुर, बेलगाम, जोरापुर, सावंतवाड़ी और नारगुंड संग्राम के मुख्य केन्द्र थे। यहाँ विशेष उल्लेख करना होगा कि गुजरात में 1857 के विप्लव में गरबड़दास मुखी, जोधा माणेक और मुलु माणेक तथा मगन भूखण (वैष्णव) महत्त्वपूर्ण नेता थे। साबरकांठा के पांडरवाड़ा गाँव के आदिवासियों ने अंग्रेजों के साथ सशस्त्र लड़ाई की थी, जो गुजरात के संलग्न मानचित्र से स्पष्ट होता है।

संक्षेप में कहें तो इस संग्राम में अधिकांश क्षेत्रे के विविध भाषा बोलनेवाले लोगों ने, विविध धार्मिक एवं जातीय संप्रदाय के लोगों ने और विविध वर्गों ने भाग लिया था।

संग्राम की निष्फलता के कारण

ई.स. 1857 का संग्राम अंग्रेजों को हटाने में निष्फल गया। इस निष्फलता के पीछे कई कारण गिनाए जा सकते हैं :

केन्द्रीय नेतृत्त्व का अभाव

संग्राम की निष्फलता का महत्त्वपूर्ण कारण केन्द्रीय संगठन और सर्वोपरि नेतृत्त्व का अभाव था। संग्रामकारियों का अनुशासन बहुत कमजोर था। सिपाही अपनी मनमानी काम करते थे। दिल्ली, कानपुर, इलाहाबाद, झाँसी आदि स्थानों पर नेताओं के आदेश की अवगणना करके सिपाहियों ने कई कार्य अघटित रूप से किए। जिसका प्रजा के मानसपटल पर विपरीत असर पड़ा और अव्यवस्था पैदा हो गई। जिसने संग्राम को कमजोर किया। कुछ राजाओं और जागीरदारों ने दिलपूर्वक तात्याटोपे और लक्ष्मीबाई की सूचनाओं का पालन नहीं किया। लक्ष्मीबाई कुशल महिला थी, लेकिन महिला होने के कारण उनकी सूचनाओं का पालन नहीं हुआ। तात्या को सेनानी के रूप में स्वीकार नहीं किया गया।

संग्राम का कुछ प्रदेशों तक सीमित रहना

संग्राम व्यापक होने पर भी भारत के कुछ प्रदेशों तक ही मर्यादित था। पंजाब, राजस्थान, कश्मीर, सिंध, पूर्वी बंगाल, नेपाल, आसाम और दक्षिण भारत के प्रदेश लगभग संग्राम से अलिप्त थे।

देशी राजा-रजवाड़ों द्वारा अंग्रेजों का समर्थन

अधिकांश राजा संग्राम से अलिप्त ही थे। हैदराबाद के निजाम, कश्मीर के राजा गुलाबसिंह, पतियाणा, नाथा और जिंद के सिख शासक, इंदौर के होलकर, ग्वालियर के सिंधिया, वडोदरा के गायकवाड, भोपाल के नवाब, टीकागढ़ और टेहरी के राजा ने संग्राम को दबा देने के लिए अंग्रेजों का साथ दिया।

इसी तरह संग्राम को निष्फल बनाने में तथा अंग्रेज सरकार को विजय दिलाने में सिखों तथा गोरखों ने उल्लेखनीय योगदान दिया। वे अंग्रेजों के पक्ष में लड़े।

विद्रोहियों की कमजोरियाँ

अंग्रेजों की तुलना में विद्रोहियों में व्यवस्थित योजना का अभाव था। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और तात्याटोपे को छोड़कर विद्रोहियों के पास सफल नेतृत्व का अभाव था। जबकि सामने के पक्ष में लोरेन्स भाइयों, हेवलोक, नील, निकोल्सन, एडवर्ड, ह्युरोज, केम्पबेल आदि अनुभवी और शक्तिशाली सेनापति थे, जिन्होंने संग्राम को निष्फल बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

गुणवत्ता की दृष्टि से अंग्रेजों का अश्वदल, तोपदल तथा पैदल सेना विप्लवकारियों के दलों की तुलना में बहुत शक्तिशाली थे। उनकी समुद्री ताकत भी प्रशंसनीय थी, जबकि विप्लवकारियों के पास इसका एकदम अभाव था। ब्रिटिश नौकादल इंग्लैंड, ईरान वगैरह से नई सेना और शस्त्रसामग्री लाने में खूब उपयोगी हो गई थी।

अंग्रेजों के पास रेलवे तथा संचार व्यवहार था जो उन्हें सैन्य तथा रसद की हेराफेरी में और संदेश की आप-ले में अत्यंत उपयोगी था।

शिक्षितों की अलिप्तता

अधिकांशत: शिक्षित तथा बुद्धिजीवी संग्राम में नहीं जुड़े थे। अत: संग्राम पुरानी पद्धति से मुक्त होकर उच्च स्तर प्राप्त नहीं कर सका। उन्हें अंग्रेज नए युग के प्रतीक लगे, इसलिए वे तटस्थ रहे।

समान ध्येय तथा राष्ट्रीयता का अभाव

संग्रामकारियों में समान ध्येय और राष्ट्रीय भावना का अभाव था, जिसे संग्राम की निष्फलता का कारण माना जा सकता है। संग्रामकारी मुगल राज्य की पुन: स्थापना करना चाहते थे, सिक्ख और शिक्षित वर्ग यह नहीं चाहते थे। वे मध्ययुगीन स्वेच्छाचार की पुन: स्थापना नहीं करना चाहते थे।

संग्राम का निर्धारित समय से पहले प्रारंभ होना

निश्चित तारीख से संग्राम की शुरुआत पहले हो गई, जिससे संग्राम के ध्येय को भारी नुकसान पहुँचा। संग्राम के लिए 31मई, 1857 की तारीख तय की गई थी परंतु मंगल पांडे के हाथों उसकी शुरुआत अचानक 29 मार्च, 1857 रविवार के दिन हो गई। इस तरह, लगभग दो महीने पहले संग्रामकारियों की योजना जाहिर हो गई, जिससे अंग्रेज सावधान हो गए। माल्सन का कहना है कि निश्चित तारीख को एक ही समय पर भारतभर में संग्राम हुआ होता तो शायद भारत से अंग्रेज राज्य समाप्त हो गया होता।

1857 के संग्राम का स्वरूप और भिन्न-भिन्न अभिप्राय

1857 के संग्राम के स्वरूप के विषय में समकालीन तथा अनुकालीन लेखकों में भिन्न-भिन्न मत हैं। संग्राम के स्वरूप के संबंध में विद्वानों में परस्पर विरोधी मत हैं। चार्ल्स रेक्से ने अपनी पुस्तक 'नोट्स ऑन द रिवोल्ट इन द नार्थ' 'वेस्टर्न प्राविन्स ऑफ इंडिया' जो पुस्तक 1858 में प्रकाशित हुई। उसमें उसने संग्राम को एक सैनिक विद्रोह कहा है और यह भी बताया कि कुछ क्षेत्रों में इस विद्रोह ने जनविद्रोह का स्वरूप ले लिया था। इस विचारधारा का समर्थन किशोरीचंद्र मित्र, शंभु चंद्र मुखोपाध्याय, हरिशचंद्र मुखर्जी और सर सैयद अहमद खां ने किया है। इस संग्राम को एक सैनिक विद्रोह कहा गया है।

सर जॉन लारेन्स, मार्शवेन, सर जॉन सीली वगैरह इसे मात्र सैनिक विद्रोह ही मानते थे, जबकि इंग्लैंड के राजपुरुष डिजरायली और न्यायाधीश मेकाथी ने इस संग्राम को कंपनी सरकार के समक्ष एक राजनैतिक और धार्मिक विद्रोह माना है। डॉ. आर. सी. मजमुदार के मतानुसार वह 'सिपाहियों का विद्रोह' था, जिसे बाद में लोगों ने सहयोग दिया। सर्वप्रथम विनायक दामोदर ने इस विद्रोह को भारत का सर्वप्रथम स्वातंत्र्यसंग्राम माना है। पट्टाभि सीता रामैया ने भी 1857 के महान आंदोलन को भारत का प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम कहा है। अशोक मेहता ने अपनी पुस्तक 'द ग्रेट रिबेलियन' में सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वह एक राष्ट्रीय विप्लव था। अधिकांशतः राष्ट्रीय इतिहासकारों, विचारकों तथा राजनीतिज्ञों ने 1857 के विप्लव को 'राष्ट्रीय स्वातंत्र्यसंग्राम' के रूप में बताया है। डॉ. एस. एन. सेन ने अपनी पुस्तक '1857' में लिखा है कि ''जिस विप्लव का आरंभ धार्मिक युद्ध के रूप में शुरू हुआ, उसका स्वतंत्रता संग्राम के रूप में अंत हुआ।'' भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने सच ही कहा है कि ''विप्लव की व्यापकता और उसके संगठन को देखते हुए उसे मात्र सैनिक विद्रोह ही नहीं कहा जा सकता है। बल्कि विदेशी सत्ता के खिलाफ लोगों द्वारा दी वह एक चुनौती थी।'' पंडित नेहरू ने भी विप्लव को विदेशी सत्ता के सम्मुख लोगों का बलवा ही माना है। डॉ. राधाकृष्णन के मतानुसार 1857 का विप्लव और उनके नेताओं द्वारा कुछ कमियाँ होने पर भी उनके नेतृत्व कर्ताओं की वीरता और बलिदान भावि राष्ट्रीय आंदोलनों के लिए प्रेरणारूप थी। भारत की प्रजा को जब अपने ऊपर विदेशियों की सत्ता स्थापित होने का एहसास हुआ (1857) तब उन्होंने अंग्रेजों के समक्ष शस्त्र उठाया अर्थात् भारतीयों का यह प्रयास छलकपट से छीनी गई सत्ता को पुनः प्राप्त करने का प्रयास कहा जाएगा, बलवा या विप्लव नहीं कहा जा सकता है।

केवल सैनिक विद्रोह नहीं

कई लेखकों ने इस संग्राम को 'सैनिक विद्रोह' कहा है। परंतु उसे मात्र सैनिक विद्रोह कहना योग्य नहीं होगा। जबकि संग्राम के सभी केन्द्रों पर विद्रोह सैनिकों द्वारा ही शुरू हुआ था और सैनिकों की उसमें मुख्य भूमिका थी। मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर, नाना साहब, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, हजरत महल, जीनत महल वगैरह संग्राम के नेताओं को तो बाद में जुड़ना पड़ा था। इसके बाद भी सामान्य जनता ने भी उसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। संग्राम के नेता सैनिकों के बदले राजा-महाराजा या लोकनेता थे। इस संग्राम में हिन्दू-मुस्लिम एकता अपूर्व थी। इससे स्पष्ट होता है कि संग्राम को मात्र 'सैनिक विद्रोह' कहना उचित नहीं है।

महान-उत्थान

इस संग्राम को 'सैनिक विद्रोह' की अपेक्षा कुछ विशेष और स्वाधीनता की अपेक्षा कुछ निम्न घटना मानी जा सकती है। भारत में अंग्रेजी सत्ता को सैनिकों और लोगों की तरफ से मिली यह पहली बड़ी चुनौती थी। इसकी शुरुआत सैनिकों द्वारा हुई थी। उस समय उनके मन में राष्ट्रप्रेम संबंधी समझ शायद न भी रही हो, परंतु विदेशी अंग्रेजों द्वारा भोग रहे अपमान, अंग्रेज मालिकों का दुत्कारपूर्ण व्यवहार, जुल्म, अत्याचार और उनके अमावनीय व्यवहारों ने उन्हें गुलामी का एहसास करवाया। इसीलिए उन्होंने अपने विदेशी मालिकों की तलवार उन्हीं मालिकों के

सामने उठा ली होगी। इस दृष्टि से उस 'ब्रिटिश साम्राज्यवाद' को भारत की प्रथम चुनौती कहा जा सकता है, जिसने भविष्य के स्वतंत्रता संग्राम को प्रेरणा दी।

1857 के संग्राम का परिणाम

1857 के संग्राम के स्वरूप के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है, परंतु इस बात में कोई दो मत नहीं कि संग्राम ने जनता की भावि प्रवृत्ति पर गहरा प्रभाव डाला।

कंपनी शासन का अंत : 1857 के संग्राम के कारण भारत से कंपनी शासन का अंत हुआ और ब्रिटिश सत्ता ने सीधे भारत का शासन संभाल लिया। जिसके परिणाम स्वरूप अंग्रेजों को भारत के प्रति अपनी राजनैतिक, प्रशासनिक, सैन्य, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक नीति में भारी परिवर्तन करना पड़ा। नवंबर, 1858 में प्रकाशित महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र में परिवर्तन की झाँकी करानी पड़ी।

प्रशासनिक परिवर्तन :1857 के संग्राम के फलस्वरूप सरकार की प्रशासनिक नीति परिवर्तित हुई। ई.स. 1861 में भारतीय धारासभा का कानून पारित किया गया। जिसमें भारतीयों को पहलीबार स्थान मिला। इस तरह, धीरे-धीरे सरकार स्वेच्छाचारी के बदले अब वह संवैधानिक बनी।

देशी राज्यों से संबंधी नीति में बदलाव : इस संग्राम के परिणाम स्वरूप अंग्रेजों ने देशी राज्यों को खालसा करने की नीति का त्याग किया। देशी राजाओं को उनका मान-सम्मान और उत्तराधिकार तथा दत्तकपुत्र लेने का अधिकार जैसे कई अधिकार चालू रखने का विश्वास दिलाया। इसके परिणाम स्वरूप देशी राज्य अंग्रेजों के वफादार बन गए।

नौकरियों में समानता : 1857 के संग्राम बाद अंग्रेजों ने भारतीयों को उच्च पदों पर योग्यता के अनुसार नियुक्त करने की प्रथा शुरू हुई।

सैन्य पुनर्रचना : 1857 के संग्राम बाद तुरंत ही सैन्य पुनर्रचना की गई। जिसमें ब्रिटिश सैनिकों का अनुपात बढ़ाकर देशी सैनिकों का अनुपात कम किया गया। सिख, गोरखा, पठान, राजपूत आदि की सैन्य रेजीमेन्ट बनाई गई। भारतीय सिपाहियों से युद्ध सामग्री ले ली गई और प्रत्येक टुकड़ी को उनके वतन से दूर के स्थल पर काम सौंपा गया।

आर्थिक नीति में परिवर्तन : संग्राम से सरकार की आर्थिक नीति में परिवर्तन आया। कई भारतीय उद्योग जैसे कि लोहे, कपड़े आदि को प्रोत्साहन मिला। जबकि सरकार की आर्थिक नीति भारत और भारतीयों के शोषण के बल पर इंग्लैंड और अंग्रेजों को लाभ पहुँचाना था। तो भी लोहे, कपड़े आदि के उद्योग को प्रोत्साहित किया गया। कारीगरों एवं आम जनता का शोषण बढ़ गया। रेलवे, रास्तों तथा संदेशाव्यवहार आदि का विकास किया गया।

सामाजिक नीति : 1857 के संग्राम बाद अंग्रेज सरकार ने भारत में 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाई। निरंतर कौमवाद को उत्तेजित करने की नीति अपनाई। सामाजिक क्षेत्र में भी सरकार ने प्रगतिशील नीति के बदले रूढ़िचुस्त नीति अपनाई। इसमें रूढ़िगत तत्त्वों का साथ लेकर सरकार प्रगतिशील बलों को रोकना चाहती थी।

धार्मिक नीति : ब्रिटिश सरकार ने संग्राम के बाद अपनी धार्मिक नीति में भी बड़े परिवर्तन किए। उसने धार्मिक क्षेत्र में तटस्थ नीति अपनाई। ईसाई पादरियों तथा उनकी संस्थाओं को अधिकृत रूप से मिलनेवाले प्रोत्साहन को बंद कर दिया। भारतीय सैनिकों और लोगों की धार्मिक भावना को चोट न पहुँचे, इसका पूरा ध्यान रखने लगे; जिससे धर्म गुरुओं और रूढ़िचुस्त वर्ग का उन्हें समर्थन मिलता रहे।

1857 के संग्राम की असफलता से भारत का विलीन हो रहा मध्ययुग समाप्त हो गया और नूतन युग में पदापर्ण हुआ। अंग्रेजी सरकार के सीधे शासन के तहत नूतन राष्ट्रवाद के उद्‌भव और विकास को गति मिली। उसके परिणामस्वरूप भारत में गाँधी युग की शुरुआत हुई और भारत ने अंग्रेज शासन की गुलामी फेंक करके (1947) आजादी प्राप्त की।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) 1857 के संग्राम के राजनैतिक कारण स्पष्ट कीजिए।

(2) 1857 के संग्राम के सैनिक कारणों की चर्चा कीजिए।

(3) 1857 के संग्राम की शुरुआत और विकास समझाइए।

(4) 1857 के संग्राम की निष्फलता के कारण बताइए।

(5) 1857 के संग्राम के स्वरूप के विषय में भिन्न-भिन्न अभिप्राय बताइए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) ईस्ट इंडिया कंपनी के अंतिम गर्वनर जनरल केनिंग ने क्या शंका व्यक्त की थी?

(2) डलहौजी ने राजाओं के किन अधिकारों को रद्द कर दिया ?

(3) नई एन्फ्लिड राइफल की कारतूस में कैसी चरबी का उपयोग होता था?

(4) अंग्रेजों ने भारत को किस प्रकार का बाजार बना दिया था?

(5) 1857 के संग्राम का प्रथम शहीद कौन था?

3. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) पेशवा बाजीराव द्वितीय का दत्तकपुत्र कौन था?

(अ) तात्या टोपे (ब) नाना साहब (क) अमृतराव (ड) माधवराव

(2) रानी लक्ष्मीबाई किस राज्य की रानी थी?

(अ) इंदौर (ब) नागपुर (क) सतारा (ड) झाँसी

(3) अंग्रेजों ने सभी उच्च पदों पर किसे नियुक्त किया था?

(अ) मुस्लिम (ब) अंग्रेज (क) हिन्दू (ड) नेपाली

(4) ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए किसका सहयोग लिया जाता था ?

(अ) गवर्नर (ब) पुलिस (क) राजा (ड) सैनिक

(5) ईसाई धर्म अंगीकार करनेवाले को संपत्ति में किस कानून से अधिकार दिया गया ?

(अ) 1850 का Religious Disabilities Act (ब) खालसानीति

(क) 1909 का कानून (ड) 1833 का कानून

●

6 कंपनी शासन का आर्थिक प्रभाव

अंग्रेजों की आर्थिकनीति की चर्चा करने से पूर्व हमें यह जानना चाहिए कि उन्होंने भारत में किसलिए नई आर्थिक नीति को जन्म दिया? अंग्रेजों को उससे क्या फायदा था? उन्होंने इंग्लैंड के विकास के लिए भारत को किसलिए बर्बाद किया? ऐसे प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है। इस संदर्भ में देखें तो प्लासी के युद्ध (ई.स. 1757) से अंग्रेजों ने भारत में विजय की शुरुआत कर दी उससे पूर्व इंग्लैंड विविध स्थिति में गुजरा था। अत: भारत में अंग्रेजों की आर्थिक नीति को हमें वैश्विक परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए।

वास्तव में इंग्लैंड सहित यूरोप में नवजागृतिकाल और धर्म सुधार के परिणामस्वरूप प्रगतिशील समाज का जन्म हुआ। इंग्लैंड में उसके परिणाम स्वरूप प्रगतिशील समाज का जन्म हुआ। इसी दौरान इंग्लैंड में राजाशाही क्रमश: कमजोर पड़ती चली गई। इंग्लैंड की प्रजा ने रक्तविहीन क्रांति द्वारा लोकशाही के मार्ग पर प्रजाविकास की राह पकड़ ली। इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति का जन्म होने पर उत्पादन की पद्धति में आमूल परिवर्तन आया। मानव का स्थान यंत्र ने ले लिया, जिससे इंग्लैंड में खूब कच्चे माल की जरूरत पड़ने लगी। यह कच्चा माल (कपास, नील, रेशम आदि) मिले कहाँ से? अत: उसने राजनैतिक शून्यावकाश के कारण निर्बल हो चुके भारत को जीतने तथा कच्चे माल का संस्थान बनाने का संकल्प किया। इस तरह, भारत के विजय से इंग्लैंड की आर्थिक माँग की पूर्ति करना था। साथ ही इंग्लैंड में मशीनों से बड़े पैमाने पर उत्पादित चीजों को कहाँ बेचा जाय? अर्थात् भारत पर आधिपत्य स्थापित करने का दूसरा कारण विशाल बाजार को अपने हस्तगत करना था। इसतरह, इंग्लैंड की आर्थिक समृद्धि के लिए भारत का शोषण करना था, उसी को ध्यान में रखकर आर्थिक नीति तैयार की गई थी।

भारत में कंपनी शासन के प्रारंभिक सौ वर्षों (1757-1857) का इतिहास देखें तो उसमें सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उस समय दौरान भारत के विकसित कारीगरी-उद्योग और समृद्ध व्यापार-वाणिज्य का पतन हुआ था। भारत एक गरीब, कंगाल और बर्बाद देश बन चुका था। ब्रिटिश शासन की अन्यायी व्यवस्था तथा भारत का भोग लेकर इंग्लैंड को समृद्ध बनाने की संस्थानवादी और साम्राज्यवादी शोषणनीति का इतिहास बराबर समझना हो तो, बंगाल से उसकी शुरुआत करनी चाहिए कारण कि अंग्रेजों का शासन सर्व प्रथम वहीं स्थापित हुआ था।

परंपरागत अर्थव्यवस्था का छिन्न-भिन्न होना

भारत के बंगाल प्रांत की समृद्धि का मुख्य आधार उसकी कृषिजन्य उपज, कारीगरी-उद्योग की उत्पादन प्रवृत्ति तथा उसके समृद्ध व्यापार पर निर्भर था। व्यापार के लिए आई यूरोपीय प्रजा भी यहाँ उल्लेखनीय व्यापार करती थी। उस समय व्यापार बंगाल के हित में था। बड़े पैमाने पर यहाँ सोना आता था। भारत की आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हुए यात्री बर्नियर (ई.स. 1700) ने लिखा है कि, ''बंगाल में धन आने के लिए सौ रास्ते हैं, लेकिन बाहर जाने के लिए एक भी नहीं है।'' उस समय बंगाल का निर्यात उसकी आयात से तीन गुना था। इस समय (ई.स. 1708 से ई.स. 1756 के बीच) मुख्य रूप से सूती कपड़े, कच्चे रेशम, चीनी, सन, अफीम वगैरह का निर्यात करता था। मुलायम सूती कपड़ा और खास करके ढाका की मलमल की माँग विश्व बाजार में थी। यूरोप की कंपनियाँ बड़े प्रमाण में स्थल और समुद्री मार्ग से बसरा, मोछा और जेधा की तरफ माल-सामान का निर्यात करती थी।

'प्लासी के युद्ध' (ई.स. 1757) और उसके बाद के 'बक्सर के युद्ध' (ई.स. 1764) ने मिलकर अंग्रेजों को बंगाल का मालिक बनाया। क्लाइव ने मुगल सम्राट से बंगाल, बिहार और उड़ीसा (ओडिशा) से जमीन

महसूल वसूलने की 'दीवानी सत्ता'(1765) ले ली। उससे 'द्विमुखी शासन पद्धति' शुरू हुई, जिसने अराजकता और अंधाधुंधी को जन्म दिया। कृषि और किसान बर्बाद हो गए। उसका विपरीत प्रभाव व्यापार-वाणिज्य पर भी हुआ। उससे उद्योग और व्यापार-वाणिज्य के पतन की शुरुआत हुई। इससे भी अधिक भयंकर काम अंग्रेजों ने यह किया कि इंग्लैंड के हित की खातिर सत्ता का दुरुपयोग करके, बंगाल के कारीगरी-उद्योग और व्यापार-वाणिज्य को खत्म कर दिया और बंगाल कंगाल हो गया।

अंग्रेजों का आर्थिक केन्द्र हमेशा इंग्लैंड रहा। उन्होंने भारतीयों की चिंता जरा भी नहीं की, अपनी आर्थिक नीति जबरदस्ती भारतीयों पर लागू कर दी थी। उनका मुख्य उददे्श्य हमेशा अंग्रेजों का हित रहा है। उनकी शोषणनीति ने भारतीय आर्थिक व्यवस्था को पंगु बना दिया था। तत्कालीन मद्रास प्रांत के आर्थिक विषयों के निष्णात अधिकारी जोन सुलिवन (John Sullivan) ने भारत में अंग्रेजों की आर्थिक नीति और उसका प्रभाव दर्शाते हुए लिखा है कि, '' हमारी प्रणाली स्पंज के रूप में कार्य करती है, जो गंगा के किनारे से हर अच्छी वस्तु ले लेती है और टेम्स नदी के किनारे निचोड़ देती है।''

हस्तकला-कारीगरी के उद्योगों का विनाश

अति प्राचीन समय से भारत देश कारीगरी-उद्योग और व्यापार-वाणिज्य की दृष्टि से विश्व में अग्रिम और गौरवशाली स्थान पर रहा है। केलवर्टन ने कहा है कि, ''तीव्र बुद्धिशक्ति, सूक्ष्म जानकारी और सर्जनात्मक प्रतिभा के कारण भारतीय उद्योग पश्चिमी देशों की तुलना में श्रेष्ठ स्थान पर था । पश्चिमी देशों के पास भारी वजन वहन करने के लिए जहाज नहीं थे तब भारत के पास भारी वजन लेकर जानेवाले जहाज थे।''

हस्तकला-कारीगरी के उद्योग में भारत का वस्त्र उद्योग सबसे मुख्य था। सूती, रेशमी और ऊन के वस्त्र बुनने का मुख्य उद्योग भारत में चलता था। उसमें भारत ने निपुणता प्राप्त कर ली थी। भारत का वस्त्र इंग्लैंड तथा यूरोप के अन्य राज्यों में तथा चीन, जापान, दक्षिण एशिया के टापू ब्रह्मदेश, अरबस्तान, ईरान और अफ्रीका के कई देशों में जाता था। बंगाल के उपरांत लखनऊ, अहमदाबाद, नागपुर और मदुराई सूती वस्त्रों के बड़े केन्द्र थे। ढाका की मलमल, लाहौर का गालीचा, कश्मीर की शाल, बनारस का जरी का काम प्रसिद्ध था। जड़ाऊ जेवर का काम, सोने-चाँदी के आभूषण बनाने तथा संगमरमर, चंदन, हाथीदाँत और काँच के ऊपर कलात्मक नक्काशीकाम करने का उद्योग भी बड़े पैमाने पर चलता था।

इतिहासविद् आर. सी. दत्त ने बताया है कि, ''भारत में बुनाई यह सामान्य व्यक्तियों का राष्ट्रीय उद्योग था। और कताई के काम में लाखों महिलाएँ जुड़ी थीं। बंगाल के शाहाबाद जिले में एक लाख से अधिक बुनकर थे। बंगाल में से 95 प्रतिशत सूती कपड़ा विदेश भेजा जाता था। ढाका की मलमल उपरांत कृष्णनगर, चंदेरी, अरनी, बनारस वस्त्र उद्योग के केन्द्र थे। अहमदाबाद की धोती तथा दुपट्टा, लखनऊ की चिकन, बॉडर की लिए नागपुर की रेशम प्रसिद्ध थी। रेशम उद्योग में मुर्शिदाबाद, मालदा और बंगाल के अनेक गाँव प्रसिद्ध थे। ऊन के कपड़े के लिए कश्मीर, पंजाब और पश्चिम राजस्थान प्रसिद्ध थे।

वस्त्र उद्योग उपरांत भारत का जहाज बनाने का उद्योग इंगलैंड से भी अच्छा था। धातु उद्योग में ताँबे, पीतल और काँसा के बर्तन बनाने का उद्योग भारत में विकसित था। मुरादाबाद और बनारस इस उद्योग के प्रसिद्ध स्थल थे। धातुकाम के लिए नासिक, पूना, हैदराबाद, विशाखापट्टनम् और तांजोर प्रसिद्ध थे। कच्छ, सिंध और पंजाब हथियार बनाने के केन्द्र थे। काँच उद्योग के लिए कोल्हापुर, सतारा, गोरखपुर, आगरा, चित्तौड़ और बालघाट प्रसिद्ध थे। सोना, चाँदी, हीरा-जवाहरात, नक्काशीकाम के लिए अनेक स्थल थे। ये सब हस्तकला-कारीगरी भारत की आर्थिक उन्नति, रुचि और कलात्मक सौंदर्य प्रकट करती थी।

अंग्रेजों के पास सत्ता आते ही उन्होंने बंगाल तथा समग्र भारत के कारीगरी-उद्योगों का नाश किया।

अंग्रेज सरकार ने इंग्लैंड के उद्योगों को विकसित करने और टिकाए रखने के लिए भारतीय कारीगरी-उद्योग को कुचल डालने का प्रयत्न शुरू किया। इसके लिए अनेक अयोग्य रीत-रस्में भी अपनाईं। उन्होंने बुनकर और कारीगरों पर जुल्म एवं अत्याचार किया, भारत के कोने-कोने इंग्लैन्ड की मिलों में बने सस्ते कपड़े पहुँचाए गए। इस तरह, सैकड़ों वर्षों तक जिसने यूरोप और दुनिया को सूती कपड़े दिए हों वही भारत केवल ब्रिटिश माल का ग्राहक बन गया। भारत में तैयार माल विदेशों में जाता था और वहाँ से सोना भारत आता था। परंतु अब उसकी दिशा उल्टी हो गई। अब विदेशी माल भारत आने लगा और सोना बाहर जाने लगा।

भारत के कारीगरी-उद्योग टूट जाने से जो कारीगर बेकार हुए, उन्होंने गाँव में जमीन और खेती के सहारे जीवन जीने के लिए सोचा। यहाँ भी उन्हें खास जगह नहीं मिली। उनमें से कुछ किसान बने, जबकि अधिकांश खेत मजदूर ही बनकर रह गए। खेती पर भार असह्य हो गया। गाँव की पुरानी आर्थिक व्यवस्था टूट गई।

ब्रिटिश राजस्व नीति और उसका प्रभाव

भारत के विविध भू-भाग पर अधिकार जमाने के बाद कंपनी ने राजस्व की वसूली के लिए स्थानीय स्थिति अनुसार कई मार्ग अपनाए। देश के विभिन्न भागों में तीन प्रकार की व्यवस्था कायम की गई:

स्थायी बंदोबस्त

कॉर्नवालिस की राजस्व व्यवस्था, स्थायी बंदोबस्त पद्धति थी। 1793 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा (ओडिशा) के लिए स्थायी बंदोबस्त पद्धति दाखिल की गई। जिसकी मुख्य विशेषताएँ निम्नानुसार हैं:

- अपने हस्तक जमीन का मालिकाना हक जमीनदार को मिला और जमीन-राजस्व वसूलने का अधिकार सरकार के एजेन्ट के तौर पर कार्य करता था।

- जिस जमीन का राजस्व जमीनदार एकत्र करता था, उसका 11 में से 10 भाग सरकार को देना पड़ता था और एक भाग वह अपने मेहनताने के रूप में रख सकता था।

- जमीनदार के माध्यम से सरकार को दिया जानेवाला राजस्व स्थायी और निश्चित था। अत: जमीनदार को उसके क्षेत्र की सभी जमीनों का मालिक घोषित कर दिया गया।

इस पद्धति से प्रारंभ में जमीनदारों को थोड़ा सहन करना पड़ा। अकाल या कम बरसात के समय में भी राजस्व की रकम देनी ही पड़ती थी। जो जमीनदार राजस्व नहीं भर पाता था उसकी जमीन नीलाम करके भी कंपनी ने रुपया वसूल किया। परंतु शुरुआत के पंद्रह वर्ष का समय जिन जमीनदारों ने पूरा कर लिया था, वे बाद में खूब धनी बन गए थे। वे जमीन खरीदने लगे। इन जमीनदारों को जमीन के विकास में या किसानों के कल्याण में जरा भी रुचि नहीं थी। परिणाम स्वरूप इन प्रदेशों में किसानों ने खूब विद्रोह किया। एक समय में बंगाल पूर्व का अन्नभंडार कहलाता था। वह एकदम वीरान हो गया। वहाँ भुखमरी, रोग और मृत्यु का अनुपात बढ़ गया।

जमींदारी पद्धति : थोमस मनरो जैसे समाज सुधारकों ने क्रमश: जमीदारी पद्धति लागू की। मुंबई प्रांत में इस प्रथा को लागू करने का श्रेय गवर्नर एलिफन्स्टनन को जाता है। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में मुंबई, असम और मद्रास प्रांतों में कुछ क्षेत्रों में लागू की गई जमीदारी पद्धति अनुसार जमीन जोतने वाले को उस जमीन का मालिक बनाया गया और शर्त इतनी कि उसने जमीन का राजस्व भरा हो। यहाँ अंग्रेजों ने गिरासदारों और किसानों को भी मान्यता दे दी, जो सीधे राज्य को राजस्व देते थे। ये सामंत जमीनदार बन गए। इस प्रथा से

जमीनों का जो मालिकाना हक मिलता था उसे खास लाभ नहीं होता था, जिसके तीन कारण थे :

- जमीन का अकल्पनीय राजस्व (लगान)
- जमीन-राजस्व में सरकार अपनी इच्छानुसार वृद्धि करने का अधिकार रखती थी।
- किसी भी स्थिति में अर्थात् उसकी उपज आंशिक या पूर्ण रूप से नष्ट हो जाए तो भी किसान को जमीन-राजस्व को देना ही पड़ता था। चरागाह या खाली जमीन जो ग्रामीण समुदाय के हस्तक थी, उस पर राज्य का अधिकार प्रस्थापित हो गया। जमीन का राजस्व भी खूब बढ़ गया।

ठेकेदारी पद्धति : जमीनदारी प्रथा का सुधरा स्वरूप अर्थात् ठेकेदारी पद्धति। इस व्यवस्था का अमल गंगाघाट क्षेत्र में उत्तर पश्चिम प्रांतों में, पंजाब और मध्य भारत के कुछ प्रदेशों में हुआ था। इस पद्धति के अनुसार जमीन-राजस्व किसान अथवा खेत नहीं परंतु गाँव अथवा महल (जागीर का एक भाग) अनुसार राजस्व निश्चित किया जाता था। गाँव के लिए अलग-अलग व्यवस्था थी। जमीनदार अथवा जमीनदार होने का दावा करनेवाले परिवार के मुखिया के साथ यह व्यवस्था की जाती थी। अंग्रेजों ने परंपरा से चली आ रही जमीन व्यवस्था के संबंध में मूलभूत परिवर्तन शुरू किया और परिणामत: भारतीय गाँवों की स्थिरता, स्वायत्ता और सातत्य छिन्न-भिन्न परिस्थिति में पहुँच गया।

उपर्युक्त तीनों पद्धतियों (स्थायी बंदोबस्त, जमींदारी और ठेकेदारी पद्धतियाँ) का उद्देश्य जमीन-राजस्व, जमीन-कर में वृद्धि करके आय बढ़ाना था। जमीन-राजस्व से राज्य की आय में हमेशा वृद्धि होती थी (1858-59)। जमीन-राजस्व से सरकार को अपनी कुल आय का 50 प्रतिशत रकम जमीन-कर में से मिलती थी। जमीन-राजस्व प्राप्त करने की रीति दु:खदायी थी। समय-समय पर जमीन राजस्व न भरनेवाले किसान को अलग-अलग प्रकार की यातना दी जाती थी। न्याय पद्धति भी भ्रष्ट थी, जिससे किसानों को न्याय मिलने की आशा केवल एक छलावा था।

कृषि क्षेत्र में स्थगितता

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारतीयों का सुख, दु:ख, वर्तमान और भविष्य का आधार कृषि पर है। यदि खेत उत्पादन अच्छा रहा तो किसान खुश, चारों तरफ समृद्धि का दर्शन हो। परंतु इसके अभाव में, अकाल और भुखमरी के दृश्य देखने को मिलते हैं।

18वीं सदी तक कृषि और गृहउद्योग में एक प्रकार का तालमेल था। भारत जहाँ खेती-वाड़ी में आगे था। वहीं कारीगरी-उद्योग में भी विश्व में अग्रिम और गौरवशाली स्थान रखता था। अंग्रेजों ने जब भारत के कारीगरी-उद्योग को नष्ट कर दिया तो कारीगर बेकार हो गए। बेकार कारीगरों ने गाँव में जमीन और कृषि में आसरा लेना चाहा। यहाँ भी उन्हें विशेष राहत नहीं मिली। उनमें से कुछ किसान बन गए और ज्यादातर मजदूर। अंग्रेजों की नई जमीन-राजस्व व्यवस्था ने भी किसानों को प्रभावित किया। जनसंख्या वृद्धि से भी जमीन पर दबाव बढ़ा।

भारत की राष्ट्रीय आय, विदेश व्यापार, औद्योगिक विस्तार आदि क्षेत्र भारतीय कृषि पर आधारित थे। 1875 में कुल राष्ट्रीय आय की 55 प्रतिशत से 65 प्रतिशत आय कृषि की मानी जाती है। 1901 में निर्यात की गई वस्तुओं में से 75 कृषि संबंधी थी। इन वस्तुओं में सूती वस्त्र, सन, चाय, चीनी, कृषि संबंधी थी। इस तरह, कृषि निर्यात पर ही भारत की आर्थिक समृद्धि थी।

अंग्रेजी शासकों ने अधिक धन प्राप्त करने के लिए और राजस्व की आय बढ़ाने के लिए भारतीय हितों और यहाँ किसानों की जरा भी चिंता नहीं की। उनके सरकार की कृषि, व्यापार तथा उद्योग विषयक नीति ने किसानों, जमीनदारों, कारीगरों तथा व्यापारियों को बर्बाद कर दिया। ईनाम कमीशन द्वारा की गई सिफारिश अनुसार दान या अन्य कारणवश भेंट में दी गई बहुत सी जमीनें सरकार ने जप्त कर ली। इससे बहुत से

जमीनदार बेकार हो गए। इससे किसानों की दुर्दशा हो गई कारण कि सरकार ने जमीन-राजस्व बढ़ा दिया था, जिससे उन पर कर का बोझ बढ़ा दिया गया था। कॉर्नवालिस द्वारा दाखिल स्थायी बंदोबस्त तथा थोमस मनरो द्वारा अमल में लाई गई जमीनदारी पद्धति ने पुराने जमीनदारों तथा किसान वर्ग की दुर्दशा कर डाली। कई बार घर के गहने बेचकर भी किसान राजस्व नहीं भर सकते थे। परिणाम स्वरूप उन्हें अपनी जमीन बेच देनी पड़ती थी। किसानों की बहुत सी जमीन कर्ज में खत्म हो जाती थी। कई किसान साहूकारों की ब्याजप्रथा के शिकार बन गए। रिश्वतखोरी ने भी किसानों को परेशान किया। न्याय पाना किसानों के लिए मुश्किल हो गया। जब फसल अच्छी होती थी तो किसानों को पुराना कर्ज चुकाने में ही सब कुछ दे देना पड़ता था। यदि मौसम खराब रहता था तो कर्ज दुगुना हो जाता था। किसान कपास और सन जैसी नकदी फसलों की तरफ मुड़ गए। जिससे अनाज-उत्पादन में कमी आ गई। अनाज की कमी की पूर्ति के लिए सरकार ने कोई कदम नहीं उठाया।

ब्रिटेन की आर्थिक नीति के परिणाम स्वरूप भारतीय कृषि उद्योग का व्यापारीकरण हुआ। चाय, कॉफी, नील और सन की खेती के लिए ब्रिटिश पूँजीपतियों ने भारत में बगीचा उद्योग विकसित किया। अब बाजार में बेचने के लिए खास फसल तैयार होने लगी। अनाज के बदले रूई, सन, मूँगफली, गन्ना, तम्बाकू, तिलहन, नील जैसी औद्योगिक फसल जो अधिक कमाई कर सके उसे फसल की बुआई के लिए प्रोत्साहित किया। भारत की ब्रिटिश सरकार ने ऐसी फसल के व्यापारीकरण और उसकी विशिष्ट जानकारी के लिए प्रोत्साहित किया।

इस तरह, ऐतिहासिक, राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक परिबलों के परिणाम स्वरूप भारतीय खेतीवाड़ी का आधुनिकीकरण करने का मार्ग अवरुद्ध हो गया। भारतीय कृषि उत्पादन में एक प्रकार की स्थगितता आ गई। दूसरी तरफ जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्यसामग्री का संग्रह खड़ा होने लगा। अकाल जैसी प्राकृतिक आपदा ने भी भारी क्षति पहुँचाई। इन सबके परिणाम स्वरूप दिन प्रतिदिन गरीबी बढ़ती गई और जगत का अन्नदाता चिंतायुक्त बना।

आधुनिक उद्योगों का विकास

भारत में बड़े पैमाने पर जो उद्योग शुरू हुए उनमें मुख्य रूप से सन, सूती कपड़ा, लोहा और फौलाद, कागज तथा चमड़ा उद्योग का समावेश होता है। जबकि उन्नीसवीं सदी के अंत तक उनका विकास अत्यंत धीमी गति से हुआ, कारण कि इंग्लैंड की सरकार उनके विकास के मार्ग में रोड़ा डालती थी। इंग्लैंड की सरकार अपने उद्योगों की सुरक्षा में पड़ी थी। फिर भी शुरुआत ठीक थी और भविष्य में विकास की संभावनाएँ दिख रही थी। यहाँ भी भारत ने पुनः वस्त्र उद्योग में ही तेजी से प्रगति शुरू कर दी। कोलकाता में पहली मील चालू हुई (ई.स. 1818) फिर भी सूत कपड़े का उद्योग मुंबई में केन्द्रित हो गया। वह पहली मिल स्थापित (ई.स. 1854) हुई। अहमदाबाद में पहली कपड़े की मिल रणछोड़लाल छोटालाल ने (ई.स. 1861) में शुरु की थी। उसके बाद इस उद्योग का खूब तेजी से विकास हुआ और कपास जैसा कच्चा माल उगानेवाले प्रदेशों में उसका विकास हुआ। अतः अब मुंबई और अहमदाबाद के बाद नागपुर, सोलापुर, मद्रास (चेन्नई) और अन्य स्थलों पर कपड़े की मिलें स्थापित होने लगी। देखते ही देखते अहमदाबाद कपड़े की मिलों के कारण भारत का 'मानचेस्टर' बन गया। यहाँ लगभग 108 मिलें चालू हो गई। ''स्वदेशी आंदोलन'' (ई.स. 1905) के शुरू होने पर भारत के उद्योगों में खास करके कपड़ा उद्योग को उल्लेखनीय लाभ हुआ था। उसके कारण भारत में कई जगहों पर कपड़े की मिलें स्थापित हुई। जबकि भारत के इन उद्योगों को सरकार की तरफ से उत्पन्न कई अड़चनों का सामना करना पड़ा। 18 वीं सदी में अंग्रेजों ने 'संरक्षित उद्योग नीति' लागू की और 19 वीं सदी में 'मुक्त व्यापार नीति' लागू की। परंतु ये दोनों एक-दूसरे के विरुद्ध की नीति होने पर भी दोनों का अमल इतनी चतुराई से किया गया कि इंग्लैंड के उद्योगों को लाभ पहुँचे और भारत के उद्योगों को नुकसान।

भारत का औद्योगिकीकरण रोकने के लिए विदेशों से आयात की जानेवाली यंत्र-सामग्री पर डाला गया आयातकर रद्द कर दिया गया था। (ई.स. 1860)। इसके बाद भारत में सर्वप्रथम बंगाल में अंग्रेजों की पूँजी से सन का उद्योग शुरू किया गया था। ई.स. 1911 में जमशेदजी टाटा ने जमशेदपुर (साकची) में लोहे का सर्वप्रथम कारखाना स्थापित किया और बुनियादी उद्योग की शुरुआत हुई। वडोदरा में 'एलेम्बिक केमिकल वर्क्स' की स्थापना (ई.स. 1907) हुई। इसके उपरांत कागज, तम्बाकू, रेशम, चमड़ा वगैरह का उद्योग शुरू हुआ।

महात्मा गांधी के आगमन के बाद उन्होंने भारत की गरीबी और बेकारी दूर करने के लिए ग्रामोद्योग, हाथकताई, हाथबुनाई, कुटीर-उद्योग और कारीगरी-उद्योग को प्रोत्साहन दिया। जबकि उन्होंने कभी भी समग्र रूप से यंत्र का विरोध नहीं किया था। उनका विरोध यंत्र के प्रति पागलपन पर था।

उद्योगों के विकास में वैज्ञानिक संशोधन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जमशेदजी टाटा ने बैंग्लोर (बैंग्लुरू) में 'इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस' नामक एक वैज्ञानिक संशोधन करनेवाली संस्था की भी स्थापना की। जमशेदजी टाटा ने भारत में विमान-निर्माण उद्योग शुरू करने का प्रयत्न (ई.स. 1940) किया, परंतु ब्रिटिश सरकार ने उसे अनुमति नहीं दी। इसके बाद भी 20 वीं सदी के पूर्वार्ध में खास करके दूसरे विश्व युद्ध के दौरान भारत में उद्योगों का उल्लेखनीय विकास हुआ। रसायन उद्योग, जहाज बाँधने का उद्योग वगैरह छोटे स्तर पर शुरू हुए। सरकार ने उद्योगों पर अतिरिक्त कर भी डाला, फिर भी उन्होंने खूब लाभ कमाया। पूँजी निवेश बढ़ने लगा और अब उद्योगों के विकास के प्रवाह को रोकना सरकार के लिए मुश्किल हो गया। भारत को आजादी (15 अगस्त, 1947) मिलते ही उद्योगों के विकास हेतु सरकार ने पंचवर्षीय योजनाएँ बनाई। जिससे भारत पुनः कृषिप्रधान राष्ट्र के साथ उद्योग प्रधान राष्ट्र भी बन गया।

गरीबी और अकाल

भारत की प्रजा का आर्थिक शोषण करने के लिए कंपनी सरकार की नीतियों ने अकाल जैसी परिस्थिति में भारतीय प्रजा की दुर्दशा में वृद्धि की।

अकाल

वाइसरॉय केनिंग के समय में आगरा, राजपूताना तथा पंजाब में अकाल पड़ा (ई.स. 1861), परंतु उसमें लोगों को राहत देने के लिए कोई विशेष कदम नहीं उठाए गए। वाइसरॉय सर जॉन्स लॉरेन्स के समय में (ई.स. 1866) उड़ीसा में भयंकर अकाल पड़ा, जिसमें भुखमरी से लगभग 20 लाख लोगों की मृत्यु हो गई। दो वर्ष बाद (ई.स. 1867-69) राजपूताना तथा बुंदेलखंड में जब अकाल पड़ा तब भुखमरी के कारण लोगों की मृत्यु न हो, उसका ध्यान रखा गया। उसी तरह, जब बंगाल-बिहार में अकाल पड़ा (ई.स. 1873-74) तब नोर्थबुक ने बर्मा से बड़ी मात्रा में चावल मँगाकर सावधानी रखी। वाइसरॉय लिटन के कार्यकाल की शुरुआत ही अकाल से हुई। ई.स. 1876-78 के दो वर्ष दौरान मद्रास (चेन्नई), मुंबई, हैदराबाद, मैसूर, पंजाब और मध्य भारत के किसी न किसी भाग में अकाल पड़ा। वाइसरॉय एल्गिन द्वितीय के समय में (ई.स. 1896-97) भयंकर अकाल पड़ा। इस अकाल से तीन करोड़ चालीस लाख लोग प्रभावित हुए। लगभग साढ़े सात लाख लोगों की मृत्यु हुई। परंतु सरकार ने अकाल पीड़ित लोगों के लिए कोई विशेष उपाय नहीं किया। इसी तरह वाइसरॉय कर्जन के समय (ई.स. 1899-1900) में भी भारी अकाल पड़ा। लाखों लोगों की मौत हुई। करोड़ों की संपत्ति का नाश हुआ। फिर भी कर्जन ने उसके लिए कोई उपाय नहीं किया।

वास्तव में वाइसराय लिटन के समय में सरकार ने अकालनीति बनाकर खूब खर्च किया। फिर भी कुल मिलाकर लगभग 50 लोगों की मृत्यु हुई, 20 लाख हेक्टर जमीन परती रही और ढाई करोड़ रुपए का राजस्व छोड़ देना पड़ा। परंतु इस भयंकर नुकसान के परिणाम स्वरूप ही सरकार की स्थायी अकालनीति बन पाई। सर रिचार्ड स्ट्रेची के नेतृत्व में एक अकाल समिति गठित की गई। इस समिति ने अकालग्रस्त क्षेत्रों की किस तरह मदद की जाय, उसके नियमों के विषय में कुछ सिफारिशों की। इसमें सशक्त लोगों को काम देना, मात्र शक्तिहीन लोगों की मदद करना, उपरांत बीज खरीदने के लिए लोन देना, राजस्व माफ करना आदि सिफारिशों का समावेश था। इसके साथ सरकार हर वर्ष अपने बजट में डेढ़ करोड़ रुपए अकाल के लिए अलग से रखना था। जिसमें से अकाल के समय रेलवे, नहर आदि बनवाए जा सकें। अकाल राहत के लिए प्रांतीय सरकारों को ही मदद करे, ऐसी सिफारिश की गई थी। इस तरह, वाइसरॉय लिटन अकालनीति का निर्माता माना गया। उसके द्वारा बनी नीति के आधार पर भविष्य में अकाल के समय राहत दी गई।

सर विलियम दिग्बी के मतानुसार 19वीं सदी के अंत तक भारत में पड़े अकाल में लगभग 2,85,000 लोगों की मृत्यु हुई थी। अकाल के प्रभाव से गरीबी का प्रमाण बढ़ गया था।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) एक समय का समृद्ध बंगाल कंगाल और गरीब कैसे बन गया?

(2) भारत की कारीगरी उद्योग के विनाश के लिए अंग्रेजों ने क्या किया?

(3) भारत में कृषि क्षेत्र में स्थगितता किन कारणों से आई?

(4) भारत में किस प्रकार के आधुनिक उद्योग कहाँ शुरू किए गए?

(5) भारत में औद्योगिकीकरण में अंग्रेज सरकार ने क्या रुकावटें खड़ी की थीं?

2. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) किन युद्धों ने अंग्रेजों को बंगाल का मालिक बनाया?

(2) क्लाइव ने मुगल सम्राट के पास से कौन-सी सत्ता प्राप्त की?

(3) अंग्रेजों का आर्थिक केन्द्र हमेशा कहाँ रहता था?

(4) हस्तकला-कारीगरी के उद्योगों में भारत का मुख्य उद्योग क्या था?

(5) भारत के कारीगरी-उद्योग को नष्ट करने के लिए अंग्रेजों ने क्या कदम उठाया ?

3. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) कंपनी शासन में भारतीयों का राष्ट्रीय उद्योग कौन-सा था?

(अ) बढ़ई काम (ब) समुद्री व्यापार (क) बगीचा उद्योग (ड) बुनाई उद्योग

(2) भारत का जहाज निर्माण उद्योग किसके उद्योग से श्रेष्ठ था?

(अ) चीन (ब) इंग्लैंड (क) जापान (ड) बर्मा

(3) ढाका का कौन-सा वस्त्र विश्व प्रसिद्ध था?

(अ) रेशम (ब) मलमल (क) शाल (ड) दुपट्टा

(4) नागपुर का रेशम किसके लिए प्रसिद्ध था?

(अ) बोर्डर (ब) धोती (क) कुर्ता (ड) दुपट्टा

(5) अहमदाबाद किस प्रकार के कपड़े के लिए प्रसिद्ध था?

(अ) धोती (ब) कुर्ता (क) मादरपाट (ड) मलमल

●

7 सामाजिक और धार्मिक सुधार का आंदोलन

पूर्व प्रकरण में हमने देखा कि राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से अंग्रेजी शासन साम्राज्यवादी शोषणखोर, निरकुंश तथा पीड़ादायक था। परंतु हमारे लिए यह आश्चर्यजनक है कि उस समय का अंग्रेजी शासन सामाजिक और शैक्षणिक विषयों में अत्यंत प्रगतिशील था। वे तत्कालीन यूरोप में प्रवर्तित सामाजिक मानवतावाद, बुद्धिवाद और शिक्षा के साथ जुड़े नए मूल्यों को लेकर भारत आए थे। इतना ही नहीं, बल्कि इन मूल्यों के साथ-साथ आधुनिक शैक्षणिक संस्थाओं, रेलवे, तार, डाक, मार्ग और वाहनव्यवहार, शिक्षा और संचार के साथ जुड़े माध्यमों का भी यहाँ उन्होंने विकास किया था।

इस दृष्टि से वे बुद्धिगम्य (Rational), धर्म निरपेक्ष (Secular) और प्रगतिशील (Progressive) विषयों के स्थापक थे, ऐसा कह सकते हैं। 19वीं सदी के प्रारंभ में राजा राममोहन राय जैसे महान सामाजिक नेताओं ने उनके इन विचारों-मूल्यों को ग्रहण किया। फलत: भारत में प्रवर्तित सामाजिक और धार्मिक अनिष्टों को दूर करने के उद्देश्य से वे अत्यंत प्रयत्नशील बने थे।

भारत में अंग्रेजी शासन से जागृति के नए युग का प्रारंभ हुआ। भारत में अंग्रेजों के साथ प्रथम लगभग डेढ़ सौ वर्ष का व्यापारी तरीके तथा उसके बाद दूसरा डेढ़ सौ वर्ष शासनकर्ता तरीके संबंध रहा। जिसके कारण भारतीय संस्कृति पाश्चात्य विचारधारा और पाश्चात्य संस्कृति के संपर्क में आई और उसमें से आधुनिक भारत की नवरचना के लिए भूमिका तैयार हुई। अंग्रेजों के संपर्क से राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों की तरह सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में भी नए प्रस्थान हुए। धीमे-धीमे भारतीय समाज में प्रवर्तमान दूषण और क्षतियाँ भी बाहर आनी शुरू हुईं। परिणामत: 19वीं सदी में आधुनिक विचारधारा वाले समाज सुधारकों ने भारतीय समाज की क्षतियों एवं अनिष्टों को दूर करने के लिए कटिबद्ध बने। जबकि शुरुआत में कई नेताओं ने अति उत्साह से पाश्चात्य संस्कृति के प्रवाहों को ग्रहण करके समाज सुधारणा और धर्म-सुधारणा की प्रवृत्तियाँ चलाई, जिसमें बंगाल में ब्रह्म समाज और महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज की प्रवृत्तियाँ इस नवप्रस्थान की द्योतक मानी जा सकती हैं। परंतु पाश्चात्य संस्कृति के इस आक्रमण के प्रतिकार स्वरूप कुछ प्रतिभाशाली नेताओं ने 19वीं सदी के उत्तरार्ध में भारतीय संस्कृति के मूलभूत गौरवपूर्ण मूल्यों की तरफ समाज को अभिमुख करके समाज-सुधार और धर्म-सुधार की प्रवृत्तियाँ शुरू की। जिसमें आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन की प्रवृत्तियाँ राष्ट्रीय भावना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती हैं। बेशक ये सभी सुधारक अपने विचारों तथा पद्धतियों में अंतर होने पर भी देश और समाज का सच्चे दिल से उन्नति चाहते थे। 19वीं सदी को भारतीय इतिहास में सांस्कृतिक और बौद्धिक जागारण की सदी कहते हैं।

राजा राममोहन राय और ब्रह्मसमाज

19वीं सदी के प्रारंभ में आई भारतीय नवजागृति के अग्रदूत राजा राममोहन राय (1774-1833) और उनके द्वारा स्थापित ब्रह्मसमाज संस्था थी। राजा राममोहन राय का जन्म (22 मई, 1774) बंगाल के हुगली जिला के राधानगर गाँव में रमाकांत के यहाँ ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा पटना और वाराणसी में ली थी। उन्होंने बंगाली के उपरांत उर्दू, संस्कृत, ग्रीक, हिब्रू, लैटिन, फारसी, अरबी तथा बाद में अंग्रेजी भाषा पर भी प्रभुत्व हासिल किया था। उन्होंने भिन्न-भिन्न धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन किया था। राजा राममोहन राय की विचारधारा में वेदांत धर्म, इस्लाम धर्म और ईसाई धर्म के सिद्धातों का संयुक्त प्रभाव देखने को मिलता है। सामाजिक-धार्मिक सुधार के आंदोलन चलाने के लिए उन्होंने ब्रह्मसमाज की स्थापना की। वे ब्रह्मसमाज के आद्यप्रणेता थे।

राजा राममोहन राय

समाज सुधार

राजा राममोहन राय ने बंगाल के रूढ़िचुस्त समाज में क्रांतिकारी सुधार लाने के प्रयत्न किए। उनके समाजसुधार की सोच में मुख्य रूप से (1) भारत की प्रगति में जातिप्रथा सबसे बड़ा अवरोध है।

(2) परिवार में स्त्रियों को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हो तो ही समाज में उनका सम्मान बढ़ेगा। (3) सतीप्रथा यह वास्तविक अर्थ में हत्या ही है-जल्दी से जल्दी उस पर प्रतिबंध लगाना चाहिए। (4) बालविवाह हानिकारक है। (5) विधवाओं को पुनर्विवाह की छूट मिलनी चाहिए। (6) बहुपत्नी प्रथा का अंत आना चाहिए। (7) पिता की विरासत में पुत्री का भी हिस्सा होना चाहिए। वगैरह का समावेश था। उन्होंने समाजसुधार के लिए अंग्रेजी शिक्षा को महत्त्वपूर्ण माना। उन्होंने कोलकाता में हिन्दू कॉलेज की स्थापना की तथा अखबारी स्वतंत्रता, वाणी स्वतंत्रता, स्त्री-अधिकार, व्यक्ति स्वातंत्र्य, कार्यकारिणी से न्यायतंत्र को अलग रखना आदि बातों के लिए ब्रिटिश सरकार से सिफारिश की। उनकी सती प्रथा के विरोध के अभियान के परिणाम स्वरूप विलियम बेन्टिक ने सतीप्रथा पर प्रतिबंध लगाने के लिए कानून बनाया। (ई.स. 1829)।

वे प्रेस की स्वतंत्रता के बड़े हिमायती थे। उन्होंने बंगाली में 'संवाद कौमुदी' और फारसी में 'मिरात-उल-अखबार' नामक समाचारपत्र शुरू किए। अपने विचारों को फैलाने के लिए उन्होंने 'आत्मीय सभा' की स्थापना की (ई.स. 1815) जो बाद में 'ब्रह्मसभा' में परिणित हो गई। 'ब्रह्मसभा' के सदस्य भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं को मानने के बदले मात्र एक ही ईश्वर के अस्तित्व को मानते थे। उनके सदस्य जातिपाँत के भेदभाव के बिना एक ही मकान में एक साथ मिलकर प्रार्थना करते थे। बाद में ब्रह्मसभा ब्रह्मोसमाज के नाम से जानी गई।

दिल्ली के मुगल बादशाह ने उन्हें राजा की पदवी दी। दिल्ली के बादशाह ने अपने जागीरी अधिकार से संबंधित केस के विषय में राजा राममोहन राय को इंग्लैंड भेजा तब (ई.स. 1833) ब्रिस्टॉल में उनकी मृत्यु हुई।

देवेन्द्रनाथ ठाकुर (टैगोर) :

राजा राममोहन राय की मृत्यु के पश्चात कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता देवेन्द्रनाथ टैगोर 'ब्रह्मसभा' जुड़े, जिसके बाद उसमें नई जान आई। देवेन्द्रनाथ ने सभा के सदस्यों के लिए 'प्रतिज्ञापत्र' दाखिल करके उसे व्यवस्थित संस्था का रूप दिया। इसके उपरांत संस्था का व्यवस्थित संविधान बनाकर 'ब्रह्मोसमाज' का नेतृत्व लिया और 'तत्त्वबोधिनी पत्रिका' शुरू की। उसके द्वारा संस्था के सिद्धांतों का प्रचार भी शुरू किया।

केशवचंद्र सेन ब्रह्मोसमाज में जुड़ गए। उनके उत्साह, वक्तृत्वशक्ति और लोकप्रियता के कारण बंगाल में इस संस्था का खूब प्रचार हुआ। परंतु बाद में देवेन्द्रनाथ टैगोर से मतभेद होने पर उन्होंने 'भारतीय ब्रह्मोसमाज' नामक नई संस्था की स्थापना की।

ब्रह्मोसमाज की प्रवृत्तियाँ

19वीं सदी में ब्रह्मोसमाज और उसकी शाखाओं ने समाजसुधार और धर्मसुधार के क्षेत्र में क्रांतिकारी भूमिका अदा की। उन्होंने एकेश्वरवाद का प्रचार किया। मूर्तिपूजा, विधिविधानों और बाह्यचार के बदले हृदयपूर्वक की प्रार्थना, कीर्तन और पश्चाताप को महत्त्व दिया। विशेष करके स्त्रियों की सामाजिक स्थिति सुधारने, बालविवाह, सतीप्रथा, बहुपत्नीप्रथा और परदाप्रथा खत्म करने का प्रयत्न किया। उन्होंने विधवा विवाह तथा स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। इसके उपरांत जातिवाद को दूर करके अंतर्जातीय विवाह और अंतर्जातीय भोजन पर जोर दिया। जबकि ब्रह्मोसमाज पाश्चात्य संस्कृति और पाश्चात्य विचारों से अधिक प्रभावित था। इसी कारण समाज के शिक्षित लोग उसमें जुड़े थे। ब्रह्मोसमाज ने भारत में उदारमतवाद और आधुनिकता का वातावरण तैयार किया। ब्रह्मोसमाज की प्रवृत्तियाँ बुद्धिशाली मध्यमवर्ग तक ही मर्यादित थी। विशेषत: वे शहरी क्षेत्रों में फैली थीं। उसकी प्रवृत्तियाँ ग्रामीण क्षेत्रों के निचले वर्गों में अपना प्रभाव नहीं पैदा कर सकीं थीं। तो भी धर्म और समाज सुधार में ब्रह्मोसमाज की देन उल्लेखनीय थी।

ज्योतिबा फुले

ज्योतिराव गोविंदराव फुले (1827-1890) का जन्म माली परिवार में हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि उनके पूर्वज पेशवाओं को फूल और मालाएँ भेजते थे। इसीलिए वे फुले कहलाए। ज्योतिराव बचपन से ही

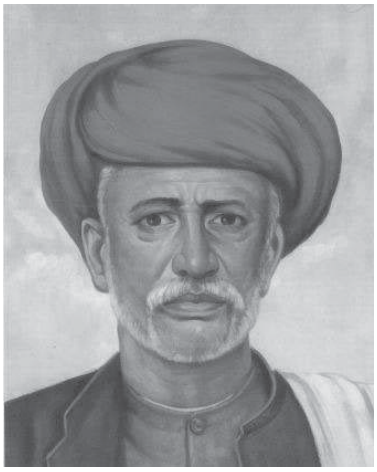

ज्योतिबा फुले

शीलवान थे। उन्होंने स्कोटिश मिशन स्कूल में शिक्षा ली थी। शिक्षा दौरान उन्हें मानव अधिकारों और कर्तव्यों की जानकारी प्राप्त हुई। उन्हें शिवाजी और जॉर्ज वॉशिंग्टन के जीवन से प्रेरणा मिली। उन्होंने टॉमस पेन की पुस्तक 'राइट्स ऑफ मेन' का अध्ययन किया था और वासुदेव बलवंत फडके से निर्भयता का पाठ सीखा। उन्हें अध्ययन से ऐसा लगा कि सभी धर्मों में कुछ बातें समान हैं, साम्य हैं। उन्होंने स्त्रियों तथा दलितों के प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न किया। दलितों को न्याय तथा आत्म सम्मान दिलाने के लिए, स्त्री शिक्षा के लिए प्रयत्न किया। पूना में कन्या विद्यालय शुरू (ई.स. 1851) किया। उन्होंने विधवाओं को पुनर्विवाह करने में मदद करके 'सत्य शोधक समाज' की स्थापना (ई.स. 1873) की। उसका उद्देश्य समाज के पिछड़े और उपेक्षित वर्ग को न्याय दिलाना था। उन्होंने कई ग्रंथ प्रकाशित किए। 'धर्म तृतीय रत्न', 'इशारा', 'शिवाजी की जीवनी' और 'गुलामगीरी' नामक पुस्तकें लिखी। इन ग्रंथों द्वारा उन्होंने ब्राह्मणों के आधिपत्य के समक्ष एक चुनौती रखी। उन्होंने हंटर कमीशन को आवेदन पत्र देकर बताया कि ईसाई मिशनरियों का उद्देश्य देश भक्तिपूर्ण नहीं है और शिक्षा तक ही सीमित भी नहीं है।

ज्योतिराव अपने समाजसुधार के कार्यों से देशभर में प्रसिद्ध हो गए। उन्हें पूना नगरपालिका का सदस्य बनाया गया। उनकी समाजसेवा के सम्मान में मुंबई के नागरिकों ने उनका अभिवादन करके उन्हें महात्मा की उपाधि दी। तब से ज्योतिराव भारत में 'महात्मा ज्योतिबा फुले' के नाम से पहचाने जाते हैं। डॉ. अंबेडकर और महर्षि कर्वे उन्हें गुरुतुल्य मानते थे। ज्योतिबा द्वारा बताए गए सार्वजनिक सत्यधर्म की बुनियाद में समानता, न्याय, बौद्धिकता, बंधुत्व वगैरह बातें थीं। उनकी प्रवृत्तियाँ आज भी चल रही हैं, यही उनके कार्यों और विचारों की सार्थकता है। उनकी मृत्यु (28 नवंबर, 1890) को हुई थी।

स्वामी दयानंद सरस्वती और आर्यसमाज

दयानंद सरस्वती

स्वामी दयानंद सरस्वती (1824-1883) : आर्यसमाज के स्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म गुजरात में मोरबी के निकट टंकारा गाँव में (ई.स. 1824) में सनातनी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके बचपन का नाम मूलशंकर था। शिवरात्रि के पर्व पर एक चूहे को शिवलिंग के ऊपर से खाद्य सामग्री ले जाते देखा। उन्हें लगा कि भगवान अपनी रक्षा न कर सके तो दूसरे की रक्षा किस तरह करेंगे? इस प्रसंग से उनके जीवन में परिवर्तन आया और सत्य की खोज करने के लिए निश्चय किया। मूर्तिपूजा और कर्मकांड के विषय में उन्हें अविश्वास हो गया। उन्होंने सत्य की खोज में गृहत्याग किया। 15 वर्ष तक देशभर में परिभ्रमण करके योग का अभ्यास किया, स्वामी पूर्णानंद से संन्यास की दीक्षा ली। अब वे दयानंद के नाम से पहचाने जाने लगे। उन्होंने मथुरा में स्वामी विरजानंद से शिक्षा ग्रहण की। उन्होंने दिल्ली और पंजाब में देशाटन करके मुंबई में आर्यसमाज की स्थापना की (1875)। उसमें उन्होंने केवल दस नियमों और ''वेदों की ओर लौटो'' जैसे सूत्र दिए। जोधपुर में उनके विरोधियों ने भोजन में काँच का चूरा या जहर मिलाकर खिला दिया, जिससे उनकी मृत्यु (30 अक्टूबर, 1883- दिवाली) हो गई।

उपदेश

उनकी प्रखर विद्वता और चिंतन ने उन्हें भारत की सभी समस्याओं का समाधान वेदधर्म में खोजने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने 'वेदों की ओर लौटो' का सूत्र दिया। उन्हें वेदों में भारतीय धर्म और भारतीय संस्कृति के दर्शन हुए।

उनके उपदेश का सार इस तरह था - परमेश्वर के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान वेदों में समाया है। इसलिए वेद का अध्ययन ही सही अध्ययन है। वेद-अध्ययन करने का अधिकार प्रत्येक मनुष्य को है। मनुष्य जीवन की हर समस्या का समाधान वेद में है। वैदिक समय में मानव संस्कृति पूर्णावस्था को प्राप्त कर चुकी थी और वर्णाश्रम धर्म में समाजरचना के सभी श्रेष्ठ तत्त्व मौजूद हैं। फिर चार वर्ण का आधार जन्म नहीं बल्कि गुणकर्म होना चाहिए। जिसमें जिस वर्ण का गुण हो उसे उस वर्ण का अधिकार मिलना चाहिए। आर्य के वैदिक धर्म के दरवाजे सभी धर्म के लोगों के लिए खुले होने चाहिए तथा शुद्धीकरण से किसी भी व्यक्ति को इस धर्म में प्रवेश मिलना चाहिए। स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक अपने ग्रंथ में इन सभी सिद्धांतों की विस्तृत चर्चा की है। स्वामी दयानंद ने उस समय के प्रचलित धर्मों में व्याप्त सड़न, शंका और अंधश्रद्धा युक्त मान्यताओं का स्पष्टरूप से खंडन किया है। उन्होंने वेदों में से प्रमाण देकर मूर्तिपूजा का कड़ा विरोध किया है। उन्होंने बालविवाह तथा जातिप्रथा का भी विरोध किया है। कन्या शिक्षा, विधवा विवाह जैसे अत्यंत प्रगतिशील सुधार की उन्होंने सलाह दी है।

आर्यसमाज की प्रवृत्तियाँ

स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने विचारों को फैलाने के लिए आर्यसमाज की स्थापना की। इस संस्था द्वारा हिन्दुओं को संगठित करने तथा पश्चिमी संस्कृति को प्रहारों से हिन्दू धर्म की रक्षा करने के लिए उन्होंने प्रयत्न किया। उन्होंने धर्मांतरण किए गए हिन्दुओं को हिन्दू धर्म में पुनः लाने की 'शुद्धि आंदोलन' शुरू किया।

इसके उपरांत आर्यसमाज ने बालविवाह विरोध, विधवा विवाह को प्रोत्साहन, कन्या शिक्षा, दलितोद्धार वगैरह का अभियान शुरू करके समाजसुधार की प्रवृत्तियाँ की। उन्होंने दरिद्रनारायण की सेवा का आदर्श प्रस्तुत किया। जन्म से कोई मनुष्य हीन या अछूत नहीं है, ऐसा संदेश दे करके उन्होंने मानव की समानता का आदर्श भी लोगों के समझ प्रस्तुत किया। उनके प्रभाव के कारण उनके अनुयायियों में संयम, त्याग, लोकसेवा और धर्मनिष्ठा के गुण विकसित हुए।

स्वामी दयानंद सरस्वती की मृत्यु के पश्चात् लाला हंसराज, पंडित गुरुदत्त, स्वामी श्रद्धानंद और लाला लजपत राय जैसे निष्ठावान नेताओं ने इस संस्था की प्रवृत्तियों को चालू रखा। लाला हंसराज ने ई.स. 1889 में लाहोर में 'दयानंद अंग्लो-वैदिक कॉलेज' की स्थापना की। स्वामी श्रद्धानंद ने ई.स. 1902 में हरिद्वार के निकट 'कांगडी गुरुकुल' की स्थापना की। आर्य समाज ने भारतीय संस्कृति अनुसार कांगडी के गुरुकुल के माध्यम से उच्च शिक्षा तथा कन्या शिक्षा का फैलाव करने का अति महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इसके उपरांत स्त्रियों की तथा दलित वर्ग की स्थिति सुधारने में भी उन्होंने खूब उल्लेखनीय कार्य किया था। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्वरूप दिया गया था।

रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानंद

रामकृष्ण परमहंस (1834-1886)

रामकृष्ण परमहंस बंगाल के अत्यंत गरीब, अशिक्षित, सीधे सादे संत पुरुष थे। बचपन से ही उन्हें ईश्वर के प्रति अनन्य श्रद्धा थी। ईश्वर भक्ति में कई बार वे खो जाते थे। सात वर्ष की उम्र में उनके पिता का निधन हो गया था। उसके बाद कोलकाता में गंगा के पूर्व किनारे दक्षिणेश्वर में उन्होंने कालीमाता का एक मंदिर बनवाया। तब से वे कालीमाता के परम उपासक और भक्त थे। रामकृष्ण की मुलाकात प्रसिद्ध संत भैरवी तथा तोतापुरी के साथ हुई थी। वे ईश्वर को उसके विविध स्वरूप में देखने और पहचानने का सतत प्रयास करते थे। वे उच्च कोटि के संत थे। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त वर्ग के लोगों पर उनके जीवन का प्रभाव पड़ा।

धार्मिक क्षेत्र में आध्यात्मवाद का प्रसार उनका सबसे प्रथम महत्त्वपूर्ण कार्य है। दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य सभी धर्मों के पीछे रहे परमतत्त्व में विश्वास जाग्रत करना था। सभी धर्म समान हैं। कृष्ण, राम, ईसूख्रिस्त, अल्लाह वगैरह एक ही ईश्वर के विविध नाम हैं, ऐसा भारपूर्वक वे लोगों को समझाते थे। उनका तीसरा कार्य मानवसेवा से संबंधित था। मानवसेवा द्वारा कोई भी व्यक्ति ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। उनकी मान्यतानुसार सेवा करनेवाले व्यक्ति का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण है, कारण कि मानवसेवा में ईश्वर के दर्शन होते हैं।

स्वामी विवेकानंद (1863-1902)

रामकृष्ण परमहंस के सरल तथा प्रबल व्यक्तित्व से बंगाल के अनेक नवयुवक प्रभावित थे। उन नवयुवकों में सबसे तेजस्वी नवयुवक कोलकाता युनिवर्सिटी से ग्रेज्युएट हुए नरेन्द्रनाथ दत्त थे। वे बाद में विवेकानंद नाम से प्रसिद्ध हुए। विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी, 1863 में कोलकाता में विश्वनाथ दत्त के यहाँ भुवनेश्वरी देवी के गर्भ से हुआ था। उन्होंने भारतीय दर्शन के साथ स्टुअर्ट मिल, हरबर्ट स्पेंसर, शेली, हेगेल और वड्र्सवर्थ की रचनाओं का भी अध्ययन किया था। उनके समय के धार्मिक और बौद्धिक नेताओं के साथ उनकी मुलाकात हुई थी। नवंबर, 1880 में रामकृष्ण के साथ उनकी प्रथम मुलाकात हुई और तुरंत वे रामकृष्ण के भक्त बन गए। रामकृष्ण ही एक ऐसे व्यक्ति थे कि जिन्होंने विवेकानंद के इस प्रश्न का उत्तर दिया। प्रश्न था, ''क्या आपने ईश्वर को देखा है?'' उत्तर 'हाँ' में मिला।

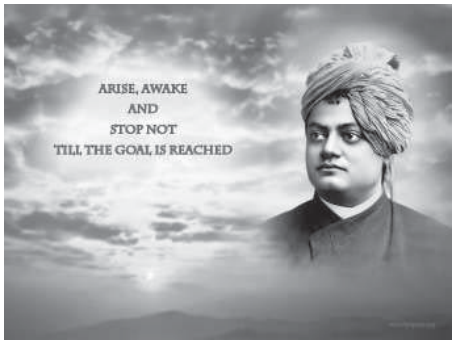

स्वामी विवेकानंद

स्वामी विवेकानंद ने (1891) किसी को भी साथ लिए बिना या कहे बिना भारत की यात्रा की। यात्रा में उन्हें भारत की गरीबी, भुखमरी, दयनीय दशा का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। दो वर्ष तक वे भारत के भिन्न-भिन्न भागों में घूमते रहे। इससे भारत के प्रश्नों को उन्होंने जाना। उसके बाद (1893) शिकागो में आयोजित सर्वधर्म संमेलन में हिस्सा लिया। विश्व धर्म परिषद के सदस्यों को 'भाइयो और बहनो' (Brothers and Sisters) शब्दों द्वारा संबोधित करके सबको मुग्ध कर लिया और तब से समग्र विश्व का ध्यान उनकी तरफ और जिस देश में से वे आध्यात्मिक संदेश लाए थे उस भारत की तरफ केन्द्रित हुआ। विश्व के देशों ने अब भारत को किसी नई दृष्टि से देखना शुरू किया। उसका यश स्वामी विवेकानंद को है। वे सच में ही 'नूतन भारत के संदेशावाहक' थे। उन्होंने विद्वता, छटादार वक्तृत्व शक्ति, आध्यात्मिक तेज और अद्भुत व्यक्तित्त्व का परिचय कराया। इससे विश्वधर्म परिषद में उपस्थित सदस्य तथा अमरीका के लोग उन पर मुग्ध हो गए। उसके बाद स्वामी विवेकानंद ने विविध देशों ग्रीस, तुर्किस्तान, मिस्र, चीन तथा जापान के पर्यटन दौरान पाश्चात्य संस्कृति एवं पौर्वात्य संस्कृति के अनेक पहलुओं का अनुभव प्राप्त किया। उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति के कई श्रेष्ठ तत्त्वों को स्वीकार किया तथा उनका भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ तत्त्वों के साथ मेल बैठा करके उन्होंने पूर्व और पश्चिम का समन्वय करने का उल्लेखनीय प्रयत्न किया। उन देशों में उन्होंने भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण परमहंस की उदार धर्मभावना तथा सेवाभावना का प्रचार करने के लिए 'रामकृष्ण मिशन' नामक संस्था की स्थापना की।

उपदेश

स्वामी विवेकानंद ने भारत के लोगों को उनके प्राचीन आध्यात्मिक विरासत को समझने तथा अपनाने का उपदेश दिया। वे वहम, अंधश्रद्धा और मंत्रतंत्र को दुर्बलता का स्वरूप मानते थे। उन्होंने लोगों को निर्बलता और आलस्य से मुक्त होने का अनुरोध किया तथा प्रगति की राह पर आत्मविश्वास के साथ प्रयाण करने की सीख दी। उन्होंने उस समय के प्रचलित सामाजिक दूषणों तथा धार्मिक क्रियाकांडों का कठोर विरोध किया। उन्होंने समाजसेवा और समाजसुधार का उपदेश दिया। उन्होंने शिक्षित नवजवानों से अपने देश में बंधुजनों की अज्ञानता और गरीबी दूर करने का अनुरोध किया। इस तरह, उनका धर्म भारतीय राष्ट्रीयता को जगानेवाला धर्म बना। उन्होंने भारत की युवा पीढ़ी में भारत के भूतकाल के प्रति गौरव और भविष्य के विषय में श्रद्धा जाग्रत की तथा उनमें स्वाभिमान की भावना जगाई।

वे स्पष्ट रूप से मानते थे कि, ''जो धर्म या ईश्वर विधवा के आँसू न पोंछ सके अथवा निराधार बालकों के मुख में रोटी का टुकड़ा न खिला सके, उस धर्म या ईश्वर में मैं नहीं मानता हूँ।'' वे कहते थे कि, ''पहले अन्न फिर धर्म।'' वे मनुष्य मात्र में ईश्वर के दर्शन करते थे। उनके मतानुसार, 'मानव सेवा ही

प्रभु सेवा है।' वे युवकों से कहते थे कि 'उत्तिष्ठ, जाग्रत, प्राप्यवरान्निबोधत।' उठो, जागो और तब तक नहीं रुको जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाय। उनकी वाणी में चतुराई की गहराई, अनुभवों का निचोड़ और शब्दों की ताजगी (Roses in December) देखने को मिलती है।

इस संदर्भ में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने उन्हें ''हिंद की सर्जन प्रतिभा'' बताते हुए लिखा है कि, ''यदि कोई भारत को समझना चाहता है तो उसे स्वामी विवेकानंद को पढ़ना चाहिए।'' सुभाषचंद्र बोस ने लिखा है कि, उनमें बुद्ध का हृदय और शंकराचार्य की बुद्धि थी तथा वे आधुनिक भारत के निर्माता थे।'' गांधीजी ने कहा है कि, ''स्वामी विवेकानंद के लिए किसी परिचय की आवश्यकता नहीं है, उनके नाम में ही प्रेरणा है।'' अमरीका प्रवास के बाद स्वामी विवेकानंद 'तूफानी हिन्दू' के नाम से प्रसिद्ध हुए। संक्षेप में भारत के नवजागरण में विवेकानंद का विशेष योगदान रहा है।

रामकृष्ण मिशन की प्रवृत्तियाँ :

स्वामी विवेकानंद ई.स. 1898 में स्थापित रामकृष्ण मिशन संस्था को धर्मप्रवर्तक संस्था के बदले सेवा संस्था कह सकते हैं। यह संस्था 'सेवा द्वारा सुधारणा' के आदर्श में मानती है। कोलकाता के पास 'बेलूर मठ' उसका मुख्य केन्द्र है। अंग्रेजी में प्रकाशित 'प्रबुद्ध भारत' और बंगाली में प्रकाशित 'उद्‌बोधन' रामकृष्ण परमहंस के जीवनसंदेश के प्रचार का कार्य करता है। भारत तथा विदेशों में रामकृष्ण मिशन की अनेक शाखाएँ कार्यरत हैं।

रामकृष्ण मिशन की धर्मसुधारण या समाजसुधार की प्रवृत्तियों में अन्य संस्थाओं जैसी उग्रता देखने को नहीं मिलती है। रामकृष्ण मिशन की तरफ से देशभर में विद्यालय, अस्पताल तथा अनाथाश्रम खोले गए हैं। उसके उपरांत अकाल, भूकंप से महामारी वगैरह प्राकृतिक आपत्तियों के समय मिशन के कार्यकर्ता लोगों की नि:स्वार्थ भाव से सेवा करते हैं, वे अपना जीवन ईश्वर उपासना तथा जनसेवा में समर्पित कर देते हैं। दूसरे प्रकार के कार्यकर्ता संसारी होते हैं, वे संसार में रहकर मिशन के आदर्श अनुसार जीवन जीने का तथा जनसेवा का प्रयत्न करते हैं। रामकृष्ण मिशन ने सिस्टर निवेदिता, बी. सी. पाल जैसे राजनैतिक नेता समाज को दिए हैं।

महर्षि अरविंद

महर्षि अरविंद का जन्म (15 अगस्त 1872) को हुआ था। उनके पिता डॉ. कृष्णधन घोष उन्हें संपूर्ण रूप से अंग्रेज बनाना चाहते थे। उन्होंने बचपन से ही अरविंद का नाम अरविंद एक्रोइड घोष रखा था। पाँच वर्ष की उम्र से ही यूरोपीय संस्कारों को पाने के लिए उन्हें इंग्लैंड भेजा गया था। परंतु वे पाश्चात्य संस्कारों के बदले देशभक्ति के रंग में रंग गए। मातृभूमि की भक्ति का बीज अरविंद के अंतर में इंग्लैंड की धरती पर ही पड़ गया और भारत की भूमि पर वह अंकुरित हो गया। वे मातृभूमि को एक निर्जीव पदार्थ के रूप में नहीं बल्कि जीवंत माता के रूप में मानते थे। उन्होंने भारतभूमि के लिए मंत्र प्रचलित किया 'वंदे मातरम्'। उन्होंने भारत भूमि के चरणों में अपना जीवन समर्पित कर दिया। उनका जीवन युवकों के लिए प्रेरणादायी बन गया था।

उनके कार्य, उनकी वाणी, उनका व्यक्तित्व अंतरतेज से प्रदीप्त हो गए थे। उन्होंने भारत की आत्मा को जाग्रत करने के लिए 'वंदे मातरम्' नामक वर्तमानपत्र शुरू किया। इस वर्तमानपत्र ने भारत के लोगों की राष्ट्रीय भावना को जगाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। मुजफ्फर पुर बम घटना में भाग लेने वाले क्रांतिकारियों के मुख्य सूत्रधार होने का आरोप लगाकर अंग्रेजी सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। कोलकाता (अलीपुर) जेल में बंद कर दिया। यहाँ उन्हें एकांत कोठरी में रखा गया, जहाँ उन्हें कई आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हुई। परिणाम स्वरूप उनके अंत:चक्षु खुल गए और उन्हें दिव्यता के दर्शन हुए। श्री अरविंद के लिए जेल जेल नहीं रहता था बल्कि योगाश्रम बन जाता था।

वे जेल में से छूटे तो एकदम बदल चुके थे। वे भगवान का साक्षात्कार करके दिव्य पुरुष बन चुके थे। वे पहले चंद्रनगर और फिर वहाँ से (ई.स. 1910) पुडुचेरी गए। वहाँ वे एकांत में रहे और उग्र तप-साधना की। मानवजाति को दिव्यता अर्पण करने फ्रांस से आई श्री माता जी ने (मूल नाम : मीरा आल्फान्सा) उनका सहायक बनकर देहत्याग किया। देहत्याग किया (5 दिसंबर, 1950) तब तक (40 वर्ष) उनके साथ पुडुच्चेरी आश्रम में रही।

नारायण गुरु

नारायण गुरु ने पिछड़ी एवं पीड़ित जातियों के उत्कर्ष के लिए आजीवन कार्य किया। उन्होंने मानवधर्म और मानवमात्र की समानता का संदेश दिया। उनका जन्म केरल के एमपर्ग गाँव में (ई.स. 1856) हुआ था। माता-पिता की पवित्रता और आदर्शों का संस्कार नारायण गुरु को विरासत में मिला। नारायण गुरु ने लोगों के 'एक ही जाति, एक ही धर्म और एक ही ईश्वर में मानने का उपदेश दिया। उन्होंने लोगों से ऊँच-नीच के भेदभाव, जातिभेद वगैरह को खत्म करने का अनुरोध किया।'

नारायण गुरु किशोरावस्था से ही आध्यात्मिक प्रवृत्तिवाले थे। घर छोड़कर, कठोर साधना करके समाज के निचले स्तर के लोगों की सेवा के क्षेत्र में वे सक्रिय बने थे। उन्होंने तमाम लोगों से शिक्षा लेने का उनुरोध किया। वे निरक्षरता को वहम और अनिष्टों का मूल मानते थे। उन्होंने अस्पृश्यों को पढ़ने में सक्रिय किया। उन्हें समान अधिकार दिलाकर सामान्य मानवजीवन जीना सिखाया। वे कन्याशिक्षा के लिए विशेष जागृत और प्रयत्नशील थे। उन्होंने 'श्री नारायण धर्म परिपालन योगयम्' नामक संस्था की स्थापना (ई.स. 1903) की। वे मुक्ति के लिए शिक्षा, एकता के लिए संगठन और गरीबी उन्मूलन तथा आर्थिक समृद्धि के लिए उद्योगों के विकास को आवश्यक मानते थे। वे कौमी विवादों और सांप्रदायिक तत्त्वों से दूर रहने के लिए लोगों को समझाते थे। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय भाईचारा के लिए प्रचार किया और देश-विदेश में आध्यात्मवादी सुधारक के नाम से जाने गए। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने नारायण गुरु को अपने युग के महान संत और सुधारक के रूप में माना है।

कुन्दकुरि वीरेसलिंगम् (ई.स. 1848-1919)

वीरे सलिंगम् का जन्म ई.स. 1848 में आंध्र प्रदेश के राजमुन्द्री जिला में हुआ था। उन पर भारतीय और पाश्चात्य दोनों संस्कृतियों का प्रभाव था और वे स्वयं भी दोनों संस्कृतियों की तरफ सद्भावना रखते थे। वे एक अच्छे लेखक थे और उनकी कृतियों ने तेलुगू साहित्य को समृद्ध किया था।

वे प्रखर समाजसुधारक भी थे। अत: समाजसुधार के लिए 'राजमुन्द्री सोशियल रिफॉर्म एसोसियेशन' की स्थापना की थी। उन्होंने बालविवाह और जातिवाद का विरोध किया था तथा विधवा पुनर्विवाह और स्त्री शिक्षा पर जोर दिया था। उन्होंने विधवाओं के पुनर्वसन तथा भ्रष्टाचार के उन्मूलन के लिए जोरदार अभियान चलाया था। उन्होंने निराधार लोगों, स्त्रियों तथा बालकों के लिए विद्यालयों, सहायता केन्द्रों वगैरह को खोल करके समाज सुधार का कार्य किया। उसके बाद (ई.स. 1919) दक्षिण के ऐसे प्रखर समाजसुधारक और राष्ट्रीय आंदोलन तथा आधुनिक शिक्षा पद्धति के पुरस्कर्ता कुन्दकरि वीरेसलिंगम् का निधन हुआ।

थियोसॉफिकल सोसायटी

यह अंतर्राष्ट्रीय संस्था है। 'थियोसॉफी' शब्द मूल ग्रीक भाषा से आया हुआ है। ग्रीक भाषा में 'थियो' अर्थात् ईश्वर और 'सोफिया' अर्थात् ज्ञान। इन दो शब्दों से निर्मित 'थियोसॉफी' शब्द का अर्थ ईश्वर संबंधी ज्ञान होता है।

इस संस्था की स्थापना (ई.स. 1875) अमरीका के न्यूयार्क में मेडम ब्लेवट्स्की नामक रूसी महिला तथा कर्नल एच. एस. आल्कोट नामक अमेरिकन सेना अधिकारी ने किया था। स्वामी दयानंद सरस्वती ने भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान के कार्य में सहायक होने के लिए उन्हें भारत आने के लिए नियंत्रण दिया। जिसे स्वीकार करके दोनों भारत आ करके मद्रास (चेन्नई) के पास अडियार नामक स्थान पर थियोसॉफिकल सोसायटी की स्थापना की (1882)। इस संस्था के मुख्य तीन उद्देश्य निम्नानुसार थे :

(1) विश्व बंधुत्व की भावना में विश्वास।

(2) प्राचीन धर्मों, दर्शनों और विज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन को प्रोत्साहन।

(3) प्रकृति के नियमों का संशोधन और मनुष्य में रही दैवी शक्ति का विकास।

कर्नल आल्कोट और मेडम ब्लेवट्स्की जैसे अध्ययन कर्ता विदेश से भारत आ करके भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति का गुणगान करें, यह बात अभूतपूर्व थी, कारण कि उसके कारण भारतवासियों में स्वाभिमान और अस्मिता जाग्रत हुई।

श्रीमती एनी बेसन्ट

श्रीमती एनी बेसन्ट नामक आयरिश महिला ने भारत में आ करके थियोसॉफिकल सोसायटी का कार्य संभाल लिया (ई.स. 1893)। उनकी प्रवृत्तियों से भारत में राष्ट्रीय आंदोलन को गति मिली। उनकी मान्यता थी कि भारत की वर्तमान समस्याओं का हल उसके प्राचीन आदर्शों और संस्थाओं को पुनर्जीवित करने से मिल सकेगा। भारतीय संस्कृति और धर्म का पुनरुत्थान खुद भारत के लोगों द्वारा ही हो सकेगा और इससे समस्त विश्व का कल्याण होगा। उन्होंने भारत में रहकर भारत के लोगों को उनके धर्म और तत्त्वज्ञान की महानता के विषय में जागरूक बनाया। किसी भी प्रकार के जाति या धर्म के भेदभाव के बिना विश्व बंधुत्व का आदर्श स्थापित करने का उनका प्रयास प्रशंसनीय रहा। अपने ऐसे उद्देश्यों का फैलाव करने के लिए उन्होंने बनारस में 'सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल' की स्थापना की, जो बाद में 'बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी' के रूप में परिवर्तित हो गया (1916)।

श्रीमती एनी बेसन्ट

शिक्षा के उपरांत सामाजिक क्षेत्र में भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने समाज में फैले अनिष्टों को दूर करने के लिए प्रयत्न किए और विधवा विवाह को प्रोत्साहन दिया। 19 वीं सदी में भारत में जब हिन्दू, ईसाई, इस्लाम वगैरह विविध धर्मों और पंथों के बीच विवाद और कड़वाहट बढ़ रही थी तब थियोसॉफिकल सोसायटी ने और एनी बेसन्ट ने कौमवाद को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने भारत में 'स्काउट' और 'गर्ल्स गाइड' की प्रवृत्तियाँ शुरू की थी। इसके उपरांत (ई.स. 1916) चेन्नई में 'होम रूल लीग' की स्थापना की और उसके माध्यम से भारत की स्वतंत्रता के लिए सक्रिय आंदोलन शुरू किया। उन्होंने पत्रकारिता की स्वतंत्रता के लिए तनतोड़ मेहनत की। इस तरह, एनी बेसन्ट ने भारतीय संस्कृति के गौरव की पुनः स्थापना करके तथा लोगों की राष्ट्रीय भावना को विकसित करके उन्होंने भारतीय समाज और देश की अमूल्य सेवा की। विशेष करके दक्षिण भारत में सुधार के क्षेत्र में थियोसॉफिकल सोसायटी की महत्त्वपूर्ण देन रही है।

सर सैयद अहमदखान और अलीगढ़ आंदोलन

19वीं सदी में हिंदुओं की तरह मुस्लिम समाज में भी सुधार के लिए आंदोलन हुए। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में उत्तरप्रदेश में रायबरेली के सैयद अहमद बरेलवी और बंगाल के शरीअतुल्ला जैसे नेताओं के मार्गदर्शन में मुसलमानों सामाजिक और धार्मिक जागृति का आरंभ हुआ। शुरुआत में अधिकतर मुस्लिमों ने पाश्चात्य शिक्षा से अलिप्त रहना पसंद किया था। 1857 के संग्राम के बाद मुस्लिमों ने सामाजिक तथा धार्मिक सुधार की तरफ ध्यान केन्द्रित किया था। सैयद अहमद बरेलवी की नेतागीरी के नीचे 'वहावी आंदोलन' नाम से सुधारक आंदोलन शुरू हुआ था। इस आंदोलन ने मुस्लिमों में आधुनिक विचारों का प्रचार करके उनकी उन्नति के लिए प्रयत्न किया था। वहाबी आंदोलन और फरीदी आंदोलन के बाद मुस्लिम धर्म और समाज में सुधार लाने के लिए मौलवी चिराग अली और सर सैयद अहमदखान जैसे सुधारकों ने प्रयास किया।

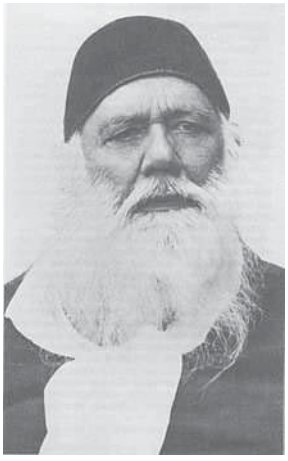

सर सैयद अहमदखान

सर सैयद अहमद खान का जन्म मुगल दरबार के उमराव परिवार में हुआ था। वे ई.स. 1857 के संग्राम के समय कंपनी सरकार की नौकरी में थे और उस समय कंपनी के वफादार रहे थे। निवृत्ति के बाद वे इंग्लैंड गए और पाश्चात्य उदारमतवाद से प्रभावित हुए। उन्होंने मुस्लिमों प्रोत्साहित किया। उन्होंने (ई.स. 1870) 'तह जिब-उल्-अखलाक' मुस्लिम पत्रिका शुरू की। उन्होंने अलीगढ़ में मुस्लिम मदरसा और उसके बाद विद्यालय तथा

'अंग्लो मोहमेडन ओरियंट कॉलेज' की स्थापना की, जो बाद में विकसित होकर अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी बन गई (1820)। उस समय का अलीगढ़ शहर और वहाँ की कॉलेज सुधारणा की प्रवृत्तियों का मुख्य केन्द्र बना। अत: मुस्लिम समाज की सामाजिक और धार्मिक सुधारणा के लिए उनके द्वारा शुरू किया गया आंदोलन अलीगढ़ आंदोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सर सैयद अहमदखान ने अंग्रेजी साहित्य और विज्ञान से संबंधित ग्रंथों का उर्दू अनुवाद करने के लिए 'ट्रान्सलेशन सोसायटी ऑफ इंडिया' नामक संस्था स्थापित की। मुस्लिम समाज को इस तरह उर्दू के माध्यम द्वारा पाश्चात्य ज्ञान से परिचित करवाया। वे मुस्लिम स्त्रियों को शिक्षा देने में तथा परदा प्रथा का त्याग करने में मानते थे। उनके प्रयत्नों से मुस्लिम समाज में सुधार करने के लिए जगह-जगह सुधारक संस्थाएँ स्थापित की गई थी, जिसमें समाज सेवा के काम को आगे बढ़ाया।

सिक्ख समाज में धार्मिक सुधार

19 वीं सदी के अंत में सिक्खों में भी सिक्ख समाज सुधार का आंदोलन शुरू हुआ, जो 'अकाली आंदोलन' के रूप में जाना जाता है। उनका सुधार उनके गुरु द्वारों की सुधारणा से शुरू हुआ था। गुरुद्वारों की व्यवस्था करने के लिए 'शिरोमणि गुरु द्वारा प्रबंधक समिति' की रचना की गई। जिसे सरकार ने मान्यता प्रदान की और गुरुद्वारा का सारा संचालन उस समिति को सौंप दिया गया। इसके उपरांत अकाली आंदोलन को अमृतसर में खालसा (दैवी) कॉलेज तथा अन्य स्थलों में शालाओं की स्थापना करके, उनके द्वारा पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार किया।

सामाजिक क्षेत्र में कानून निर्माण की प्रक्रिया और भारतीय प्रतिभाव

प्रगतिशील भारतीय बौद्धिक और उदार सिद्धांतों पर आधारित समाज की पुनर्रचना करने का प्रयत्न कर रहे थे तब सरकार भी इस समस्या के प्रति सानुकूल व्यवहार अपनाया। उन्नीसवीं सदी के पूवार्ध में सरकार द्वारा किए गए समाजसुधार के कुछ उल्लेखनीय कार्य निम्नानुसार थे :

(1) गवर्नर जनरल विलियम बेन्टिक ने (ई.स. 1829) बंगाल में सती प्रथा को गैरकानूनी घोषित कर दिया। उसके बाद मुंबई तथा मद्रास प्रांतों में भी सतीप्रथा खत्म करने के सुधार हुए। देशी राज्यों में भी यह प्रथा खत्म कर दी गई।

(2) बेटी को दूधपीती करके बालहत्या करने का रिवाज कुछ जातियों में था। उस रिवाज को भी समय-समय पर कानून बनाकर खत्म किया गया।

(3) चार्ल्स वुड के सरकारी कागजात के अनुसार सरकार ने स्त्री शिक्षा के लिए शालाएँ शुरू की थी।

(4) ई.स. 1856 के कानून अनुसार भारतीय विधवा पुनर्विवाह को मान्यता मिली।

(5) ई.स. 1872 में विवाह अधिनियम पारित करके 14 वर्ष से छोटी उम्र की कन्याओं के विवाह पर प्रतिबंध लगा दिया गया तथा बहुपत्नी प्रथा को अपराध माना गया। इस कानून से अंतर्जातीय विवाह को मान्य रखा गया।

समय के साथ लोगों में राष्ट्रीय चेतना विकसित हुई और वे स्वतंत्रता आंदोलन की तरफ बढ़े। 'इंडियन नेशनल सोशियल कॉन्फरेन्स' जैसी संस्थाओं ने स्त्रियों तथा पिछड़े वर्ग के लोगों को प्रभावित करनेवाले दूषणों को दूर करने का प्रयास किया। मॉन्टेग्यु-चेम्सफर्ड सुधार (ई.स. 1919) होने से भारतीयों को अधिक शासनिक सत्ताएँ प्राप्त हुईं। फिर भी एकपत्नीत्व, स्त्रियों को संपत्ति में अधिकार देना तथा अस्पृश्यों को मंदिर में प्रवेश की अनुमति देना आदि कानून पारित करने का प्रयास निष्फल गया। जबकि हिन्दू स्त्रियों को संपत्ति में अधिकार और अस्पृश्यों को मंदिर में प्रवेश संबंधी कानून (ई.स. 1937) पारित किया गया।

'असहयोग' और 'सविनय कानून भंग' जैसे आंदोलनों में तथा शराब की दुकानों में पिकेटिंग करने तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार में विशेष भाग लिया। इससे समाज में स्त्रियों के स्थान में सुधार हुआ। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने बंगाल में स्त्रियों की उन्नति और कन्या शिक्षा के लिए अभियान चलाया। उन्होंने बालविवाह, विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबंध और बहुपत्नीप्रथा के विरोध में उग्र आंदोलन चलाया। उनके प्रयासों के कारण ही अंग्रेज सरकार ने (ई.स. 1856)विधवा पुनर्विवाह कानून बनाया। इस तरह, स्त्रियों की स्थिति और दर्जा सुधारने के कार्य में ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने अमूल्य योगदान दिया।

द्वितीय विश्वयुद्ध दौरान ब्रिटिश सरकार ने सरकारी नौकरियों में स्त्रियों की भर्ती करके उन्हें स्वावलंबी

बनने के लिए प्रोत्साहित किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समाज में स्त्रियों के पद में विशेष परिवर्तन आया। संविधान द्वारा स्त्रियों को समाज में स्त्री-पुरुष समानता तथा कन्या शिक्षा पर जोर दिया गया। स्त्रियों के विशिष्ट हितों की सुरक्षा के लिए कानून बनाया गया। कन्याओं के लिए विशिष्ट अभ्यासक्रम बनाया गया और विशेष सुविधाएँ भी दी गई। इसके परिणाम स्वरूप स्त्रियों में शिक्षा का प्रमाण उल्लेखनीय ढंग से बढ़ा है। स्त्रियों ने अनेक व्यवसायों में प्रवेश किया है। सामाजिक व्यवहार में स्त्रियों की स्वतंत्रता और समानता का प्रमाण बढ़ा है। इस तरह, आजादी के बाद स्त्री शिक्षा के कारण उनमें जागृति, सार्वजनिक जीवन में प्रवेश, सरकार की तरफ से प्राप्त विशिष्ट अधिकार, स्त्रियों के उत्कर्ष के लिए निर्मित कानून वगैरह के कारण समाज में स्त्रियों का स्थान ऊँचा उठा है। वर्तमान समय में स्थानीय स्वराज की संस्थाओं में स्त्रियों को 33 प्रतिशत आरक्षित सीटें मिली हैं, जिसके परिणाम स्वरूप ग्राम पंचायत, तहसील और जिला पंचायत में प्रमुखपद के स्थान तक स्त्रियाँ पहुँची हैं।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) राजा राममोहन राय ने समाज-सुधार के लिए कौन-कौन सी प्रवृत्तियाँ की थीं ?

(2) ब्रह्मसमाज की मुख्य प्रवृत्तियाँ कौन-कौन सी थीं?

(3) रामकृष्ण मिशन की समाजसेवा की प्रवृत्तियों की रूपरेखा दीजिए।

(4) आर्य समाज की प्रवृत्तियों की जानकारी दीजिए।

(5) थियोसॉफिकल सोसायटी की प्रवृत्तियों में श्रीमती एनी बेसन्ट का क्या योगदान रहा है?

2. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) राजा राममोहनराय ने किस संस्था की स्थापना की थी?

(2) राजा राममोहन राय को 'राजा' की उपाधि किसने दी थी?

(3) ज्योतिराव फुले का जन्म किस परिवार में हुआ था?

(4) आर्यसमाज के स्थापक कौन थे?

(5) रामकृष्ण मिशन की स्थापना किसने की थी?

3. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) राजा राममोहन राय ने समाजसुधार के लिए किस संस्था की स्थापना की थी ?

(अ) हितकारिणी सभा (ब) आर्यसमाज (क) प्रार्थनासमाज (ड) ब्रह्मोसमाज

(2) रामकृष्ण मिशन की स्थापना किसने की थी?

(अ) स्वामी रामकृष्ण (ब) स्वामी विवेकानंद

(क) स्वामी दयानंद सरस्वती (ड) राजा राममोहन राय

(3) शिरोमणि गुरु प्रबंधक समिति ने किस समाज में सुधारणा का कार्य किया?

(अ) सिक्ख (ब) हिन्दू (क) मुस्लिम (ड) ईसाई

(4) थियोसॉफिकल सोसायटी का कार्य भारत में आ करके किसने अपने हाथ में ले लिया?

(अ) मेडम ब्लेवेट्स्की (ब) एनी बेसन्ट (क) कर्नल आलकोट (ड) बेन्टिक

(5) सतीप्रथा को प्रतिबंधित करने का कानून किसने बनाया था?

(अ) रॉबर्ट क्लाइव (ब) डलहौजी

(क) विलियम बेन्टिक (ड) वाइसरॉय केनिंग

●

8 राष्ट्रीय आंदोलन (1857-1919)

भारतीय राष्ट्रीय महासभा (Indian National Congress) की स्थापना के साथ भारतीय इतिहास का एक गौरवपूर्ण अध्याय आरंभ हुआ। उसका अध्ययन करने से पहले हम 'भारतीय राष्ट्रीय महासभा' के उद्‌भव एवं विकास के कारणभूत परिबलों, पुरोगामी संस्थाओं और उसके प्रारंभिक चरण (1885-1919)के कार्यों का संक्षिप्त विवरण प्राप्त करेंगे।

भारत का प्रशासनिक तथा आर्थिक एकीकरण

1857 के स्वतंत्रता संग्राम के अंत में कंपनी-शासन समाप्त होने पर भारत पर ब्रिटिश ताज का सीधा शासन स्थापित हुआ। उसके कतिपय तात्कालिक एवं दूरगामी प्रभाव पड़े। ब्रिटिश सरकार का सीधा स्थापित होने पर उसकी प्रशासनिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक नीति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। शासक तथा शासित के बीच पारस्परिक अंतर तथा अविश्वास को स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्त्वपूर्ण कारण माना गया था। इसे दूर करने के लिए भारतीयों को प्रशासन में शामिल करना जरूरी था। कंपनी सरकार ने वर्गीय तथा शासकीय श्रेष्ठता की धारणा के कारण भारतीयों को सरकारी पदों से वंचित रखा था तथा योग्यता के आधार पर भारतीयों को प्रशासन में शामिल करने के चार्टर एक्ट 1833 की सिफारिशों पर अमल भी नहीं किया गया था। इस कारण संग्राम की समाप्ति पर नवम्बर, 1858 में प्रकाशित महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र में योग्यता के आधार पर भारतीयों को प्रशासन में शामिल करने की नीति का पुनः उच्चारण किया गया तथा उसका आंशिक अमल भी हुआ। परंतु उसकी मात्रा बहुत कम थी। उन्हें दी गई जगहों के पदों का स्तर बहुत निम्न था। इससे विशेष रूप में शिक्षित भारतीयों का सरकार के प्रति असंतोष बढ़ा। 1861 के अधिनियम द्वारा इस असंतोष को कम करने का प्रयास किया गया।

कंपनी सरकार की आर्थिक नीति ने भारत को बरबाद किया। उसके द्वारा लगाए गए भारी जमीनी लगान तथा उनके द्वारा पोषित जमींदार वर्ग से किसानों का खूब शोषण होने के कारण खेती चौपट हो गई। भारतीय किसान बेहाल हुआ। सरकार की तथाकथित मुक्त व्यापारनीति से भारत के उद्योग-धंधे भी नष्ट हो गए। इंग्लैंड में आयातित भारतीय माल पर भारी चुंगी ली जाती थी, जब कि इंग्लैंड से भारत में आनेवाले माल पर मात्र पाँच प्रतिशत जितनी मामूली चुंगी ली जाती थी। परिणामस्वरूप भारत में बननेवाला माल भारत में ही महँगा पड़ता था, जब इंग्लैंड में बननेवाला माल भारत में सस्ता बेचा जा सकता था। इस कारण भारतीय उद्योग-धंधे नष्ट हुए और उसका कारीगर वर्ग बेकार हो गया। ब्रिटिश सरकार ने कंपनी सरकार की इस नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया इससे भारत में बेकारी और भुखमरी बढ़ी। विलियम हंटर (ई.स. 1880) के उल्लेख के अनुसार लाखों भारतीयों को एक जून भोजन से चला लेना पड़ता था। भारतीय मामलों के मंत्री सेलिसबरी (ई.स. 1875) ने भी स्वीकार किया की ब्रिटिश शासन ने भारत को निचोड़कर सफेद पूनी जैसा बना दिया था। उपरांत 19 वीं सदी में बार-बार पड़े अकालों ने भारतीयों की विषम परिस्थिति में वृद्धि की थी। उस समय सरकार ने लोगों को समय पर सहायता नहीं दी थी। इन सबके परिणाम स्वरूप लोगों में असंतोष बढ़ा।

पाश्चात्य विचारों तथा शिक्षा का भारत पर प्रभाव

भारत में अंग्रेजी शिक्षा दाखिल करने का विलियम बैंटिक का निर्णय (7 मार्च, 1835) अत्यंत ऐतिहासिक और युग प्रवर्तक सिद्ध हुआ। इंग्लैंड की पार्लियामेंट ने कंपनी को आदेश दिया था (1813) कि भारत में शिक्षा, कला तथा संस्कृति को प्रोत्साहित करने हेतु वह प्रतिवर्ष एक लाख रुपए खर्च करे। परंतु (ई.स. 1833 तक) कंपनी ने भारत में शिक्षा के विकास के लिए एक पाई भी खर्च नहीं किया था। उस

समय वह प्रश्न था कि भारत के लोगों को संस्कृत या फारसी अथवा अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा के समर्थक थे। विलियम बैंटिक भी अंग्रेजी शिक्षा तथा ज्ञान-विज्ञान भारत में दाखिल करने के पक्ष में था। उसने शिक्षा के प्रश्नों का अवलोकन करने हेतु एक शिक्षा-पंच नियुक्त किया। उसका अध्यक्ष टी. बी. मेकॉले को बनाया। मेकॉले ने फरवरी 1835 में अपनी रिपोर्ट दी। उसने पाश्चात्य शिक्षा देने की हिमायत की थी। विलियम बैंटिक ने इस रिपोर्ट को स्वीकार किया। उसके बाद गवर्नर जनरल डलहोज़ी (ई.स. 1848-56) के समय में सर चार्ल्स वुड नामक अधिकारी ने भारतीय शिक्षण के मेग्नाकार्टा के रूप में प्रसिद्ध 'शिक्षा का दस्तावेज' पारित करके शिक्षा की दिशा में तेजी से गति की। वाइसरॉय रिपन ने हंटर कमीशन द्वारा इस काम को स्थायी रूप दिया। इन सभी प्रयत्नों से भारतभर में पाश्चात्य शिक्षा का विस्तार बढ़ा। इससे भारत में आगे चलकर 'बुद्धिजीवियों' के एक किन्तु शक्तिशाली वर्ग का उदय हुआ। उसने इंग्लैंड के इतिहास तथा वहाँ के प्रसिद्ध लेखकों का अध्ययन किया। बर्क, मिल, स्पेंसर इत्यादि की उदारमतवादी, स्वातंत्र्यप्रिय रचनाओं ने इस वर्ग में राष्ट्रवाद तथा स्वशासन की भावना जगाई। साथ ही इंग्लैंड का इतिहास तो अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाता था। उसमें मेग्नाकार्टा की प्राप्ति से लेकर संसदीय प्रणाली, चुनाव, राजनीतिक दल, लोगों के मूलभूल अधिकार आदि ने भारत के शिक्षित समाज पर प्रभाव डाला।

मुद्रण तथा साहित्य क्षेत्र का प्रभाव

राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में समाचारपत्रों तथा साहित्य ने भी उल्लेखनीय योगदान दिया। भारत में ठेठ सोलहवीं सदी से पुर्तगालियों द्वारा मुद्रण कला का आरंभ हो चुका था। तत्पश्चात् सत्रहवीं सदी में मुंबई में भीमजी पारेख नामक गुजराती वैश्य तथा ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने प्रेस स्थापित किए। अठारहवीं सदी में कोलकाता, मद्रास (चेन्नई) तथा मुंबई जैसे बड़े शहरों में ऐसे मुद्रणालय आरंभ हुए। जिनसे ग्रंथ, पत्रिकाएँ, साप्ताहिक तथा दैनिक समाचार पत्र छपकर लोगों तक पहुँचने लगे। इस अवधि में बंगाल में (ई.स. 1780) कोलकाता में जेम ऑगस्टस हिकी नामक अंग्रेज ने 'बेंगॉल गज़ेट' नामक पहला समाचारपत्र निकालकर वाणी स्वातंत्र्य, विचारों की अभिव्यक्ति और पत्रकारिता के क्षेत्र में उच्च मानदंडों की स्थापना की।

इस काल में भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होनेवाले अखबारों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। ई.स. 1888 तक बंगाल में लगभग 62, मुंबई क्षेत्र में लगभग 100 तथा मद्रास प्रांत में लगभग 50 जितने समाचारपत्र विभिन्न देशी (भारतीय) भाषाओं में प्रकाशित होते थे। इनके अलावा काफी संख्या में अंग्रेजी भाषा में भी समाचारपत्र निकलते थे। इनमें विशेष रूप से कोलकाता से प्रकाशित होनेवाले 'पेट्रियट', 'इंडियन मिरर' और 'अमृतबाज़ार पत्रिका' नामक अखबारों ने सरकार के अन्यायी कार्यों, नील के खेतों में काम करनेवाले मजदूरों पर होनेवाले अत्याचारों आदि की कठोर निंदा करके जनमत को जाग्रत किया। लोकमान्य तिलक के मार्गदर्शन में प्रकाशित होनेवाले 'केसरी' और 'मराठा' साप्ताहिक ने सभी राष्ट्रवाद की भावना के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। मद्रास ने प्रकाशित होनेवाले 'हिन्दू' नामक समाचारपत्र ने भी दक्षिणी भारत में राष्ट्रीय चेतना जगाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

इस तरह, भारत में अखबारों के प्रयत्न से लोकजागृति बढ़ी। देशभर में अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा के कारण अंग्रेजी के अतिरिक्त गुजराती, मराठी, बांग्ला, तमिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़, पंजाबी, उर्दू और हिन्दी आदि भाषाओं में प्रचुर मात्रा में साहित्यरचना आरंभ हुई। इन साहित्यिक रचनाओं में राष्ट्रवाद, अतीत गौरव और वैचारिक जागरण से संबंधित विचार पर्याप्त मात्रा में होते थे। बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय (चटर्जी) लिखित 'आनंदमठ' नामक उपन्यास का 'वंदे मातरम्' क्रांतिकारी युवकों का प्रिय नारा बन गया था। तदुपरांत कविवर रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' दीनबंधु मित्र का 'नीलपर्ण' राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यालंकार, महादेव गोविंद रानडे, गोपाल हरिदेशमुख, चिपलूणकर, लोकमान्य तिलक गुजरात में गोवर्धनराय त्रिपाठी, वीर नर्मद, करसनदास मूलजी इत्यादि की राष्ट्रवादी और सुधारक कृत्यों और कृतियों ने देशभर में एक नई जागृति और लोकचेतना निर्मित की। इस तरह, दोनों माध्यमों द्वारा तत्कालीन भारत में बड़ा परिवर्तन आया।

भारत के भव्य अतीत का पुनराविष्कार

इस काल में भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग के प्रमुख एलेक्जांडर कनिंगहाम तथा उनके सहकर्मियों ने अनेक स्थलों पर खुदाई करके भारतीय संस्कृति की गौरव-गान करनेवाले अवशेषों की खोज की। इस काल में भगवानलाल इंद्रजी जैसे भारतीय पुरातत्त्वविदों ने भी अनेक पुराने अवशेषों की खोज की और भारतीयों को अपने देश की सांस्कृतिक भव्यता से परिचित करवाया। साथ ही, जेम्स टॉड, जेम्स प्रिंसेप, सर एलेक्ज़ांडर, किनलोक फॉर्ब्स, मेक्समूलर विल्सन, फर्ग्युसन, बुलहर, फ्लीट जैसे पाश्चात्य विद्वानों तथा राजेन्द्रलाल मित्रा, रामकृष्ण गो. भंडारकर, डॉ. हसमुख सांकलिया, हरिप्रसाद शास्त्री, दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, राजा राममोहन राय, भगवानलाल इंद्रजी, डॉ. एस. आर. राव, डॉ. आर. एन. महेता, श्री पी. पी. पंड्या, आर. एस. बिष्ट इत्यादि पुरातत्वशास्त्रियों द्वारा भारतीय गौरव गाथा को पुनः पांडुलिपियों इत्यादि का अध्ययन करके उन पर अध्ययन परख लेख लिखे। अशोक के शिलालेख, सिक्के, पाणिनी तथा पतंजलि की कृतियों, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, अश्वघोष की रचनाओं, कालिदास की पुस्तकों, महान व्याकरणशास्त्रियों तथा खगोलविदों के ग्रंथ आदि पर अध्येयताओं ने नव्य प्रकाश डालकर भारतीयों की राष्ट्रीय अस्मिता को जाग्रत किया। उन्हें प्रतीति हुई की भारत की सांस्कृतिक विरासत ग्रीक या रोमन सांस्कृतिक विरासत से जरा भी कम नहीं है। इससे भी उनकी राष्ट्रीय भावना को बल मिला।

अंग्रेजों का जातिगत अभिमान

अंग्रेजों में जातिगत श्रेष्ठता का मिथ्याभिमान आरंभ से ही देखने को मिलता है। शासकों तथा शासन प्रणाली ने उसे प्रोत्साहित किया। कंपनी सरकार को वर्गीय तथा शासकीय श्रेष्ठता की धारणाओं ने भारतीयों को सरकारी पदों से वंचित रखा था। अंग्रेज नौकरशाही की भारतीयों के प्रति नफ़रत के कारण योग्यता के आधार पर भारतीयों को प्रशासन में स्थान नहीं दिया। इतना ही नहीं बल्कि भारत में आये यूरोपियों को एक विशिष्ट अधिकार प्राप्त था कि उनके मुकदमे सिर्फ यूरोपीय न्यायाधीश के समक्ष ही चल सकेंगे।

1857 के स्वातंत्र्य संग्राम के बाद में जातीय गौरव अभिमान तथा अहंकार एवं भारतीयों के प्रति घृणा, तिरस्कार तथा अलगाव में वृद्धि हुई। उन्हें जब भी मौका मिले तब भारतीयों को नीचा दिखलाने का वे कोई मौका छोड़ते न थे। भारतीयों को वे नीचा समझते थे। यूरोपियन क्लबों, होटलों, पार्कों तथा स्नानागरों में भारतीयों के जाने पर प्रतिबंध था। वे गोरी चमड़ी की श्रेष्ठता (White men's burden) प्रदर्शित करने के लिए जाग्रत रहते थे। वे यूरोपियनों के अलावा सभी एशियावासियों को अपने नीचा समझते थे। वे भारतीयों को असभ्य, असंस्कृत तथा जंगली मानते थे। ''गोरों का भारतीयों पर जन्मजात अधिकार होने'' के सिद्धांत का प्रसार-प्रचार करते थे।

इस प्रकार की अपमानजनक परिस्थिति का सामना भारतीयों को बार-बार करना पड़ता था। शासक और शासित के बीच खाई चौड़ी हुई। अंग्रेजों ने भारतीयों के साथ सामाजिक रूप से मिलना-जुलना लगभग बंद कर दिया था। दोनों में परस्पर द्वेष और घृणा का उद्‌भव हुआ। भारतीय भी अंग्रेजों के अत्याचारों और निर्दोषों की हत्याओं को भूले नहीं थे। भारतीयों के गौरव को ठेस लगी और इस कारण उनकी राष्ट्रीयता भी जाग उठी!

भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कॉंग्रेस) की पुरोगामी संस्थाएँ

भारतीय राष्ट्रीय महासभा की स्थापना होने तक भी राजनीतिक क्षेत्र में इससे पहले स्थानीय एवं प्रादेशिक स्तर कतिपय संस्थाएँ इस दिशा में कार्यरत थी। पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण भारत में राष्ट्रवादी, संविधानवादी तथा लोकतंत्रवादी विचारों का पर्याप्त प्रसार हो सका था। परिणाम स्वरूप उन्नीसवीं सदी के आरंभ से ही राजनीतिक, राष्ट्रीय, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण प्रदान करनेवाली संस्थाओं का उदय हुआ था। इन संस्थाओं ने भारतीय राष्ट्रीय महासभा जैसे संगठनों के लिए पूर्व भूमिका बनाई तथा योग्य वातावरण का निर्माण किया था। इंग्लैंड की संसद द्वारा पारित (1820) कानून के अनुसार कोई भी भारतीय न्यायाधीश यूरोपियन तथा

ईसाई आरोपी के विरुद्ध केस की सुनवाई नहीं कर सकेगा अथवा न्यायिक पंच (ज्यूरी) का सदस्य भी नहीं रह सकेगा। इस अन्यायी और अपमानजनक कानून का राजा राममोहन राय ने विरोध किया। उन्होंने इस कानून को रद करने के लिए अर्जी की। हजारों भारतीयों के हस्ताक्षर सहित पत्र ब्रिटिश पार्लियामेंट में प्रस्तुत किया गया किन्तु उसका कोई सकारात्मक परिणाम न आया, वह अन्यायी कानून चालू रहा। सरकार की इस स्वेच्छाचारी नीति का विरोध करने के लिए जाग्रत भारतीयों की किसी राजनीतिक संस्था की जरूरत का ख्याल लोगों के मन में दृढ़ हुआ।

बंगभाषा प्रकाशिका सभा (1836)

बंगाल तथा भारत की यह प्रथम राजनीतिक संस्था थी। इसकी स्थापना (1836) भारतीय प्रजा के संदर्भ में सरकारी नीतियों, प्रशासन की समीक्षा करने के लिए हुई थी। दो वर्ष के काम के बाद इसके सदस्यों को अपनी कमियों का पता चलने पर सरकारी तंत्र के साथ निकट संबंध रखनेवाले तथा उनके सम्मुख प्रस्तुत कर सकने में सक्षम जमींदार वर्ग को यह काम सौंपा गया।

जमीनदार संघ (1838)

बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के जमीनदारों द्वारा द्वारकनाथ ठाकुर (कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पितामह) की प्रेरणा से कोलकाता में 'जमीनदार संघ' की स्थापना (1838) की गई। 'इंग्लिशमैन' अखबार के संपादक डब्ल्यू. सी. हेरिन इस संस्था का संयुक्त मंत्री था। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य जमीनदारों तथा भारतीयों की समस्याओं की प्रस्तुति एवं निराकरण करना था। इसके लिए संघ ने वहाँ की संसद (पार्लियामेंट) में मि. थॉम्पसन नामक एक सांसद की (प्रवक्ता वैतनिक प्रतिनिधि) के रूप में नियुक्ति की जो भारतीय हितों से संबंधित प्रस्तुति कर सके। इस तरह का यह सर्व प्रथम राजनीतिक प्रयास था।

ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन (1851)

ब्रिटेन में 'ब्रिटिश इंडियन सोसायटी' नामक संस्था की स्थापना की गई थी। सरकार द्वारा भारतीयों के प्रति हुए अन्यायों की प्रस्तुति इस संस्था द्वारा की जाती थी। इसी तरह, कोलकाता में बंगाल ब्रिटिश इंडियन सोसायटी नामक एक संस्था स्थापित हुई (ई.स. 1844)। हालांकि इस संस्था में उच्च वर्ग तथा जमीनदार वर्ग लोगों का प्रतिनिधित्व था। इस कारण सामान्य जनता को इसकी प्रवृत्तियों की विशेष जानकारी न थी। इन दोनों संस्थाओं की प्रवृत्ति एक समान होने से इनको मिलाकर 'ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन' नामक नई संस्था बनी (ई.स. 1851)। इस संस्था का स्वरूप राष्ट्रीय स्तर का था। इसकी स्थापना देवेन्द्रनाथ ठाकुर (रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता द्वारकानाथ ठाकुर के सुपुत्र) ने की थी। उन्होंने मुंबई, मद्रास आदि स्थानों पर इसकी शाखाएँ खोली थी। उनके प्रयत्नों से ई.स. 1861 के कानून द्वारा भारतीयों को सर्व प्रथम बार विधान गृह में स्थान दिया गया था।

अन्य संस्थाओं की स्थापना और कार्य

कोलकाता-बंगाल की उपर्युक्त संस्थाओं की तरह मुंबई में 'बॉम्बे एसोसिएशन' (ई.स. 1852), मद्रास में 'मद्रास नेटिव सभा'(ई.स. 1855) और पूना में 'पूना ऐसोसिएशन' (ई.स. 1867) तथा 'सार्वजनिक सभा' (ई.स. 1870) जैसी कतिपय संस्थाएँ स्थापित की गई। इनमें क्रमशः जगन्नाथ शंकर शेठ, दादाभाई नवरोजी, डॉ. भाउदाजी तथा जी. एम. शेट्टी एवं महादेव गोविंद रानडे तथा गोपालकृष्ण गोखले जैसे नेताओं ने महत्त्वपूर्ण काम किए। तत्पश्चात् फिरोजशाह महेता, के. टी. तेलंग और बदरुद्दीन तैयबजी के प्रयासों से मुंबई में 'बॉम्बे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन' (ई.स. 1885) और 'मद्रास नेटिव एसोसिएशन' के स्थान पर 'महाजन सभा' (ई.स. 1884) की शुरुआत हुई। कोलकाता में इंडियन लीग की स्थापना हुई (ई.स. 1875)। इसके प्रमुख नेताओं में 'अमृत बाजार पत्रिका' के मुख्य संपादक शिशिर कुमार घोष, शंभुचंद मुकर्जी, कालीमोहनदास और जोगेशचंद्र दत्त थे। इसका मुख्य उद्देश्य लोगों में राष्ट्रीयता की भावना विकसित करके राजनीतिक शिक्षा देना था।

इन सभी संस्थाओं के उद्देश्य तथा प्रवृत्तियाँ भी उपर्युक्त संस्थाओं के जैसी ही थी। इसलिए जब 'भारतीय राष्ट्रीय महासभा' की स्थापना (ई.स. 1885) हुई तब इनमें से अधिकांश संस्थाएँ अपने कार्यक्षेत्र तथा उद्देश्यों के साथ 'महासभा' में विलीन हो गई।

इंडियन एसोसिएशन (1876)

इंडियन एसोसिएशन की स्थापना कोलकाता में की गई (26 जुलाई, 1876)। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा आनंदमोहन बोस इसके मुख्य नेता थे। इस संस्था में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय मध्यवर्ग के लोगों का बहुमत था। इस संस्था ने राजनीतिक आंदोलन में भाग लिया, विशेष रूप से 'सिविल सर्विसिज़ रज़िट्रेशन' में मुख्य योगदान इसी संस्था का था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की गिरफ्तारी हुई। उसके खिलाफ संस्था ने विभिन्न स्थानों पर विरोध-प्रदर्शन किए। इस संस्था की लगभग साठ शाखाएँ कार्यरत थी। मद्रास में 'महाजन सभा' की स्थापना हुई (16 मई, 1884)। उसके प्रमुख नेता पी. रंगिया नायडु, वी. राघवाचारी और पी. आनंदाचालू थे। संस्था का मुख्य उद्देश्य जनता की भावनाओं का विकास करना था।

इस तरह, (1870-1884 तक) भारत के अलग-अलग प्रांतों में कोई न कोई संस्था कार्यरत थी। लिटन द्वारा आयोजित दिल्ली दरबार में (ई.स. 1877) आये लोगों को देखकर भारतीयों में भी यह विचार पैदा हुआ कि ''अलग-अलग राजनीतिक दलों के लोगों, प्रतिनिधियों को भी वर्ष में एकबार किसी स्थान पर मिलना चाहिए।'' सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के भारत व्यापी प्रवास, रिपन के समय में प्रस्तावित इल्बर्ट बिल ने इस विचार को समर्थन दिया 'इंडियन एसोसिएशन' का वार्षिक अधिवेशन (दिसम्बर, 1883) कोलकाता में हुआ। इसमें 200 प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। इस संस्था के दूसरे अधिवेशन (25 से 27 दिसम्बर, 1885) दरम्यान (जब भारतीय राष्ट्रीय महासभा का प्रथम अधिवेशन मुंबई में होने जा रहा था) पारित किए गए प्रस्ताव भी महासभा के प्रस्तावों जैसे ही थे। परंतु इस संस्था के नेताओं ने जब 'भारतीय राष्ट्रीय महासभा' को अपने अपेक्षित नीति-नियमों के अनुसार काम करते देखा तथा उसे मिली लोक-चाहना देखी तो इस परिषद ने अपनी प्रवृत्तियाँ समेट लीं।

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस और राष्ट्रीय आंदोलन का आरंभिक चरण (1885 से 1905)

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना

सर एलन ऑक्टावियन ह्यूम नामक एक निवृत्त अंग्रेज अधिकारी की प्रेरणा से भारत में 1885 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना हुई। सर ह्यूम वाइसराय की कोंसिल के गृहमंत्री के निजी सचिव थे, उसके पहले वे इटावा के जिला मैजिस्ट्रेट थे (ई.स. 1857)। उस समय उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य की बहुत अच्छी सेवा की थी। फिर भी उस समय उनके मन में यह विचार दृढ़ हुआ कि, ''ब्रिटिश साम्राज्य ऊपर से जितना सुरक्षित दिखता है उतना सुरक्षित नहीं है और भारतीयों में उसके प्रति भारी असंतोष है।'' भारतीयों के असंतोष को व्यक्त करने के लिए यदि कोई संवैधानिक संस्था नहीं होगी तो वह पुनः दावानल के रूप में भभक उठेगी, ऐसा भय उनके मन में उचित ही लग रहा था। सर ह्यूम की इस विचारधारा को तत्कालीन वाइसरॉय डफरिन का साथ, प्रेरणा मिली। भारत के विचारशील लोगों को एक अखिल भारतीय संस्था की आवश्यकता लग ही रही थी।

सर ए. ऑ. ह्यूम

इसलिए दादाभाई नवरोजी, गोपालकृष्ण गोखले, फिरोज़ मेहता, बदरुद्दीन तैयबजी, व्योमेशचंद्र बनर्जी इत्यादि ने ह्यूम के विचारों का स्वागत किया और भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना हुई। भारतीयों की

आकांक्षाओं और शिकायतों को वाणी देने तथा लोगों की माँगों को ब्रिटिश सरकार के समक्ष रखने के लिए ए. ओ. ह्यूम को एक देशव्यापी संस्था की आवश्यकता महसूस हुई थी। इंग्लैंड जाकर उन्होंने ब्रिटिश राजपुरुषों के समक्ष यह विचार रखा और उसमें उन्हें समर्थन मिला। इसलिए भारत लौटकर उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना की।

भारतीय राष्ट्रीय महासभा के कार्य (1885 से 1905 तक)

सर ए. ओ. ह्यूम की प्रेरणा और प्रयासों से पूना सार्वजनिक सभा के आमंत्रण पर पार्वती टेकरी, पेशवा बाग, पूना में अधिवेशन (25 दिसम्बर, 1885) तय किया गया था। परंतु उसी दौरान पूना तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्र में प्लेग की महामारी फैलने से फिरोजशाह मेहता, के. टी. तेलंग और बदरुद्दीन तैयबजी के नेतृत्व में 'मुंबई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन' ने यह बैठक मुंबई के गोवालिया टैंक स्थल पर बुलाई। अंत में 28 दिसम्बर, 1885 को यह बैठक दोपहर लगभग 12:00 बजे गोवालिया टैंक, मुंबई की सर गोकुलदास तेजपाल संस्कृत महाविद्यालय के सांस्कृतिक कक्ष में हुई। उसका अध्यक्ष पद कोलकाता (बंगाल) के नेता व्योमेशचंद्र बनर्जी नामक प्रसिद्ध वकील को सौंपा गया जब कि आजीवन महामंत्री पद पर ए. ओ. ह्यूम को नियुक्त किया गया। इस अधिवेशन में देशभर में से कुल 70 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस अधिवेशन में गुजरात के सर्वश्री दादाभाई नवरोज़ी, सर दिनशा वाच्छा, सर फिरोज़ शाह मेहता इत्यादि नेता भी थे। कुलचार दिन (28 दिसंबर से 31 दिसंबर) तक चले इस अधिवेशन में देश की अनेक समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के बाद कुल नौ प्रस्ताव पारित किए गए। महासभा का दूसरा अधिवेशन कोलकाता में (18 दिसंबर, 1886) को हुआ। उसमें 400 प्रतिनिधि उपस्थित रहे। इसकी अध्यक्षता पारसी सुधारक तथा गुजरात के लोकप्रिय नेता दादाभाई नवरोजी ने की। अपने वक्तव्य में उन्होंने महासभा के प्रस्तावों की ओर सरकार द्वारा दिखाई गयी उदासीनता की निंदा की। स्वागताध्यक्ष का स्थान राजेन्द्रलाल मित्रा ने शोभित किया। इन दोनों अधिवेशन को अपेक्षित सफलता नहीं मिली, फिर भी काँग्रेस के नेताओं ने तीसरे वर्ष (दिसम्बर, 1887 में) मद्रास में प्रसिद्ध मुस्लिम नेता बदरुद्दीन तैयबजी की अध्यक्षता में हुए अधिवेशन उपस्थित रहे। इसमें महासभा का संविधान बनाने का प्रयास हुआ। इस अधिवेशन में देशभर से कुल 607 प्रतिनिधियों ने हाजिरी दी थी।

व्योमेशचंद्र बनर्जी

आरंभ में कांग्रेस ने नरम रुख अपनाया। प्रत्येक प्रस्ताव में ब्रिटिश ताज के प्रति वफादारी प्रदर्शित की जाती थी। प्रस्तावों की भाषा सौम्य, नम्र और विवेकपूर्ण रखी जाती थी। उसमें विधानसभाओं में चुने गए प्रतिनिधियों का बहुमत रखना, प्रांतों तथा केन्द्र में उत्तरदायी सरकार की रचना और न्यायतंत्र को स्वतंत्र करना, भारतीय सेना का जहाँ तक संभव हो उतना भारतीयकरण करना, किसान और मजदूरों की दशा सुधारना, भारत की गरीबी कम करना इत्यादि से संबंधित प्रस्ताव पारित किए गए थे। काँग्रेस ने प्रस्ताव पारित किए किन्तु सरकार पर उसका कोई विशेष प्रभाव न पड़ा।

काँग्रेस का चौथा अधिवेशन इलाहाबाद में करने का निश्चय किया गया था परंतु वह सैन्य-क्षेत्र होने के कारण शांति एवं सुरक्षा के लिए खतरा होने के बहाने इस अधिवेशन को अंतिम समय पर प्रतिबंध लगा दिया गया। ऐसी कठिनाइयों के बीच भी पूर्व निर्धारित समय (दिसम्बर, 1888) पर यह ऐतिहासिक अधिवेश हुआ। इस अधिवेशन की अध्यक्षता ज्यॉर्ज यूल नामक उदारमतवादी एक अंग्रेज व्यापारी ने की थी। यह अधिवेशन भी सफल रहा।

भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस), प्रथम अधिवेशन, मुंबई -1885

तत्पश्चात् (1888) कांग्रेस ने अपनी कार्यपद्धति को मोड़ देकर संवैधानिक मार्ग अपनाने का निर्णय किया और कठोर शब्दों में अपनी माँगों को पेश किया।

इलाहाबाद के बाद, पाँचवाँ अधिवेशन (1889) मुंबई तथा छठा अधिवेशन (1890) कोलकाता में हुआ। जिसमें सरकारी कर्मचारियों को भाग लेना तो दूर रहा ऊपर से प्रेक्षक के रूप में भी उनकी उपस्थिति पर प्रतिबंध लगाया गया। अध्यक्षीय वक्तव्य में फिरोजशाह मेहता ने इसकी आलोचना की। उसके बाद (1891 में) सातवाँ अधिवेशन ऑनरेबल मि.पी. आनंदा चार्लू की अध्यक्षता में नागपुर में तथा उसके बाद (1892) का अधिवेशन व्योमेशचंद्र बनर्जी की अध्यक्षता में इलाहाबाद में हुआ। अब ए. ओ. ह्यूम की विचारधारा में परिवर्तन हुआ था। उन्होंने बताया कि अब तक के अधिवेशन में पारित काँग्रेस के प्रस्तावों की ओर सरकार ने जरा भी ध्यान नहीं दिया है, विशेषकर 1892 के कानून में महासभा के एक भी प्रस्ताव पर ध्यान नहीं दिया गया है। उसे देखते हुए उसका विरोध करने का निर्णय किया गया। किन्तु वैसा न होने पर सर ह्यूम ने महामंत्री पद छोड़ने के लिए कहा। हांलाकि उन्हें कार्यरत रहने के लिए मना लिया गया। इस अधिवेशन के बाद महासभा में उदारवादी अभिगम विकसित हुआ। इन संयोगों में प्रतिवर्ष लाखेक रुपयों का खर्च करने का कोई खास मतलब नहीं रहता। इसलिए महासभा (काँग्रेस) को भारत की अपनी प्रवृत्तियों में कमी करके उसे इंग्लैंड के उदारमतवादी सांसदों तक पहुँचना चाहिए। परंतु नागपुर अधिवेशन में महासभा के अधिवेशनों को पूर्ववत् दृढ़तापूर्वक जारी रखने का निर्णय किया गया।

तत्पश्चात् (ई.स. 1892 से 1905 तक) के समयावधि में कांग्रेस के नरमपंथी नेता अपने ढंग से सक्रिय रहे। ई.स. 1904 के मुंबई में हुए बीसवें और उसके बाद (1905) बनारस में हुए इक्कीसवें अधिवेशन में कोई विशेष महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित नहीं हुए। इन अवधि में नरमपंथी नेताओं की प्रवृत्तियाँ सीमित रहीं।

इसी बीच वाइसरॉय कर्जन द्वारा बंगाल का विभाजन (1905) किये जाने पर उसका देशव्यापी विरोध आरंभ हुआ। महाराजा महेन्द्रचंद्र नांदी तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के प्रयासों से 'बंगभंग' के साथ 'स्वदेशी' आंदोलन जुड़ने पर स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष को नया वेग मिला।

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का द्वितीय चरण (1906-1919)

कांग्रेस के इस द्वितीय चरण में कतिपय महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुई, जैसे कि नरम तथा उग्र पंथियों के बीच का संघर्ष, बंगाल का विभाजन और उसके विरुद्ध हुआ बंगभंग आंदोलन या स्वदेशी आंदोलन, भारत में

सांप्रदायिकता का उदय, होमरूल आंदोलन, भारत तथा विदेशों में क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ तथा सरकार की 'फूट डालो और राज करो' की नीति को मूर्तिमान करनेवाले दो कानून 1909 का मार्ले-मिटों सुधार तथा 1910 का मांटेग्यू-चेम्सफर्ड सुधार। इनके बारे चर्चा यहाँ की जा रही है। 'भारतीय विधायिका कानून-1892' से कोई विशेष संतोष नहीं हुआ था। अब उसकी माँग तथा अपेक्षा बढ़ रही थी। नई पीढ़ी के उग्रपंथी युवकों को पुरानी पेढ़ी के नरमपंथी नेताओं की ढीली नीति पसंद न होने के कारण दोनों में मतभेद बढ़ा।

नरमपंथी-उग्रपंथियों में वैमनस्य

पुरानी पीढ़ी के नेताओं जैसे कि व्योमेशचंद्र बनर्जी, दादाभाई नवरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, गोपालकृष्ण गोखले, सर फिरोजशाह महेता, दिनशा वाच्छा, मदनमोहन मालवीय और रोमेशचंद्र दत्त आदि प्रमुख नरमपंथी नेता थे। अंग्रेज सत्य तथा न्याय में माननेवाले थे इसलिए नरमपंथी नेतृत्व संवैधानिक एवं लोकतांत्रिक पद्धति द्वारा ब्रिटिश शासन की अयोग्य नीति का विरोध करने में विश्वास रखते थे। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में माँगों के बारे में चर्चा और प्रस्ताव पारित करके उसे विनती के रूप में प्रार्थनापत्र वाइसरॉय को भेजा जाता था। अपनी इस कार्यशैली के कारण वे नरमपंथी कहलाए। उन्होंने भारत के शहरी सुशिक्षित मध्यम वर्ग को संगठित करके राष्ट्रीय आंदोलन की पूर्वभूमिका तैयार की। उन्होंने भारतीय प्रजा में स्वशासन, समानता, लोकतंत्र और स्वतंत्रता के विचारों का बीजारोपण किया। फिर भी वे अंग्रेजों के अंध अनुयायी न थे, इसीलिए गोपालकृष्ण गोखले ने अंग्रेजी सरकार द्वारा दी गई 'नाइट' की उपाधि तथा सेक्रेटरी ऑफ द स्टेट फॉर इंडिया की कौंसिल की सदस्यता को भी अस्वीकार किया।

इस तरह, नरमपंथियों द्वारा समयानुरूप नीति अपनाए जाने के बावजूद सरकार पर कुछ भी असर पड़ा ही न था। इससे कांग्रेस में युवा वर्ग का धैर्य समाप्त होने से उग्र और सक्रिय कार्यवाही आरंभ हुई। इस विचारधारा में माननेवाले उग्र या गरमपंथी कहलाए। उग्रपंथ के तीन प्रमुख नेताओं-बाल गंगाधर तिलक, लाला लजपत राय और बिपिन चंद्रपाल (बाल-लाल-पाल) नीचे दिए गए अपने कार्यों से लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक (1856-1920)

लोकमान्य तिलक के रूप में प्रसिद्ध बाल गंगाधर तिलक उग्रपंथ के मुख्य पुरस्कर्ता थे। उनका जन्म 23 जुलाई, 1856 को महाराष्ट्र के रत्नागिरि में हुआ था। उन्होंने बी.ए., एल.एल.बी. की उपाधि प्राप्त की। वे आर्य समाज से अत्यंत प्रभावित थे। अपने विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने 'दी मराठा' (अंग्रेजी) तथा 'केसरी' नामक दो समाचारपत्र शुरु किए थे। ई.स.1890 के मुंबई कांग्रेस अधिवेशन में वे पहली बार शामिल हुए थे। वे राष्ट्रीय आंदोलन को मात्र बुद्धिजीवियों के छोटे-से वर्ग तक सीमित रखने के बजाय लोकव्यापी बनाना चाहते थे, जिससे जाग्रत हो रही विराट जन बल से सरकार की शान ठिकाने ला सकें।

इसके लिए उन्होंने महाराष्ट्र में गणेशोत्सव और छत्रपति शिवाजी महाराज की जयंती उत्सव मनाने शुरू किए, और इनके द्वारा लोगों को एकत्र करके सरकार के जुल्मों के विषय में जाग्रत करने का प्रयत्न किया। 1906 में उन्होंने 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' और 'स्वराज प्राप्ति के बिना हमारा जीवन और धर्म व्यर्थ है।' जैसे नारे दिए। सरकार की आलोचना करने के लिए उन्हें छः वर्ष के लिए सश्रम कारावास की सजा दी गई। उन्हें मांडले जेल में भेज दिया गया। उन्होंने होमरूल लीग की स्थापना (ई.स. 1916) की तथा उसके आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई।

लाला लजपतराय

'शेर-ए-पंजाब' के नाम में प्रसिद्ध लजपतराय का जन्म फिरोजपुर के ढुकड़े नामक गाँव में हुआ था। वे दयानंद सरस्वती के आर्यसमाज से खूब प्रभावित थे। उन्होंने 'दी पंजाबी और दी प्युपिल' जैसे समाचारपत्र शुरू किए। पंजाब के किसान आंदोलन का नेतृत्व करने के बदले उन्हें जेल की सजा दी गई। सायमन

कमीशन का विरोध करते समय पुलिस की लाठी की चोट लगने पर उन्हें अस्पताल में भर्ती किया गया, वहाँ थोड़े दिनों बाद (17 नवम्बर, 1928) को उनका अवसान हुआ।

बिपिनचंद्र पाल

उनका जन्म बंगाल के सिलहट जिले के प्योल गाँव में हुआ था। वे बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय और उनके 'बंगदर्शन' समाचारपत्र से खूब प्रभावित थे। आरंभ में वे ब्रह्मसमाज के संपर्क में आए। उन्होंने 'बंग-भंग' तथा 'स्वदेशी' आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। उन्होंने 'न्यू इंडिया' (साप्ताहिक) तथा 'वंदे मातरम्' समाचार पत्र आरंभ किए। उन्हें भी (ई.स. 1907) में कारावास की सजा भोगनी पड़ी।

बंगाल का विभाजन, 1905

वाइसरॉय कर्जन (1899-1905) द्वारा प्रशासनिक क्षमता बढ़ाने के बहाने विशाल बंगाल प्रांत के दो भाग -बंगाल (राजधानी : ढाका) और पश्चिम बंगाल (राजधानी : कोलकाता) किए गए। एक ही बांग्ला भाषा तथा संस्कृतिवाली प्रजा ने इस विभाजन का सख्त विरोध किया। बंगभंग (ई.स. 1905) के पीछे कर्जन का इरादा समग्र भारत में सर्वाधिक जाग्रत बंगाली प्रजा - हिन्दू और मुस्लिम प्रजा की एकता तोड़ना था।

पश्चिम बंगाल में बिहार और उड़ीसा प्रांत रखे गए, जिसकी कुल आबादी 5 करोड़ 30 लाख थी, जिसमें 4 करोड़ 40 लाख हिन्दू तथा 90 लाख मुस्लिम थे।

नवनिर्मित पूर्व बंगाल में असम प्रदेश और ढाका राजाशाही, चटगाँव इत्यादि प्रदेश रखे गए थे। उसकी कुल आबादी 3 करोड़ 20 लाख थी। जिसमें 1 करोड़ 80 लाख मुस्लिम तथा 1 करोड़ 40 लाख हिंदू थे। इस तरह नए पूर्व बंगाल प्रांत में जान बूझकर मुस्लिम आबादी को बहुमत में रखा गया था ता कि बांग्लाभाषी हिन्दू अल्प संख्यक हो जाएँ।

मात्र बंगाली प्रजा ही नहीं अपितु भारत के अन्य लोग भी यह मानने लगे कि भारत में जिस वेग से राष्ट्रवाद बढ़ रहा है उसे रोकने के लिए ही यह विभाजन किया गया है। इसलिए (16 अक्टूबर, 1905) के दिन जब बंगाल विभाजन अमली बना उस दिन को समग्र बंगाल प्रांत में 'राष्ट्रीय शोक दिवस' के रूप में मनाया गया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपने 'बंगाली' अखबार में 'एक बड़ी और भयंकर राष्ट्रीय आपत्ति' शीर्षक द्वारा प्रजा की आँखें खोल डाली।

स्वदेशी आंदोलन

बंगभंग में (16 अक्टूबर, 1905) सभी विदेश वस्तुओं के बहिष्कार का आंदोलन तथा 'स्वदेशी' माल के उपयोग को प्रोत्साहन करने की घोषणा की गई। इस आंदोलन के तीन प्रमुख लक्षण थे : (1) स्वदेशी माल का उपयोग करना, (2) विदेशी माल का बहिष्कार करना तथा (3) राष्ट्रीय शिक्षा प्राप्त करना। बंगभंग आंदोलन को इन तीनों रूपों में उग्र तथा व्यापाक बनाने हेतु एक संघर्ष समिति की रचना की गई। उस समिति में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, बिपिनचंद्रपाल, रासबिहारी घोष और अरविंद घोष आदि कांग्रेस के अग्रणी नेताओं का समावेश किया गया था। हस्ताक्षर अभियान, सार्वजनिक सभाओं में व्याख्यान, जुलूस और प्रदर्शन आरंभ किए। स्वदेशी माल को प्रोत्साहन देने के लिए विदेशी माल के बहिष्कार का आंदोलन उग्र बना। पूरे एक वर्ष के लिए 'राष्ट्रीय शोक' घोषित किया गया। सरकारी पदों को छोड़ देने की अपील की गई। आंदोलन चलाने के लिए विपुल धनराशि एकत्र की गई। स्वयं सेवक दल की रचना की गई। सभी वर्गों के लोगों का इसमें अभूतपूर्व सहयोग मिला। लोगों ने विदेशी माल का उपयोग न करने की सार्वजनिक प्रतिज्ञा ली। इंग्लैंड के बने कपड़ों तथा अन्य चीज-वस्तुओं को बेचनेवाली दुकानों पर पिकेटिंग किया गया। संघर्ष को और उग्र बनाने के लिए सरकारी अधिकारियों और संघर्ष का विरोध कर रहे लोगों को धोबी, नाई, मोची और

रसाइया आदि की सेवाएँ मिलनी बंद हो गई। उनका सामाजिक बहिष्कार किया गया। लोगों को स्वदेशी की समझ देने के लिए अखबारों में लेख, जुलूस, सार्वजनिक सभाओं और लोकगीतों का सहारा लिया गया। बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास 'आनंदमठ' का गीत 'वंदे मातरम्' घर-घर गूंजने लगा ! सरकार समर्थक समाचारपत्रों ने भी इस राष्ट्रीय आंदोलन का उल्लेख किया।

स्वदेशी आंदोलन से भारत को खूब लाभ मिला, जब कि विदेशीमाल के बहिष्कार के परिणाम स्वरूप इंग्लैंड के व्यापार को भारी घाटा हुआ। उदा. जैसोर, बगुदा, ढाका, आरा, हजारी बाग, नादिया, मालदा तथा वर्धमान जैसे मात्र 8 व्यापारिक केन्द्रों में सितम्बर, 1904 में इंग्लैंड से 76,200 रुपए का आयात हुआ था वह घटकर सितम्बर 1905 में मात्र 9700 रुपए का हो गया ! विदेशी कपड़ा लगभग 3 करोड़ मीटर कम आयात हुआ। 1 करोड़ रुपए का सूत कम आयात हुआ। विदेशी जूतों में 75 प्रतिशत, सिगरेट के आयात में 50 प्रतशित तथा अन्य चीज वस्तुओं के आयात में भी भारी कमी आई। स्पष्ट रूप से यह कमी बहिष्कार तथा स्वदेशी आंदोलन का ही परिणाम थी। प्रेस, सन आदि सरकारी उद्योगों में हड़ताल के कारण ब्रिटिश सरकार को भारी घाटा उठाना पड़ा।

राष्ट्रीय शिक्षा

बंगभंग आंदोलन में विद्यार्थियों ने आगे बढ़कर भाग लिया था। इसके लिए विद्यार्थियों को सामूहिक जुर्माना लगाने से लेकर उनको शाला-कालेजों से निकालने (नाम काटने) तक का दंड भोगना पड़ा। इसलिए बंगाल में राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित किए गए। ई.स. 1907 में बंगाल में 300 राष्ट्रीय प्राथमिक शालाएँ तथा 25 राष्ट्रीय माध्यमिक विद्यालय थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की शांतिनिकेतन विद्यापीठ इस दौरान विकसित हुई थी।

बंगाल के अलावा भारत के अन्य प्रदेशों -पंजाब, मध्यप्रदेश, मुंबई, मद्रास इत्यादि प्रांतों में भी आंदोलन का प्रसार हुआ। गुजरात में भी स्वदेशी संघर्ष की प्रतिध्वनि हुई थी।

मुस्लिम लीग की स्थापना (1906)

मुस्लिम लीग की स्थापना का विचार (ई.स. 1906) शिमला सम्मेलन में निहित था। तत्कालीन वाइसरॉय मिंटो और भारतीय मामलों के वजीर मार्ले ने साथ मिलकर भारत के राष्ट्रवाद को कुचलने की योजना बनाई। मिन्टो के सचिव ने उस समय के अलीगढ़ कॉलेज के प्रिन्सिपल आर्कबॉल्ड से कहा कि, ''यदि सुधार पाने के लिए मुस्लिमों को मिलना हो, उनको अलग मतदाता मंडल की माँग करनी हो, तो वाइसराय मुस्लिम प्रतिनिधिमंडल को खुशी से मिलेंगे।''

प्रिन्सिपल आर्क बॉल्ड ने अलीगढ़ कॉलेज के मंत्री को इस बारे में पत्र लिखा, जिसमें माँगों का ब्योरा तथा आवश्यक सूचन किए थे। पत्र मिलते ही आगाखान के नेतृत्व में मुस्लिमों का एक प्रतिनिधि मंडल शिमला में वाइसरॉय से मिला और अपनी माँगें पेश कीं। हालाँकि उन्होंने सांप्रदायिक माँगे स्वीकार नहीं की, परंतु उस आधार पर अलग मताधिकार की माँग करने के लिए मुस्लिमों को सलाह दी। इस तरह, अलग प्रतिनिधित्व की माँग मुस्लिमों की नहीं, बल्कि अंग्रेजों की नीति का परिणाम थी। मिंटो ने ही मुस्लिमों से सहयोग बनाने की नीति की शुरुआत की, इस कारण उन्हें कुछ लेखक 'मुस्लिम संप्रदायवाद' का पिता कहते हैं। किसी ने तो ऐसा भी लिखा है कि, ''पाकिस्तान के असली सृष्टा मुहमंदअली जिन्ना या रहमत अली नहीं, बल्कि मिंटो ही था।'' एक अलग मुस्लिम संस्था की रचना करने के लिए मुस्लिमों के एक समूह को समझाने में अंग्रेज सफल रहे। परिणाम स्वरूप ई.स. 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। इस संस्था की

स्थापना में मुस्लिमों के धार्मिक प्रमुख आगाखान, ढाका के नवाब समीम उल्लाखाँ, वाइसरॉय मिंटो तथा उसका रहस्यमंत्री डनलॉप स्मिथ ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। (1907) में कराची में उसका ब्योरेवार संविधान बनाया गया। लाहौर अधिवेशन (ई.स. 1908) में उसे मंजूरी दी गई और 'आर इंडिया मुस्लिम लीग' की स्थापना हुई। मुस्लिम बिरादर कांग्रेस के अधिवेशन में उपस्थित न रहें इसलिए ही मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन कांग्रेस अधिवेशन के दिनों में समांतर रूप से आयोजित किए जाते थे।

कांग्रेस का विभाजन-सूरत-1907

भारतीय राष्ट्रीय महासभा द्वारा आयोजित (1905-1906) के अधिवेशनों में नरम तथा गरम (उग्र) विचारसरणी वालों के बीच विचार भिन्नता बढ़ती गई थी। इन संयोगों में 1906 के कोलकाता अधिवेशन में उग्रवादियों ने अध्यक्षता के लिए बाल गंगाधार तिलक का नाम प्रस्तावित किया। जब कि नरम पंथियों ने दादाभाई नवरोजी को अध्यक्ष बनाने का आग्रह रखा। महासभा के इस तेइसवें अधिवेशन का स्थल नागपुर निर्धारित था। परंतु वहाँ उग्रतावादी नेताओं का अधिक प्रभाव था, इसलिए यह अधिवेशन सूरत (27 दिसम्बर, 1907) में आयोजित हुआ। उग्रवादी लाला लजपतराय को अध्यक्ष बनाना चाहते थे जबकि नरमपंथियों ने रासबिहारी घोष का नाम अध्यक्षता के लिए प्रस्तावित किया। उग्रवादियों ने कोलकाता अधिवेशन में पारित प्रस्ताव को चालू रहें इस शर्त पर समर्थन देने की तैयारी दर्शायी किन्तु नरमपंथी ऐसा कोई वचन देने को तैयार न थे। इससे दोनों पक्षों के बीच उग्रता बढ़ी, अंत में यह उग्रता मार-पीट में बदल गई। उग्रतावादी गुट कांग्रेस से अलग हो गए, परिणाम स्वरूप कांग्रेस नरम दल और गरम दल के रूप में दो भागों में बँट गई। सूरत में स्थगित अधिवेशन बाद में मद्रास में (8 दिसंबर, 1908) डॉ. रासबिहारी घोष की अध्यक्षता में हुआ, इसमें नरमपंथी विचारसरणी वालों का प्रभुत्व छाया रहा।

मार्ले-मिंटो एक्ट (1909)

अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के प्रिंसिपल ऑर्क बॉल्ड ने मुस्लिम प्रतिनिधि मंडल से वाइसरॉय के समक्ष मुस्लिमों के लिए माँगें रखवायी। मुस्लिमों की माँग स्वीकार करके भारतीय मामलों के वजीर जॉन मार्ले और वाइसरॉय मिंटो की अध्यक्षता में गढ़ा गया मॉर्ले-मिंटो एक्ट द्वारा मुस्लिमों की लिए अलग मतदाता मंडल दिया गया। भारत के इतिहास में सर्वप्रथम धर्म, जाति या वर्ग के आधार पर अलग मतदान मंडल की स्थापना की गई। उसके कारण भारतीय राजनीति में संप्रदायवाद का विष फैला। इतना ही नहीं उसकी दुहरी तथा अप्रत्यक्ष तिर्यक चुनावप्रथा के कारण केन्द्रीय विधानमंडल और प्राथमिक मतदाताओं के बीच कोई संबंध ही नहीं रह गया। इस बारे में संविधानविद् कनैयालाल माणेकलाल मुन्शी ने उसे 'भारत की विकसित हो रही लोकशाही भावना का खून करनेवाला सुधार' कहा।

बंगाल-विभाजन तथा राजधानी का स्थानांतरण (1911)

बंगभंग आंदोलन की जबरदस्त प्रतिध्वनि ब्रिटिश पार्लियामेंट में सुनाई दी और पार्लियामेंट को पुनर्विचार करके मात्र छः वर्ष बाद (ई.स. 1911) बंगाल का विभाजन रद्द करना पड़ा। भारतीयों की यह एक यादगार जीत थी। एकता और संगठित रहकर हम क्या सिद्ध कर सकते हैं उसका यह प्रत्यक्ष प्रमाण था। बंगभंग ने अपने देश के भावी राष्ट्रीय संघर्ष, भावी इतिहास तथा भावी पीढ़ियों के लिए प्रेरणा तथा बोधपाठ दिया।

भारत की आंतरिक स्थिति को संभालने के इरादे से ब्रिटिश सरकार ने सम्राट ज्यॉर्ज पंचम को भारत के प्रवास पर आमंत्रित करके दिल्ली में भव्य दरबार (12 दिसंबर, 1911) लगाया। इस दरबार में ज्यॉर्ज पंचम के माध्यम से 'बंगभंग' रद्द करने तथा क्रांतिकारी प्रवृत्तियों का केन्द्र बन रहे कोलकाता से राजधानी हटाकर दिल्ली ले

जानी की महत्त्वपूर्ण घोषणा करवाई गई। बंगाल का विभाजन रद्द होने पर सांप्रदायिक मुस्लिमों ने सरकार की कटु आलोचना करके अपनी नाखुशी व्यक्त की, साथ ही यह आक्षेप भी लगाया कि सरकार बहु संख्यक हिन्दुओं के समक्ष झुक गई है।

होमरूल आंदोलन (1916)

उग्रपंथी नेता बाल गंगाधर तिलक को मांडले जेल में रखा गया था। (ई.स. 1908 से 1914) । यहाँ तिलक और उनके साथियों को यह महसूस हुआ कि होम रूल (गृह स्वराज) के लिए आंदोलन करना चाहिए। अतः मुक्त होने पर उन्होंने पूना में होमरूल लीग की स्थापना (28 अप्रैल, 1916) की। तिलक ने घोषित किया : 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर ही रहूँगा।' इस तरह उन्होंने होमरूल आंदोलन शुरू किया। श्रीमती एनी बेसंट ने भी चेन्नई (मद्रास) में होमरूल लीग की स्थापना की (सितम्बर, 1916)। इन दोनों संस्थाओं का उद्देश्य संवैधानिक उपायों से गृह स्वराज प्राप्त करना था। तिलक ने अपने अखबारों 'केसरी' और 'मराठा' में लेख लिखकर तथा व्याख्यान देकर होमरूल के समर्थन में लोकमत तैयार किया। इस दौरान तिलक की 'लोकमान्य' के रूप में प्रशंसा की गई।

एनी बेसंट ने 'द कॉमनविल' साप्ताहिक तथा 'न्यू इंडिया' दैनिक द्वारा होमरूल का प्रचार किया। कांग्रेस, मुस्लिम लीग आदि संस्थाओं ने इस आंदोलन का समर्थन किया। मोतीलाल नेहरू, चितरंजनदास जैसे नेता भी इस आंदोलन में शामिल हुए। सरकार के खिलाफ लिखने के कारण 'द कामनविल' और 'न्यू इंडिया' को बंद करने के लिए विवश किया गया। मद्रास सरकार ने एनी बेसंट को गिरफ्तार करके (जून, 1917) उटकमंड में नजरबंद किया। समग्र देश में एनी बेसंट को मुक्त करने की माँग में सभा-जुलूसों द्वारा जगह-जगह पर विरोध प्रदर्शन हुए। इस कारण सरकार को उन्हें छोड़ देने के लिए विवश होना पड़ा। अंत में (10 अगस्त, 1917) ब्रिटिश सरकार की ओर से भारतीय मामलों के वजीर मोंटेग्यू को घोषित करना पड़ा कि ब्रिटिश शासन का ध्येय प्रशासन में भारतीयों की मात्रा बढ़ाना तथा भारत को एक उत्तरदायी राजतंत्र देना है। इंग्लैंड तथा अमेरिका में भी होमरूल की शाखाएँ शुरू की गई थी।

आत्यंतिक राष्ट्रवाद

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में तीन विचारधाराएँ दिखलाई देती हैं : (1) उदारवादी (नरमपंथी) (2) उग्रतावादी (गरमपंथी) तथा (3) उग्र क्रांतिकारी (आत्यंतिक उग्रतावादी)। जब पहली दो विचारधाराओं के नेता अपने उद्देश्यों को सिद्ध करने में असफल दिखने लगे उस समय भारतीय नवयुवकों का एक वर्ग किसी भी कीमत पर भारत को विदेशी शासन की गुलामी से किसी भी रीति से मुक्त (अधिकांशतः हिंसात्मक) करके आजादी प्राप्त करना चाहता था। उग्र क्रांतिकारी संघर्ष में वे मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए हंसते-हंसते बलिदान के लिए तत्पर थे। वे प्राण दे सकते थे और आजादी की प्राप्ति के लिए दूसरे की जान ले भी सकते थे।

उग्र क्रांतिकारिता का आरंभ कर्जन के शासनकाल से ही हो चुकी थी। 1898 में चाफेकर बंधुओं ने पूना में प्लेग कमिश्नर रेंड तथा उसके सहयोगी एयर्सून का खून किया। उन दोनों भाइयों को फाँसी दी गई। विनायक सावरकर ने पूना में 'अभिनव भारत समाज' नामक क्रांतिकारी संस्था की स्थापना की।

अहमदाबाद में वाइसरॉय मिंटो तथा लेडी मिंटो पर दो बार बम फेंके गए (13 नवम्बर, 1909)। हालाँकि दोनों बार वे बच गए। यह बम पहले रायपुर दरवाजा बाहर तथा बाद में तुरंत ही आस्टोडिया दरवाजा अंदर फेंके गए थे। बम फेंकनेवालों में मोहनलाल कामेश्वर पंड्या (प्याज चोर) और उनके दो साथी पूँजाभाई वकील तथा वसंतराव व्यास थे। सरकार उन्हें अंत तक पकड़ न सकी।

बंगाल में सशस्त्र क्रांतिकारी संगठन का संचालन अरविंद घोष के भाई बारीन्द्र घोष तथा स्वामी विवेकानंद के भाई भूपेन्द्रनाथ दत्त कर रहे थे। बारीन्द्र घोष ने 'अनुशीलन समिति' नामक गुप्त क्रांतिकारी संस्था स्थापित की थी। लेफ्टीनेंट गवर्नर की ट्रेन को बम से उड़ाने का प्रयत्न किया गया (दिसम्बर 1907)। ढाका के मजिस्ट्रेट मि. किंग्जफर्ड पर बम फेंकने के षड्यंत्र के लिए खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी नामक दो बंगाली नवयुवक पकड़े गए (ई.स. 1908) थे। हालाँकि प्रफुल्ल चाकी ने तो उसी जगह ही रिवाल्वर से आत्महत्या कर ली, परंतु खुदीराम बोस पर मुकदमा चलाकर उसे फाँसी पर लटका दिया गया। कोलकाता में बम डायनेमाइट, कारतूस आदि पकड़े गए और इस संबंध में अरविंद घोष, बारीन्द्र घोष, हेमचंद्रदास इत्यादि की गिरफ्तारी हुई। कन्हाई दत्त को फाँसी दी गई। पकड़े गए लोगों में से नरेन्द्र गोसाई वायदा माफ (सरकारी) गवाह बना, परंतु वह जुबानी दे उसके पहले साथियों ने उसे गोलियों से भून डाला। खुदीराम को पकड़नेवाले पुलिस इंस्पेक्टर नंदलाल तथा पब्लिक प्रोक्सीक्यूटर आशुतोष विश्वा को गोलियाँ मारी गई।

मदनलाल धींगरा नामक पंजाबी युवक ने लंडन में ट्राफल्गर स्व-वायर के पास भारत सरकार के राजनैतिक अफसर सर विलियम वायली का दिन दहाड़े खून कर दिया (जुलाई, 1909) । उसे फाँसी दी गई और उसके साथी विनायक सावरकर को कालापानी की सजा दी गई। इस समय (ई.स. 1913 से 1916) दरम्यान क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ अत्यंत वेगवान बनी। बहुत से पंजाबी युवक गवर्नर जरनल हार्डिंग्ज के खून के षड्यंत्र में पकड़े गए। उनमें से चार को फाँसी दी गई। मद्रास तथा पांडेचरी आत्यंतिक क्रांतिकारी प्रवृत्तियों के केन्द्र थे। तिनीवेली में वंची आयर ने डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट आशो का खून किया। इस तरह, बंगाल और महाराष्ट्र के अलावा पंजाब, राजस्थान, बिहार, गुजरात, मद्रास, उड़ीसा आदि प्रांतों में क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ चल रही थीं। यह इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि इन क्रांतिकारियों ने अंधा-धुंध गोलियाँ नहीं चलाई थी, परंतु जिन अंग्रेज अधिकारियों ने भारतीयों पर भारी अत्याचार किये थे उन्हें चुन-चुन कर खत्म करने का प्रयास किया था।

विदेश में उग्र क्रांतिकारी राष्ट्रवादी प्रवृत्तियाँ

भारत में जनमी उग्र क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ भारत के बाहर इंग्लैंड, कनाडा, अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, मलाया, सिंगापुर, अफगानिस्तान (काबुल), रुस इत्यादि देशों तक फैली थीं। इन प्रवृत्तियों में सक्रिय रूप से श्यामजी कृष्ण वर्मा, सरदार सिंह राणा, मैडम भिखाईजी कामा, मदनलाल धींगरा, वीर सावरकर, मौलाना अब्दुल्ला, मौलाना बशीर, चंपक रमण पिल्लै, डॉ. मथुर सिंह, खुदाबख्श जैसे क्रांतिकारी जुड़े हुए थे।

श्यामजी कृष्ण वर्मा गुजरात के कच्छ जिले के मांडवी के निवासी थे। उन्होंने इंग्लैंड क्रांतिकारी प्रवृत्ति शुरू की थी। उन्होंने लंदन में 'इंडियन होमरूल सोसायटी' की स्थापना की (ई.स. 1905)। इसका मुख्य उद्देश्य भारत के लिए स्वशासन प्राप्त करना था। संस्था के प्रचार के लिए उन्होंने 'इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' नामक पत्रिका आरंभ किया। उन्होंने 'इंडियन हाउस' की स्थापना की। मदनलाल धींगरा, विनायक सावरकर और लाला हरदयाल लंदन जाकर श्यामजी कृष्ण वर्मा के साथ जुड़े। मदनलाल धींगरा तथा विनायक सावरकर की प्रवृत्तियों की जानकारी हम पहले देख चुके हैं। लंदन में रहना सुरक्षित न लगने पर श्यामजी पेरिस गए, कुछ समय बाद जिनीवा (स्विट्जरलैंड) गये जहाँ उनका (ई.स. 1930) में अवसान हुआ। उनकी पत्नी भानुमती का भी वहाँ पर ही (अगस्त, 1933) निधन हुआ।

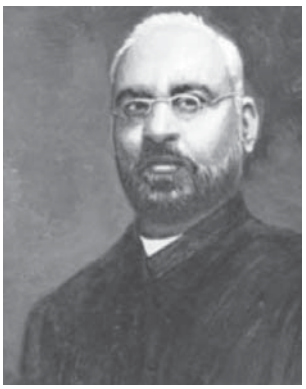

श्यामजी कृष्ण वर्मा

मैडम कामा

मैडम कामा मूल गुजरात के नवसारी की रहनेवाली थीं। वे मुंबई निवासी पारसी सुधारक सोराबजी फरामजी पटेल की पुत्र और रुस्तम कामा की पत्नी थीं। बाद में मैडम भीखाईजी रुस्तम कामा (ई.स. 1902) यूरोप आईं। वे पेरिस में क्रांतिकारी प्रवृत्तियों से जुड़ीं। उन्होंने जर्मनी के स्टुअर्ट गार्ड शहर में आयोजित आंतरराष्ट्रीय समाजवादी परिषद (ई.स. 1907) में भारत का पहला ध्वज लहराया। उन्होंने लंदन इंडियन सोसायटी की मीटिंग (20 फरवरी, 1909) में उस रेशमी ध्वज को श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत भी किया था। उसमें 'स्वदेशी' तथा 'वंदे मातरम्' ये दो शब्द लिखे हुए थे।

सरदारसिंह राणा

सरदार सिंह राणा गुजरात के सौराष्ट्र इलाके के लींबडी के पास कंथारिया गाँव के निवासी थे। वे राज परिवार के थे, लींबड़ी राज्य के हकदार होने के बावजूद लगभग आजादी प्राप्तिक पेरिस और पेरसि में रहकर भारत की आजादी के लिए होनेवाली प्रवृत्तियों से सदैव संलग्न रहे। उनकी ब्रिटिश सरकार विरोधी प्रवृत्तियों से तंग आकार काठियावाड़ के गवर्नर के एजेंट ने ब्रिटिश सरकार की सहमति से एक घोषणापत्र जारी करके (अक्टूबर, 1911) राणा के समस्त राजनीतिक अधिकार-हक छीन लिया था और दूसरे आदेश द्वारा (मई, 1912) लीबड़ी राज्य की उनकी समस्त संपत्ति जब्त कर ली थी, हालाँकि जब्ती के इस आदेश पर अमल उनके पिता रेवाजी रतनसिंह राणा के अवसान के बाद करना था।

1907 में अमेरिका के केलिफोर्निया में 'इंडियन इंडिपेंडेंस लीग' संस्था स्थापित हुई बाद में लाला हरदयाल ने उसका नाम 'गदरपार्टी' रखा। चार भाषाओं में 'गदर' साप्ताहिक शुरु किया गया। इस प्रवृत्ति में तारकनाथ दास और करतार सिंह भी जुड़ गए। जर्मनी में चंपक रमण पिल्लै ने 'हिन्दी राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल' की रचना की। इराक को मुख्य केन्द्र बनाकर वहाँ से भारत पर आक्रमण करने की योजना बनाई, परंतु ब्रिटिश सरकार को उसका पता चल गया।

गदर

अन्य देशों में कमोबेश मात्र में क्रांतिकारी प्रवृत्तियों का प्रसार हुआ। अफगानिस्तान में तो राजा महेन्द्र प्रताप की 'राष्ट्रीय अध्यक्ष' पद पर नियुक्ति करके अंतरिम स्वतंत्र सरकार की रचना की गई, जिसमें बरकतुल्ला, आबिदुल्ला, मौलाना बशीर, शमशेरसिंह, डॉ. मथुर सिंह इत्यादि शामिल थे। इस सरकार ने रुस, तुर्की, ईरान आदि देशों से सहायता पाने की कोशिश की। तुर्की के गवर्नर तथा राष्ट्र प्रमुख अनवर पाशा से भी मिले। 'रेशमी रुमाल' पर लिखा गया 'गालिबनामा' षड्यंत्र तमाम मुस्लिम एकत्रित तथा संगठित होकर ईसाइयों के विरुद्ध युद्ध करें - यह पकड़ा गया! राजा महेन्द्र प्रताप ने अपने हस्ताक्षर वाली सोने की पट्टी रुस के ज़ार को भेजी, जिसमें जार को इंग्लैंड के साथ अपने संबंध तोड़ डालने की बात कही गई थी। रूसी क्रांतिवीर ट्राटस्की ने तो भारतीय क्रांतिकारियों को हर तरह की सहायता देने का वचन दिया था।

बर्मा (म्यानमार) क्रांतिकारी सोहनलाल पाठक ने भारतीय सैनिकों को विद्रोह के लिए प्रेरित किया, तो सिंगापुर में भारतीय सेना को विद्रोह करने के लिए उकसाने में भाई परमानंद का हाथ था। ईरान से मदद प्राप्त करने लिए भी प्रयास किए गए। क्रांतिवीर सूफी अंबाप्रसाद की मृत्यु तो वहाँ पर ही हुई थी। जापान में रासबिहारी घोष ने भी क्रांतिकारी प्रवृत्ति आरंभ की। इस तरह क्रांतिकारी विदेशों में भी अंग्रेजों के खिलाफ़ विरोध की भावना जगाने में प्रेरक बल बने।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन स्थल (1885-1947)

लखनऊ करार (1916)

आल इंडिया मुस्लिम लीग (1913 के बाद) अपना नकारात्मक रुख बदलकर लखनऊ में आयोजित अपने वार्षिक अधिवेशन में घोषित किया कि, ''अन्य कौमों के साथ मिलकर भारत के लिए स्वशासन प्राप्त करना ही उसका उद्देश्य है।'' कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने (1915) में एक साथ अधिवेशन किया था। तत्पश्चात् (ई.स. 1916) लखनऊ में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के अधिवेशन अलग-अलग स्थलों पर हुए। इन दोनों की संकलन समितियों ने मिलकर जो योजना बनाई वह लखनऊ अधिवेशनों में स्वीकृत हुई। कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग द्वारा संयुक्त रूप से स्वीकृत यह प्रस्ताव 'लखनऊ करार' के रूप जाना जाता है। इस कराक के मुताबिक धारासभा में 80 प्रतिशत चुने गए तथा 20 प्रतिशत नियुक्त सदस्य रखने की माँग की गई। कांग्रेस ने मुस्लिम लीग के साथ समाधान करने के लिए पंजाब, बंगाल तथा अन्य राज्यों में मुस्लिमों की आबादी से अधिक बैठकें देना स्वीकार किया। इससे हिन्दू-मुस्लिम एकता का वातावरण निर्मित हुआ। इस करार द्वारा कांग्रेस ने अलग मतदान मंडलों को स्वीकृति दी।

लखनऊ के कांग्रेस अधिवेशन में लोकमान्य तिलक शामिल हुए। अंत में कांग्रेस से अलग हुए उग्रपंथी तथा नरमपंथी गुट एक हो जाने से राष्ट्रवादी आंदोलन को नयी स्फूर्ति मिली।

भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन के इतिहास में 'लखनऊ करार' बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस करार द्वारा कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने राजनीतिक दल के रूप में राष्ट्रहित को महत्त्व दिया। इससे स्वराज-संघर्ष को शक्ति मिली।

मोंटेग्यू घोषणा (अगस्त, 1917)

भारतीय मामलों के वजीर मोंटेग्यू ने सरकार के अंतिम ध्येय के तौर पर भारत को 'सांस्थानिक स्वराज' देने की घोषणा (20 ऑगस्ट, 1917) की। परंतु उसकी कमियों तथा अनिश्चितताओं ने उसे निरर्थक सिद्ध कर दिया। हालाँकी उसके कारण बना कानून यानी मोंटेग्यू-चेम्सफर्ड एक्ट (23 दिसंबर, 1919) (या मोंटे-फर्ड सुधार) पारित हुआ। इस एक्ट में द्विमुखी राज्य पद्धति (Dyarchy) जैसा पहले से असफल हो चुकी (बंगाल में मीरजाफर के समय में अमल की गई) निष्फल योजना का पुनरावर्तन किया गया था, फिर भी वह भारतीय संविधान का महत्त्वपूर्ण एक्ट सिद्ध हुआ।

मोंटेग्यू-चेम्सफर्ड सुधार - 1919

मोंटेग्यू-चेम्सफर्ड सुधार द्वारा विधान सभाओं में प्रत्यक्ष चुनाव का प्रवेश हुआ। उनके अधिकार क्षेत्र में वृद्धि हुई। प्रांतों में अंशत: उत्तरदायी राजतंत्र का प्रयोग किया गया। इस तरह प्रांतीय स्वराज की दिशा में प्रथम कदम उठाया गया। फिर भी गर्वनरों और गर्वनर जनरल की असीमित सत्ताओं, कौमी तथा वर्गीय मतदाता मंडलों और अप्रिय द्विमुखी शासन पद्धति का प्रवेश इत्यादि के कारण मोंटेग्यू-चेम्सफर्ड सुधार स्वीकृत नहीं बन सकता, फिर भी अमृतसर कांग्रेस (1919) ने महात्मा गांधी के आग्रहवश मोंटेग्यू-चेम्सफर्ड सुधार को सहयोग देने के लिए प्रस्ताव पारित किया। इसलिए जवाहरलाल नेहरू अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन को 'प्रथम गांधी कांग्रेस' कहने के लिए प्रेरित हुए। तत्पश्चात् कांग्रेस की प्रवृत्तियों का तृतीय चरण अथवा गांधीयुग के आंदोलन (1920-47) का चरण आरंभ हुआ।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) पाश्चात्य विचारों तथा शिक्षा का भारत पर पड़े प्रभावों को स्पष्ट रूप से समझाइए।

(2) भारत के भव्य अतीत के पुनराविष्कार की प्रक्रिया को समझाइए।

(3) भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) की प्रारंभिक (ई.स. 1885 से 1905) तक कार्यवाहियों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

(4) बंगभंग आंदोलन क्यों आरंभ हुआ? उसके मुख्य परिणामों की चर्चा कीजिए।

(5) भारत में उग्र क्रांतिकारी प्रवृत्तियों की जानकारी दीजिए।

(6) विदेश में भारतीय क्रांतिकारी प्रवृत्तियों का विवरण दीजिए।

2. विभाग 'अ' में समाचार पत्रों के नाम तथा विभाग 'ब' में उन समाचार पत्रों को शुरू करनेवाले का नाम दर्शाया गया है। विभाग 'अ' और 'ब' की जानकारियों के सही जोड़े मिलाइए :

अ	ब
(1) 'केसरी'	(1) बिपिनचंद्र पाल
(2) 'दी पंजाबी'	(2) एनी बेसंट
(3) 'वंदे मातरम्'	(3) अरविंद घोष
(4) 'न्यू इंडिया'	(4) बालगंगाधर तिलक
(5) 'इंडियन सोशियोलॉजिस्ट'	(5) लाला लजपतराय
	(6) श्यामजी कृष्ण वर्मा

3. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) नरमपंथी नेता कौन थे?

(अ) एनी बेसंट (ब) मोतीलाल नेहरू (क) गोपालकृष्ण गोखले (ड) बालगंगाधर तिलक

(2) ''स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।'' - यह सूत्र किसने दिया?

(अ) लाला लजपतराय (ब) बालगंगाधर तिलक

(क) बिपिनचंद्र पाल (ड) गोपालकृष्ण गोखले

(3) सायमन कमीशन का विरोध करते समय पुलिस के लाठीचार्ज से घायल हो जाने से किसकी मृत्यु हुई ?

(अ) बालगंगाधर तिलक (ब) गोपालकृष्ण गोखले

(क) लाला लजपतराय (ड) बिपिनचंद्र पाल

(4) लंदन में 'इंडियन होमरूल सोसायटी' की स्थापना किसने की थी ?

(अ) मदनलाल धींगरा (ब) श्यामजी कृष्ण वर्मा

(क) सावरकर (ड) सरदारसिंह राणा

(5) मोहनलाल कामेश्वर पंड्या (प्याजचोर) ने किस पर बम फेंका था?

(अ) वाइसरॉय मिंटो एवं लेडी मिंटो (ब) न्यायाधीश किंग्सफर्ड

(क) डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट आशो (ड) कर्नल वायली

●

9 स्वराज के लिए संघर्ष (ई.स. 1919-1947)

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में ई.स. 1915 से ई.स. 1947 तक के समय को 'गांधीयुग' कहा जाता है। इस पूरे फलक पर महात्मा गांधी छाए रहे हैं। उनके मूल्यों, विचारों एवं कार्यप्रणाली तथा उनके सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और आर्थिक विचारों का प्रभाव इस समग्र अवधि दरम्यान दिखाई देता है।

ई.स. 1919 और ई.स. 1935 में किए गए संवैधानिक परिवर्तन

प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त होने के बाद ब्रिटिश सरकार ने भारत को मोंटेग्यू चेम्सफर्ड एक्ट दिया। मोंटेग्यू ने भारत को स्वशासन देने की घोषणा की थी (ई.स. 1917) । हालाँकि, इस एक्ट में ऐसा कोई स्वशासन नहीं दिया गया था। उन्होंने इस एक्ट में सिक्खों के लिए अलग मतदाता मंडल दिया था। प्रत्यक्ष चुनाव प्रथा दी और द्विमुखी शासनपद्धति दी। हालांकि उससे भारतीयों को कोई लाभ नहीं हुआ। गांधीजी को प्रतीति हुई कि अंग्रेज वैधानिक दृष्टि से कुछ भी देने को तैयार नहीं हैं।

सविनय कानून भंग आंदोलन (ई.स. 1931) के दरम्यान गांधीजी और इरविन के बीच समझौता होने पर दूसरी गोलमेज परिषद में गांधीजी ने भाग लिया। अंग्रेज सरकार ने इस परिषद में अनुसूचित जाति के लिए अलग मतदाता मंडल देने का आग्रह किया। गांधीजी ने उसका विरोध किया। भारत वापस आने पर गांधीजी की गिरफ्तारी हुई और उन्हें पूना की यरवदा जेल में भेज दिया गया। ब्रिटिश प्रधानमंत्री रामसे मैकडोनाल्ड (ई.स. 1932) ने अपना प्रसिद्ध कौमी निर्णय घोषित किया जिसमें भारतीय विधान मंडलों में अनुसूचित जाति को अलग बैठकें दी गई थी। इस निर्णय के खिलाफ महात्मा गांधीने आमरणांत अनशन शुरू किया। अंत में आंबेडकर के साथ का समझौता होने पर कांग्रेस ने सरकार से भी अधिक बैठकें अनुसूचित जातियों के लिए प्रस्तावित करते हुए कौमी निर्णय का विरोध किया। पुन: एक बार सविनय कानून भंग आंदोलन शुरु होने से ब्रिटिश सरकार मुसीबत में घिर गई। परिणामस्वरूप उसने भावि सुधारों के ब्ल्यू प्रिन्ट-सा श्वेतपत्र जारी किया (ई.स. 1933)। इस श्वेतपत्र के आधार पर प्रांतीय स्वायत्तता कानून बनाया गया जिसमें द्विमुखी शासन पद्धति को केन्द्र में लागू किया गया। प्रांतों को चुने गए प्रतिनिधियों के साथ स्वायत्तता प्रदान की गई। परिणाम स्वरूप ई.स. 1935 के चुनाव में छ: प्रांतों में ई.स. 1937 के चुनाव में छ: प्रांतों में कांग्रेस सरकारें अस्तित्व में आईं। इस एक्ट के अनुसार सूचित समवाय तंत्र की रचना की गई थी। परंतु इसकी सबसे विचित्र बात यह थी की उसमें आधे प्रतिनिधि ब्रिटिश प्रांतों के चुने हुए थे जब कि आधे देशी रियासतों के प्रतिनिधि थे। प्रत्यक्षत: उन्होंने सूचित समवायतंत्र और प्रांतीय स्वायत्तता दी परंतु गवर्नर और गवर्नर जनरल को इतनी विशाल सत्ता (अधिकार) दी गई थी कि वे किसी भी कानून को रद्द कर सकते थे। उन्हें विशेष निषेधाधिकार (वीटो) प्रयोग करने का भी अधिकार दिया गया था।

उपर्युक्त दोनों एक्टों के प्रत्याघाती स्वरूप के बावजूद भारत के संवैधानिक इतिहास में उनका विशेष स्थान है। मोंटफर्ड (1919) एक्ट ने प्रत्यक्ष चुनाव प्रथा की शुरूआत कराई थी तो भारत सरकार अधिनियम (1935) ने भारत को प्रांतीय स्वायत्तता प्रदान की। इसी वर्ष ही रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना हुई। यह दर्शाता है कि भारत आर्थिक स्वतंत्रता की ओर तेजी से गति कर रहा है।

महात्मा गांधीजी और स्वातंत्र्य प्राप्ति आंदोलन, उनके सत्याग्रह तथा अहिंसा के विचार

विश्व में भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम अनोखा है। 20वीं सदी का पूर्वार्ध दुनियाभर में दो विश्वयुद्धों और तानाशाही की दर्दनाक हिंसा से पूर्ण है। ऐसे समय में भारत में सत्य तथा अहिंसा की नींव पर मानव चेतना को मर्यादित करके उसे स्वराज प्राप्ति की ओर ले जाने का महान कार्य भारतमाता के वीर सपूत महात्मा गांधी ने किया।

राष्ट्रपिता एवं बापू के रूप में प्रख्यात मोहनदास करमचंद गांधी का जन्म गुजरात के पोरबंदर में (ई.स. 1869)

गांधीजी

हुआ था। ब्रिटेन की यूनिवर्सिटी से कानून में स्नातक की पदवी प्राप्त करके वे भारत आए। तत्पश्चात् वकालत करने दक्षिण अफ्रीका पहुँचे (1893)। दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद एवं सामाजिक असमानता के विरुद्ध न्याय की उच्च भावना के साथ संघर्ष आरंभ किया। भारत में अस्पृश्यों जैसी हालत दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की थी। उन्हें कोई मानवाधिकार प्राप्त नहीं थी। गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में सत्य और अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह नामक महत्त्वपूर्ण आंदोलन शुरू किया। गांधी हिंसा को कायरता मानते थे। उन्होंने लिखा था 'अहिंसा मानव जाति का धर्म है जब कि हिंसा पशु का धर्म है।'

गांधीजी का दृष्टिकोण इसलिए भी महत्त्वपूर्ण था कि उनके विचार और आचार में कोई अंतर नहीं था। सत्य और अहिंसा मात्र व्याख्यानों और लेखों के लिए नहीं थे, दैनंदनि जीवन के लिए भी थे। गांधीजी को जनता और उसकी संघर्ष-क्षमता पर अटूट विश्वास था। 46 वर्ष की उम्र में जब (ई.स. 1915) वे भारत आए उस समय भारतीयों में उनके प्रति अपार प्रेम की भावना थी। अपने कार्यों द्वारा वे भारत में पर्याप्त परिचित हो चुके थे। उसके बाद (ई.स. 1916 तक) उन्होंने गोपाल कृष्ण गोखले की सलाह से भारत-भ्रमण किया और (ई.स. 1916 में) अहमदाबाद के कोचरब में आश्रम की स्थापना की। उसके बाद अहमदाबाद में ही (ई.स. 1917-18) साबरमती आश्रम की स्थापना की। यहाँ पर उन्होंने सत्य और अहिंसा को व्यावहारिक रूप देने का काम किया। यहाँ से उन्होंने अपने 'सत्य के प्रयोग' आरंभ किए। भारत में आने के बाद गांधीजी ने प्रजा के लिए संघर्ष आरंभ किए। इस प्रकार का पहला सत्याग्रह चंपारन (ई.स. 1917) में किया। चंपारन में नील की खेती करनेवाले किसान 'तीन कठिया' प्रथा का भोग बने थे। उन्हें अपनी जमीन के 3/20 भाग पर अनिवार्य रूप से नील की खेती करनी पड़ती थी और अंग्रेज मालिक तय करें उस भाव पर ही बेचनी पड़ती थी। इससे किसान गरीब तथा बेहाल हो गए गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के बारे में सुनकर चंपारन के किसान नेताओं ने गांधीजी सहायता माँगी और उन्हें वहाँ आने का आमंत्रण दिया। गांधीजी ने वहाँ पहुचकर विस्तृत जाँच की, किसानों का नेतृत्व किया। सरकार ने एक जाँच समिति बनाई और गांधीजी को उसका एक सदस्य बनाया जिससे किसानों की समस्या दूर हुई। भारत में सत्याग्रह का यह प्रथम आंदोलन सफल रहा। इतना ही नहीं गांधीजी ने भारतीय किसानों की भयंकर गरीबी को अत्यंत निकट से देखा और उनके लिए आजीवन कार्य करने का निश्चय किया।

चंपारन सत्याग्रह बाद (ई.स. 1918) अहमदाबाद के मिल मजदूरों और मिल मालिकों के बीच हुए विवाद में दोनों पक्षों के बीच समाधानकारी भूमिका निभाकर उन्होंने मजदूरों को हड़ताल पर जाने की सलाह दी साथ ही हिंसा से दूर रहने के लिए कहा। इतना ही नहीं, उन्होंने यहाँ पर पहलीबार अनशन (उपवास) शस्त्र का उपयोग किया। गांधीजी के अनशन के कारण मिलमालिक नरम पड़े और मजदूरों की मजदूरी बढ़ाने के लिए सहमत हुए।

उन्हीं दिनों (ई.स. 1918) ही गुजरात के खेड़ा जिले के किसानों के प्रश्नों को लेकर गांधीजी ने खेड़ा में सत्याग्रह किया। अतिवृष्टि के कारण फसल नष्ट हो जाने पर भी सरकार पूरे का पूरा लगान वसूल करने के लिए उग्र बनी थी। गांधीजी ने किसानों को तब तक लगान न भरने की सलाह दी जब तक कि लगान में छूट न मिले। खेड़ा में सत्याग्रह के परिणाम स्वरूप सरकार ने जब केवल धनी किसानों से ही लगान चुकाने का आग्रह रखा और गरीब किसानों को लगान में छूट दी तभी यह आंदोलन वापस लिया गया। वल्लभभाई पटेल गांधीजी के प्रखर अनुयायी बने।

गांधीजी के मार्गदर्शन और दर्शन के अनुसार बारडोली (द. गुजरात) में वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में किसान-सत्याग्रह को सफलता प्राप्त (ई.स. 1928) हुई। वल्लभभाई पटेल को सरदार की उपाधि मिली।

रचनात्मक कार्यक्रम, रोलेट एक्ट के खिलाफ आंदोलन

प्रथम विश्वयुद्ध के समय क्रांतिकारियों के विरुद्ध कठोर कानून पारित किए गए थे, जिसमें उनको किसी भी प्रकार के अपराध बिना जेल में बंद कर दिया जाता था और उन पर अत्याचार किया जाता था। भारतीयों

को यह विश्वास था कि युद्ध के बाद सरकार ऐसे कानूनों को वापस ले लेगी। परंतु ऐसे अत्याचारी कानून को मार्च, 1919 में सरकार ने रोलेट एक्ट बनाकर पारित किया इससे भारतीय चौंक गए। इस कानून के अनुसार किसी भी भारतीय पर अदालत में मुकदमा चलाए बिना उसे जेल में बंद किया जा सकता था। रोलेट एक्ट भारतीयों के लिए अत्यंत घृणास्पद था। युद्ध दरम्यान सरकार ने भारतीयों को स्वशासन देने की विश्वास दिया था उसके बदले इस कानून द्वारा लोगों की भावनाओं से खिलवाड़ किया। गांधीजी ने इस एक्ट को 'काला कानून' कहा और उसका विरोध करने के लिए भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम का नेतृत्व अपने हाथ में लिया। उन्होंने एक सत्याग्रह सभा बनाकर (ई.स. 1919) जेल भरो आंदोलन शुरु किया। रोलेट एक्ट के विरुद्ध गांधीजी ने सत्याग्रह शुरु किया।

जलियांवाला बाग हत्याकांड

महात्मा गांधी के रोलेट एक्ट के विरुद्ध किए जा रहे सत्याग्रह को कुचलने के लिए सरकार ने कठोर कदम उठाए। मुंबई, अहमदाबाद, कोलकाता, दिल्ली में सत्याग्रहियों पर गोलियाँ बरसाई गईं। गांधीजीने (6 अप्रैल 1919) राष्ट्रव्यापी हड़ताल का आह्वान किया था। इसमें लोग स्वेच्छा से बड़ी संख्या में जुड़े थे। सरकार ने लोगों के विरोध का सामना करने के लिए धारा-144 लगाई। विशेष रूप से पंजाब की स्थिति इस समय स्फोटक थी। पंजाब के अमृतसर में (13 अप्रैल, 1919) विशाल जनसमूह अपने लोकप्रिय नेताओं डॉ. सैफुद्दीन किचलू और डॉ. सत्यपाल की गिरफ्तारी का विरोध करने के लिए एकत्र हुआ था। जलियांवाला बाग में बैशाखी के त्योहार के उपलक्ष्य में अनेक लोग जमा हुए थे। निहत्थे लोगों के समूह पर अमृतसर के सैन्य कमान्डर जनरल डायर ने गोलियाँ बरसाई। जब तक उनके पास की गोलियाँ खत्म नहीं हुई तब तक गोलीबारी चलती रही। इस गोलीबारी में एक हजार लोगों की मृत्यु हुई और अनेक लोग घायल हुए। इतना ही नहीं पंजाब सरकार ने मार्शल लॉ लगाकर लोगों पर अपार अत्याचार किया। इस घटना ने समग्र भारतवासियों को क्षुब्ध बनाया। समग्र देश में भय का वातावरण छा गया। साम्राज्यवादी शासन का भयंकर विरोध हुआ। इस घटना से व्यथित होकर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'नाइट' की उपाधि लौटा दी।

खिलाफत और असहयोग आंदोलन

प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की जर्मनी के पक्ष में लड़ रहा था। भारतीय मुस्लिम तुर्की के सुलतान को इस्लाम धर्म का धार्मिक प्रमुख-ख़लीफ़ा मानते थे। उनके मतानुसार प्रथम विश्वयुद्ध में पराजित तुर्क के विरुद्ध जो कोई संधि हो उसमें उनके इस्लामिक मुखिया यानी कि ख़लीफा की स्थिति पर कोई आँच नहीं आनी चाहिए। भारती मुस्लिम नेता अलीबंधुओं (मुहम्मद अली और शौकत अली), मौलाना आज़ाद, हकीम अज़मल खाँ और हसरत मुहानी के नेतृत्व में एक खिलाफ़त कमेटी की रचना की गई। उसने ब्रिटेन के खिलाफ़ राष्ट्रव्यापी खिलाफ़त आंदोलन करने का निश्चिय किया। नवम्बर 1919 में दिल्ली में ऑल इंडिया खिलाफ़त सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें यह तय किया गया कि यदि सरकार उनकी माँग न माने तो उसके खिलाफ़ असहयोग किया जाए। उन्होंने कांग्रेस के आंदोलन को समर्थन घोषित किया। गांधीजी और तिलक ने इसे हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने के लिए सुनहरा अवसर मानते हुए खिलाफ़त आंदोलन को समर्थन दिया। उन्होंने खिलाफ़त और पंजाब में हुए अत्याचारों को साथ रखकर ब्रिटिश सरकार के खिलाफ संघर्ष का नेतृत्व किया। सरकार ने रोलेट एक्ट पर विचार करने तथा पंजाब की घटनाओं पर कार्य करने के बदले लोगों पर अत्याचार जारी रखा। इसलिए (जून, 1920) इलाहाबाद में सभी पक्षों ने एक जुट होकर सरकार के खिलाफ आंदोलन करने का निश्चिय किया। अंत में (31 अगस्त, 1920) ख़िलाफ़त आंदोलन ने यह असहयोग आंदोलन शुरु किया।

कांग्रेस ने 1920 के अपने कोलकाता अधिवेशन में असहयोग आंदोलन का प्रस्ताव पारित किया। जब

तक पंजाब के अत्याचारों और ख़िलाफ़त की माँग न मानी जाय तब तक सरकार से असहयोग करने का निश्चय किया गया। गांधीजी ने (दिसम्बर, 1920) नागपुर कांग्रेस में घोषणा की कि ब्रिटिश साम्राज्य का नाश करना प्रत्येक भारतीय का परम कर्तव्य है। नागपुर अधिवेशन में कांग्रेस ने असहयोग आंदोलन का मुसद्दा बनाया। गांधीजी के कारण अब तक ऊपरी वर्ग के साथ काम करनेवाली कांग्रेस का स्वरूप बदला और वह निर्धन लोगों तक यानी कि सामान्य लोगों तक पहुँची। विदेशी शासन से मुक्ति के लिए जो राष्ट्रीय संघर्ष आरंभ हुआ उसमें सामान्य लोगों ने बड़े पैमाने पर भाग लिया। जनता ने गुलाम मनोवृत्ति का त्याग किया। हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित हुई। तत्पश्चात् (ई.स. 1921-22) असहयोग के महत्त्वपूर्ण आंदोलन से देश का बड़ा भाग गूँज उठा। हजारों की संख्या में विद्यार्थियों ने शाला-कॉलेज छोड़कर राष्ट्रीय शिक्षा देनेवाली संस्थाओं में प्रवेश लिया। जामिया-मिलिया-इस्लामिया (राष्ट्रीय मुस्लिम यूनिवर्सिटी) बिहार विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ और गूजरात विद्यापीठ की स्थापना हुई। सैकड़ों वकील अपनी चल रही वकालत छोड़कर स्वातंत्र्य संग्राम में कूद पड़े, इनमें मोतीलाल नेहरू, सरदार पटेल, चिरंजनदास और राजेन्द्रप्रसाद आदि का समावेश होता है। इस आंदोलन में महिलाओं ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उन्होंने अपने कीमती आभूषण स्वातंत्र्य संग्राम के लिए दान में दिए थे।

असहयोग आंदोलन को चलाने के लिए तिलक स्वराज फंड की स्थापना की गई थी। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार और खादी प्रवृत्ति इस आंदोलन के मुख्य तत्त्व थे। कांग्रेस ने इस आंदोलन को समस्त भारतभर में फैलाने का निर्णय किया तो सरकार ने राष्ट्रवादियों की गिरफ्तारी तथा दमन जारी किया। लगभग 3 हजार लोगों को जेल में डाल दिया गया। ब्रिटेन के राजकुमार प्रिंस ऑफ वेल्स इसी समय भारत आये तब उनका भी विरोध किया गया। गांधीजी ने जनता के इस अहिंसक आंदोलन कर न देने का आंदोलन चलानेवाले थे। लगातार बड़ी संख्या में लोग जुड़ रहे थे परंतु संयुक्त प्रांत (उ.प्र.) में गोरखपुर जिले के चौरीचौरा नामक कस्बे में (5 फरवरी, 1922) 3 हजार किसानों पर पुलिस ने गोलियाँ चलाई। इससे गुस्साई भीड़ ने पुलिस स्टेशन पर हमला करके आग लगा दी। जिससे 22 पुलिसकर्मी मारे गए। इस घटना से दु:खी होकर महात्मा गांधी ने बारडोली में (12 फरवरी, 1922) को आंदोलन वापस लेने का निर्णय लिया तथा लोगों को खादी प्रवृत्ति तथा सामाजिक एकता जैसे रचनात्मक कामों में जुट जाने के लिए आह्वान किया। उनके इन निर्णय का विरोध उनके कुछ निकट के साथियों ने भी किया किन्तु गांधीजी अपने निश्चय से न डिगे। सरकार ने गांधीजी पर अराजकता पैदा करने का आरोप लगाकर उनको छ: वर्ष के लिए कारावास में डाल दिया।

क्रांतिकारियों की भूमिका

असहयोग आंदोलन के बाद पुन: एकबार उग्र राष्ट्रवादियों ने क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ आरंभ की। इन क्रांतिकारियों की श्रद्धा समाजवाद में थी और असहयोग आंदोलन की निष्फलता के कारण सक्रिय हुए थे। ई.स. 1924 में उन्होंने सशस्त्र क्रांति के लिए संगठन बनाने हेतु 'हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ' की स्थापना की थी। सरकार ने उनको गिरफ्तार (ई.स. 1925) करके काकोरी केस चलाया। रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाक उल्ला और अन्य दो को फांसी दी गई। (ई.स. 1928) चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में क्रांतिकारियों ने नया संगठन 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ' शुरू किया। वे व्यक्तिगत वीरता और हिंसक प्रवृत्ति से दूर रहते थे। परंतु सायमन कमीशन का विरोध करते समय पंजाब केसरी लाला लजपतराय पर लाठी चार्ज का आदेश देनेवाला ब्रिटिश पुलिस अधिकारी सांडर्स की (17 दिसम्बर, 1927) हत्या कर दी। चंद्रशेखर आजाद और भगतसिंह के क्रांतिकारी संगठन ने अपने राजनीतिक उद्देश्य जनता तक पहुँचाने और ब्रिटिश सरकार को बताने का एक नया ही रास्ता अपनाया। भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने (8 अप्रैल, 1929) केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंका। उनके मतानुसार उनका उद्देश्य किसी की हत्या करना नहीं था परंतु बहरी हो गई ब्रिटिश सरकार को

जतलाना था। इस बम से किसी की हत्या भी नहीं की गई थी और किसी को चोट भी नहीं लगी थी। भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त भाग जाने के बजाय स्वयं पकड़े गए और न्यायालय में अंग्रेज सरकार के विरुद्ध दलीलें करते रहे हालाँकि तीनों को फांसी दी गई।

बंगाल में भी उग्र राष्ट्रवादी क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ एक बार फिर से शुरू हुई। उन्होंने (अप्रैल, 1930) चट गांव सरकारी शस्त्रागार पर छापा मार कर लूट लिया। उसका नेतृत्व सूर्यसेन ने किया था, उनके साथ महिलाओं ने भी भाग लिया था। सरकार ने इस प्रवृत्ति का दमन करने के लिए क्रांतिकारियों को गिरफ्तार किया और उन पर केस चलाया गया। भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को (23 मार्च, 1931) को फांसी दी गई।

यह क्रांतिकारी राष्ट्रवादी आंदोलन महत्त्वपूर्ण था। सूर्यसेन को (ई.स. 1931) पकड़कर फाँसी दी गई। सरकार ने क्रांतिकारी प्रवृत्ति को कठोरता से दबाने के लिए कार्य किया। तदुपरांत कुछ साम्यवादी नेताओं को गिरफ्तार करके उन पर 'मेरठ केस' चलाया गया। इस तरह क्रमशः आंदोलन निरंतर चलता रहा।

सायमन कमीशन और भारतीयों का प्रतिभाव

ब्रिटिश सरकार ने इंडियन स्टेच्यूटर कमीशन की नियुक्ति (नवम्बर-1927) की जो सायमन कमीशन के नाम से पहचाना जाता है। सायमन उसका अध्यक्ष था। इसका उद्देश्य भारत के लिए संवैधानिक सुधार सूचित करना था। हालांकि, सायमन कमीशन के सभी सदस्थ अंग्रेज थे, इस कारण भारतवासियों ने उसका विरोध किया। भारतीयों ने कहा कि स्वराज की योग्यता या अयोग्यता का निर्णय केवल गोरे लोग किस तरह ले सकेंगे। इससे भारतीयों के आत्म सम्मान को ठेस पहुँची है। कांग्रेस, मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा ने सायमन कमिशन का विरोध किया।

सायमन कमीशन के विरोध के साथ-साथ भारतीय जूथों ने संवैधानिक सुधारों की एक योजना बनाकर सायमन कमीशन को उत्तर देने का प्रयत्न किया। परिणाम स्वरूप मोतीलाल नेहरू ने (अगस्त, 1928) प्रसिद्ध 'नेहरू रिपोर्ट' प्रस्तुत किया जो भारतीय संविधान का ब्ल्यू प्रिंट गिना जाता है। दुर्भाग्य से सभी पक्षों ने नेहरू रिपोर्ट स्वीकार नहीं किया। मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा तथा सिक्ख प्रतिनिधि मंडल ने उसका विरोध किया। सायमन कमीशन के मुंबई पहुँचते ही हड़तालें शुरू हुई। 'सायमन गो बेक' के नारों से उसका विरोध किया गया। गांधीजी भी सायमन कमीशन के विरोध से यह समझते थे कि जनता आंदोलन के लिए तैयार है और इस प्रवाह में उन्होंने अपना दूसरा महत्त्वपूर्ण आंदोलन शुरू किया।

सविनय कानूनभंग आंदोलन एवं दांडीयात्रा

जन भावना का सम्मान करते हुए महात्मा गांधी एक महान आंदोलन की ओर मुड़े। दिसम्बर, 1929 में लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसमें कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज को अपना लक्ष्य घोषित किया और 26 जनवरी, 1930 को गणतंत्र दिवस मनाने का निश्चय किया। उससे पहले (31 दिसम्बर, 1929) लाहौर में स्वतंत्र भारत का स्वीकृत तिरंगा ध्वज लहराया गया। प्रति वर्ष 26 जनवरी को प्रजासत्ताक (गणतंत्र) दिन मनाने का प्रस्ताव पारित किया गया। एक सविनय कानून भंग आंदोलन करने का निर्णय भी किया गया। जिसका नेतृत्व महात्मा गांधी को करना था। इस आंदोलन का आरंभ महात्मा गांधी की प्रसिद्ध दांडीयात्रा से होना था। उन्होंने (12 मार्च, 1930 के दिन) अहमदाबाद से अपने 78 साथियों के साथ 375 किमी दूर भगवा-दांडी

दांडीयात्रा

जाकर ब्रिटिश नमक कानून को भंग करने का निश्चय किया। मार्ग में आनेवाले सैकड़ों गाँवों में उनकी सभाएँ हुई। गांधीजी ने (6 अप्रैल, 1930 को) दांडी पहुँचकर समुद्रतट से मुट्ठीभर नमक उठाकर ब्रिटिश सरकार के नमक कानून को तोड़कर इस प्रतीक द्वारा समग्र भारतवासियों को स्वतंत्रता का संदेश दिया। उन्होंने कहा कि 'ब्रिटिश शासन भारतीयों के लिए अभिशाप के समान है। मैं इस शासन प्रणाली को नष्ट करने के मत का हूँ। राजद्रोह यह मेरा धर्म है।' गांधीजी के सविनय कानून भंग के इस कृत्य से समग्र देश में क्रांति की लहर फैल गई। महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, पूर्वी भारत की प्रजा ने जंगल तथा चौकीदारी कानून को तोड़ा। प्रजा ने हड़ताल, प्रदर्शन तथा विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य किए। लाखों भारतीय इस सत्याग्रह में जुड़े। किसानों ने कर भरने से इनकार किया। हजारों स्त्रियों ने इस आंदोलन में भाग लेकर विदेशी वस्त्रों तथा शराब बेचनेवाली दुकानों पर पिकेटिंग किया।

यह आंदोलन भारत के उत्तर-पश्चिम के सुदूर भागों तक पहुँचा था। 'सरहदी गांधी' के रूप में प्रसिद्ध खान अब्दुल गफ्फार खान के नेतृत्व में 'खुदाई खिदमतगार' नामक संगठन खड़ा हुआ। वे लाल कमीजधारी कहलाते थे। वे अहिंसक सत्याग्रह में विश्वास करते थे। पेशावर में गढ़वाली रेजीमेंट के कमांडर चंद्रसिंह गढ़वाली तथा अन्य सैनिकों ने इन अहिंसक क्रांतिकारियों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने उनका कोर्ट मार्शल करके उन्हें आजीवन कारावास की सजा दी। इस घटना ने यह सिद्ध कर दिया कि गांधीजी के आदर्श और राष्ट्रवाद की भावना उस भारतीय सेना तक फैल चुकी है जो ब्रिटिश शासन का मुख्य स्तंभ था। इस तरह आंदोलन देशव्यापी बना। नागालैंड में रानी गिडालु ने मात्रा 13 वर्ष की उम्र में गांधीजी के आंदोलन में भाग लेने के लिए ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह किया। रानी गिडालु को गिरफ्तार कर उन्हें आजीवन कैद की सजा की गई। ई.स. 1947 में देश को स्वतंत्रता मिलने के बाद रानी को मुक्ति मिली। जवाहरलाल नेहरू ने लिखा कि एक दिन ऐसा आएगा जब भारत उन्हें याद करेगा, उनका सम्मान करेगा। सरकार ने आंदोलनकारियों पर भयंकर अत्याचार किए। गांधीजी सहित 90 हजार से अधिक आंदोलन कारियों को पकड़ा गया। कांग्रेस पर प्रतिबंध लगा दिया गया। समाचारों पर प्रतिबंध लाद दिया गया। विभिन्न स्थानों पर 110 से अधिक लोग गोलीबारी में मारे गए। तत्पश्चात् (ई.स. 1930) में लंदन में गोलमेज परिषद आयोजित की गई। जिसका आशय सायमन कमीशन की रिपोर्ट पर विचार करना था, परंतु कांग्रेस ने उसका विरोध किया। अंत में वाइसरॉय इर्विन और गांधीजी के बीच (मार्च, 1931) करार हुआ और गांधीजी सविनय कानून भंग आंदोलन को स्थगित करके गोलमेल परिषद में भाग लेने लंदन गए। हालाँकि गांधीजी की माँग सरकार ने स्वीकार नहीं की और भारतीयों को कोई अधिकार न मिलने से गांधीजी वापस आए। पुनः एक बार आंदोलन शुरू किया गया। उत्तर भारत में जवाहरलाल नेहरू ने इस आंदोलन का नेतृत्व किया। फिर से सरकारी दमन आरंभ हुआ और धीरे-धीरे आंदोलन ठंडा पड़ गया।

नमक सत्याग्रह

दांडी के साथ ही देशभर में नमक सत्याग्रह आरंभ हुए। गुजरात के धरासणा में गांधीजी ने सत्याग्रह करने की घोषणा की। उनकी गिरफ्तारी (5 मई, 1930) होने पर नमक सत्याग्रह का नेतृत्व अब्बास तैयबजी को मिला। हालाँकि उनकी भी गिरफ्तारी हुई और सत्याग्रह का नेतृत्व अंत में सरोजिनी नायडू ने सँभाला। धरासणा के अलावा सूरज कराडी और वडाला में भी नमक सत्याग्रह हुए। उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश तथा बिहार के अनेक भागों में लोगों ने अपने घर पर ही नमक बनाकर नमक कानून को व्यापक रूप से तोड़ा।

कांग्रेसी मंत्रिमंडलों की रचना

भारत सरकार अधिनियम-1935 के अनुसार प्रांतों को स्वायत्तता प्रदान की गई। इन कानून के अनुसार हुए चुनावों में जनता ने कांग्रेस को बहुमत दिया। 11 में से 7 प्रांतों में कांग्रेस मंत्रीमंडल बने। दो प्रांतों में कांग्रेस

अन्य दलों के समर्थन से सरकार बना सकी। मात्र पंजाब और बंगाल में गैर कांग्रेसी सरकार बनी। पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी तथा बंगाल में कृषक प्रजा पार्टी और मुस्लिम लीग ने साथ मिलकर सरकार बनाई थी।

कांग्रेसी मंत्रीमंडलों ने भारत में ब्रिटिश शासनतंत्र के साम्राज्यवादी स्वरूप को बदलने का काम किया। हालाँकि उन्हें बहुत कम अधिकार मिले थे फिर भी उन्होंने ईमानदारी से काम किए। उन्होंने मजदूरों, किसानों और नागरिकों के हित में अच्छे काम किए। पुलिस के अधिकारों में कटौती की। खेत मजूरों के लिए कृषि कानून बनाए। मजदूरों की मजदूरी दर में वृद्धि की। नशाबंदी तथा शराबबंदी लागू किया। अनुसूचित जातियों के लिए कल्याण कार्य किए। प्राथमिक और उच्चशिक्षा, टेक्निकल शिक्षा तथा लोगों के स्वास्थ्य पर पर्याप्त ध्यान दिया। खादी तथा ग्रामोद्योग, हस्त-उद्योगों को प्रोत्साहन दिया। सांप्रदायिक दंगों के खिलाफ महत्त्वपूर्ण कार्रवाई की। लोगों को लगा कि उनकी अपनी सरकार चल रही है। ई.स. 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू होने पर ब्रिटेन द्वारा भारत को युद्ध में शामिल कर लेने के विरोध में कांग्रेसी मंत्रीमंडलों ने सामूहिक रूप से त्यागपत्र दे दिए।

भारत छोड़ो आंदोलन -1942

जैसा कि हमने अभी देखा कि ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय कांग्रेस या केन्द्रीय असेम्बली के सदस्यों के साथ विचार-विमर्श किये बिना ही भारत को युद्ध में जोड़ दिया, इसका कांग्रेस ने विरोध किया। कांग्रेस ने कहा कि एक गुलाम देश दूसरे के मुक्ति संघर्ष में किस तरह से भाग ले सकता है। पहले भारत को स्वतंत्रता देनी चाहिए तभी वह इस युद्ध में भाग ले सकता है। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की माँगों को अस्वीकार करते हुए अपने निर्णय को ज्यों का त्यों अपरिवर्तित रखा। उसके बाद (अक्टूबर-1940) गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आरंभ किया। सरकार ने लगभग 25 हजार से अधिक सत्याग्रहियों को पकड़कर जेल में डाल दिया। व्यक्तिगत सत्याग्रह के पहले सत्याग्रही विनोबा भावे थे। जापान द्वारा इंडोनेशिया के रास्ते बर्मा (म्यानमार) पर अधिकार कर लेने (ई.स. 1941) पर महायुद्ध भारत की सीमा तक आ पहुँचा। ऐसे संयोगों में युद्ध में भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने स्टेफर्ड क्रिप्स के नेतृत्व में क्रिप्स मिशन (ई.स. 1942) भारत भेजा। उसने घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार बहुत जल्द ही भारतीयों को स्वसासन प्रदान करेगी। उसने कांग्रेस की इस माँग को नामूंजर कर दिया कि भारत को तत्काल स्वतंत्रता दी जाए। गांधीजी ने क्रिप्स प्रस्ताव को **''पोस्ट डेटेड चेक (बीती हुई तारीख का चेक)''** कहा। कांग्रेस के साथ-साथ मुस्लिम लीग ने भी उसका विरोध किया। युद्ध के दरम्यान भारत में भयंकर अकाल पड़ा था और मँहगाई भी बढ़ गई थी। जिससे प्रजा में लगातार असंतोष बढ़ता गया। इन सब स्थितियों ने गांधीजी को एक महान बैठक मुंबई में हुई जिसमें भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित हुआ। (8 अगस्त, 1942) और महात्मा गांधी के नेतृत्व में आंदोलन करना निश्चित हुआ। उसी रात कांग्रेस पदाधिकारियों को संबोधित करते हुए महात्मा गांधी ने कहा, 'मैं तो चाहता हूँ कि सुबह निकलने से पहले हमें आजादी मिल जाय। मैं पूर्ण स्वराज से कम कुछ भी स्वीकार नहीं करूं, करो या मरो।' या तो अपनी पराधीनता को हटा दूँगा या मृत्यु पाऊँगा। इसलिए (9 अगस्त, 1942) गांधीजी की गिरफ्तारी हुई, परंतु पूरे दशभर में एक स्वयं स्फूर्त महान आंदोलन शुरू हो चुका था। गांधीजी ने कहा था कि अब तो आप ही स्वयं अपने नेता हैं। इस तरह यह आंदोलन नेताविहीन और संगठन विहीन जनता का आंदोलन था, जो स्वयंचालित था। कारखानों, विद्यालयों, कॉलेजों में हड़तालें हुईं। सरकार ने लाठी चार्ज और गोलीबार किया। परिणाम स्वरूप जनता ने भी पुलिस स्टेशन, रेलवे स्टेशन, पोस्ट ऑफिस जैसे ब्रिटिश प्रतीकों पर हमला किया। टेलीफोन के खंभ उखाड़े गए, तार काट डाले गए। रेलवे की पट्टियाँ उखाड़ी गई सरकारी इमारतों में आग लगाई गई। मद्रास और बंगाल में परिस्थिति काबू के बाहर हो गई थी। बिहार, पश्चिम बंगाल, संयुक्त प्रांत, तमिलनाडु, उड़ीसा, आंध्र तथा महाराष्ट्र के अधिकांश भाषणों में आंदोलन का प्रसार हुआ। इतना ही नहीं बहुत से स्थानों पर ब्रिटिश शासन का अंत हो गया तथा स्थानीय सरकारों की स्थापना हुई। उत्तर प्रदेश के बलिया, बंगाल के मिदनापुर, मुंबई के सतारा तथा गुजरात के अहमदाबाद में

आंदोलनकारियों ने समांतर सरकार की स्थापना की। किसानों, मजदूरों तथा विद्यार्थियों ने 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। सरकार ने आंदोलन को कुचलने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी। प्रेस पर प्रतिबंध लगाया गया था। 10 हजार से ज्यादा लोग गोलियों से मारे गए थे। ई.स. 1857 के विद्रोह के बाद यह सबसे बड़ा दमनकारी कार्य था। इस आंदोलन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता भूगर्भ संचार व्यवस्था थी। मुंबई में उषा मेहता इस आंदोलन का भूगर्भ रेडियो स्टेशन सँभाल रही थी। इस आंदोलन में अरुणा आसफ अली और इंदिरा गांधी ने भी महत्त्वपूर्ण कार्य किए थे। इस आंदोलन ने यह प्रतीति करा दी कि भारतीय जनता की इच्छा के विरुद्ध अंग्रेज ज्यादा दिनों तक भारत में शासन नहीं कर सकेंगे।

आजाद हिन्द फौज और सुभाषचंद्र बोस

ई.स. 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के साथ साथ भारतीयों की बहादुरी तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के जोश को उजागिर करनेवाला महत्त्वपूर्ण आंदोलन था । आजाद हिंद फ़ौज का सुभाषचंद्र बोस के नेतृत्व में चलाए गए इस आंदोलन में भारत में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया। सुभाषचंद्र बोस ने कांग्रेस छोड़कर फॉरवर्ड ब्लॉक की स्थापना (ई.स. 1939) की थी। सरकार ने उन्हें गिरफ्तार करके नजरबंद रखा था। योग्य अवसर मिलते ही (ई.स.-1941) सुभाषचंद्र बोस नज़र कैद न निकल कर देश से बाहर चले गए। वे जर्मनी पहुँचे और भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए मदद मांगी। वहाँ से (फरवरी 1943) जापान की सहायता प्राप्त करने के लिए वे जापान गए। भारत की आजादी के लिए सैन्य दल बनाने हेतु सिंगापुर में रासबिहारी बोस की सहायता से आज़ाद हिंद फ़ौज का नेतृत्व किया। जनरल मोहनसिंह ने भारतीय सैनिकों की एक टुकड़ी तैयार करके आज़ाद हिंद फ़ौज की कार्यवाही शुरू की। वे बर्मा से भारत पर आक्रमण करने के मत के थे। हालाँकि, द्वितीय विश्वयुद्ध में (ई.स. 1944-45) जापान की पराजय होने से आज़ाद हिन्द फ़ौज की हार हुई। सुभाषचंद्र बोस टोकियो जाते समय रास्ते में विमान दुर्घटना में मारे गए। (यद्यपि आज भी यह अनसुलझा रहस्य है।) सरकार ने आज़ाद हिन्द फ़ौज के प्रमुख सेनानियों जनरल शाहनवाज़, जनरल गुरुदयाल सिंह ढिल्लो और जनरल प्रेम सहगल आदि पर लाल किले में मुकदमा चलाया गया। जिसके खिलाफ़ भारतीयों ने प्रदर्शन आरंभ किया। अंत में आजाद हिन्द फौज़ के अधिकारियों को छोड़ देना पड़ा।

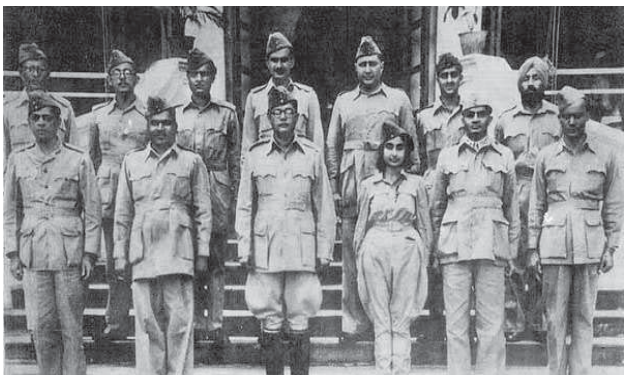

सुभाषचंद्र बोस और आजाद हिन्द फ़ौज

भारत में सांप्रदायिकता का उद्‌भव, प्रसार एवं भारत विभाजन

ई.स. 1857 के स्वातंत्र्य संग्राम के बाद अंग्रेजों ने फूट डालो और राज करो की उक्ति सच साबित करने के लिए मुस्लिमों को अपने पक्ष में लेना आरंभ किया। 19वीं सदी के अंत आते-आते भारत में सांप्रदायिकता का उद्‌भव हो चुका था जो स्वतंत्रता संग्राम के लिए सबसे बड़ा खतरा था। सांप्रदायिकता एक विचारधारा है। उसके अनुसार भारत में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख एवं ईसाई अलग-अलग विशिष्ट समुदाय हैं जिनके हित भी अलग हैं। भारतीय राष्ट्र नामक कोई चीज अस्तित्व में है ही नहीं। भारत में सांप्रदायिकता का उदय ब्रिटिश सरकार की नीतियों से हुआ। उन्होंने मुस्लिमों को अलग धर्म तथा जाति का दर्जा हिन्दुओं से विलग करने की वृत्ति का पोषण किया। इस प्रवृत्ति में सैयद अहमद खाँ महत्त्वपूर्ण थे। वे मानते थे कि मुसलमानों के राष्ट्रीय हित हिन्दुओं से भिन्न हैं। अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी उनके इन विचारों को पोषित

करने तथा विकसित करने का काम करती थी। ई.स. 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के समय ही उन्होंने उसका विरोध किया था। वे मानते थे कि ब्रिटिश शासन समाप्त होने पर बहुसंख्यक हिन्दुओं के हाथ में शासन आयेगा और वे मुस्लिमों को हानि पहुँचायेंगे। हालाँकि कोमवाद के उदय के लिए मुसलमानों में अशिक्षा तथा अज्ञान अधिक जवाबदार थे। 19 वीं सदी के प्रारंभ में ही हिन्दू पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के साथ जुड़े जब कि मुस्लिम अशिक्षित रहे। सरकारी नौकरियों, व्यापार-वाणिज्य की प्रवृत्तियों और उद्योगों में भी वे हिन्दुओं की अपेक्षा बहुत पिछड़े हुए थे। इन कारणों से वे असुरक्षित अनुभव कर रहे थे। यह प्रवृत्ति उस समय चरमसीमा पर पहुँची जब शिक्षित मुस्लिमों, नवाब तथा जमीनदारों ने जनाब आगाखान, ढाका के मोहसिन-उल-मुल्क के नेतृत्व में आल इंडिया मुस्लिम लीग की स्थापना की। यह गुट सांप्रदायिक तथा रूढ़िवादी राजनीतिक संगठन के रूप में काम करता था। उन्होंने ब्रिटिश संस्थानवाद का विरोध करने के बजाय बंगाल-विभाजन का समर्थन किया और सरकारी नौकरियों में आरक्षण प्रथा दाखिल करने की माँग की। ई.स. 1909 के कानून में उन्हें अलग मतदाता मंडल दिया गया और विदेशी शासन ने उन्हें और अधिक कट्टर बनाया। राष्ट्रवादी आंदोलन से दूर रहे। मुस्लिम लीग के कार्यों से देशभक्त मुस्लिम विचलित हुए। अनेक राष्ट्रवादी मुस्लिमों ने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लिया। मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद ऐस ही एक सहिष्णु तथा राष्ट्रवादी मुस्लिम थे। हालाँकि धीरे-धीरे मुस्लिमलीग शक्तिशाली बनती जा रही थी। इसी दौरान (ई.स. 1909) पंजाब में हिंदू महासभा की स्थापना हुई। उन्होंने पहले हिन्दू फिर बाद में भारतीय का नारा दिया। उस समय (ई.स. 1915) कासिम बाजार के महाराजा के नेतृत्व में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा नामक संगठन बना। परिणाम स्वरूप हिन्दुओं और मुस्लिमों के बीच खाई चौड़ी होती चली गई। ई.स. 1935 के एक्ट के अनुसार हुए चुनावों में कांग्रेस को बहुमत मिला परंतु वह मुस्लिमों के लिए पर्याप्त बैठकें जीत न सकी। मुस्लिमों के लिए निर्धारित 482 में से कांग्रेस को मात्र 26 बैठकें मिली। हिन्दू महासभा की भी पराजय हुई। कांग्रेस के जमीनदारों के खिलाफ कार्य करने के कारण मुस्लिम जमीनदार उससे विमुख हुए। परिणामस्वरूप, सांप्रदायिक पक्ष मजबूत बने। जिन्ना, कांग्रेस के विरोधी बनते गए (ई.स. 1922 के बाद)। वे और अधिक कट्टर बनते गए। उन्होंने कहा, 'हिन्दू और मुसलमान दो अलग अलग राष्ट्र हैं।' वे कभी एक साथ रह ही नहीं सकते। मुस्लिम लीग ने एक प्रस्ताव पारित करके स्वतंत्रता मिलने पर देश का बँटवारा करके पाकिस्तान नामक एक अलग राष्ट्र देने की माँग (ई.स. 1940) की।

हिन्दू महासभा जैसे हिन्दू संगठन भी मुस्लिग लीग की तरह ही सांप्रदायिक बनते जा रहे थे। उन्होंने भी द्वि राज्य का सिद्धांत स्वीकार किया। इस तरह दोनों पक्ष सांप्रदायिकता को स्वीकार रहे। इस कारण दोनों के बीच घर्षण बढ़ा। असहयोग आंदोलन तथा आर्यसमाज के 'शुद्धि' आंदोलन के बाद हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक दंगे हुए। स्वातंत्र्य आंदोलन इन दोनों सांप्रदायिक शक्तियों का विरोध करता रहा परंतु वह उसे रोकने में सफल नहीं हुआ। ई.स. 1937 से ई.स. 1939 तक कांग्रेस नेताओं और जिन्ना के बीच अनेक मुलाकातें हुईं परंतु उसका कोई सुखद परिणाम नहीं आया। ई.स. 1946-47 की अवधि में हिन्दुओं और मुस्लिमों के बीच की खाई और अधिक चौड़ी हुई। केबिनेट मिशन के आगमन (ई.स. 1946) के बाद मुस्लिम लीग ने सीधी कार्रवाई दिवस मनाना आरंभ किया। परिणाम स्वरूप भारत में बड़े पैमाने पर कौमी दंगे आरंभ हो गए, विशेष रूप से पूर्व बंगाल के नोआखली में बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक दंगों का तांडव आरंभ हुआ। हजारों निर्दोषों की हत्या हुई। महात्मा गांधी ने वहाँ जाकर स्वयं परिस्थिति को सँभालने का प्रयत्न किया। माउंट बेटन की 3 जून की योजना में अंततः मुस्लिम लीग की माँग मान ली गई और स्वतंत्रता के समय भारत का विभाजन हुआ।

नव स्वतंत्र भारत और उसके सम्मुख तात्कालिक समस्याएँ

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर भारतीय स्वाधीनता संघर्ष में एक नया ही मोड़ आया। युद्ध के कारण विश्व स्तर पर शक्ति-संतुलन में परिवर्तन हुआ। अमेरिका तथा सोवियत रूस विश्व के महासत्ताओं के रूप में उदय हुआ। ये दोनों राष्ट्र विश्व को संस्थानवाद और साम्राज्यवाद में से मुक्त करने के मत के थे। युद्ध में विजयी बनने के बावजूद ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति डाँवाडोल हो चुकी थी। इतना ही नहीं द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद हुए चुनावों में कजर्वेटिक (रूढ़िचुस्त) पार्टी की हार हुई और लेबर (मजदूर) पार्टी की सरकार बनी थी। मुंबई में भारतीय नौसैना ने विद्रोह किया (ई.स. 1946) । इसलिए ब्रिटिश सरकार को लगा कि सेना भी क्रमश: उनके हाथ से निकलती जा रही है। पुलिस तथा सरकारी कर्मचारी भी स्वतंत्रता आंदोलन का समर्थन कर रहे थे। इसी समय देशी रियासतों में भी बड़े पैमाने पर आंदोलन आरंभ हो चुके थे। इतना ही नहीं ब्रिटिश भारत में भी हड़तालें शुरु हो चुकी थी। उस समय (22 फरवरी, 1946) मुंबई में बड़े पैमाने पर हड़ताल हुई जिसमें 250 से अधिक लोग मारे गए थे तो दक्षिण भारत में रेल मजदूरों की भारी हड़ताल हुई। इन सब बातों को ध्यान में लेकर सरकार ने कैबिनेट मिशन (ई.स. 1946) भारत भेजा। जिसका काम भारत को शासन सौंपना था। उसके एक प्रस्ताव के अनुसार भारतीय अपना संविधान तैयार करें इसके सिवा उसकी बाकी माँगों को सभी दलों ने अस्वीकार कर दिया। इस योजना के अंतर्गत जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में अंतरिम मंत्रिमल बनाया गया। (सितम्बर, 1947) जिसमें मुस्लिम लीग भी शामिल थी।

अंत में ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लेमेंट एटली ने घोषणा की (20 फरवरी, 1947) कि ब्रिटेन जून 1948 तक भारत पर से अपना शासन छोड़ देगा। एटली की इस घोषणा के बाद मुस्लिम लीग अधिक आक्रामक बनी। समग्र देश में सांप्रदायिक दंग हुए। मार्च-1947 में माउंटबेटन भारत के वाइसरॉय नियुक्त हुए। उन्होंने इंग्लैंड की सरकार तथा भारत के अलग-अलग पक्षों के साथ बातचीत करके (3 जून 1947) अपनी योजना घोषित की। तदनुसार 15 अगस्त, 1947 को एक साथ दो स्वतंत्र राज्यों-भारत तथा पाकिस्तान का जन्म हुआ। भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने विभाजन को स्वीकार किया। 14 अगस्त, 1947 को संविधान सभा में व्याख्यान देते समय कहा था कि जब समग्र विश्व सो रहा है भारत जीवन तथा स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होगा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही भारत के समक्ष अनेक समस्याएँ मुँह बाए खड़ी थीं। लगभग 562 देशी रियासतें जो स्वतंत्र रहना चाहती थी भारत के लिए बड़ी आफत थी। सरदार पटेल ने कहा था कि यदि देशी रियासतों के बारे में योग्य निर्णय नहीं लिया जाएगा तो भारत की स्वतंत्रता देशी रियासतों पिछले दरवाजे से निकल जाएगी। दूसरी ओर भारत और पाकिस्तान जैसे दो भाग होने पर भारतीय प्रजा का स्थलांतर आरंभ हुआ जो बहुत बड़ी समस्या बना। पंजाब तथा बंगाल की स्थिति विस्फोटक बनी। इस समस्या ने हिन्दू-मुस्लिम सांप्रदायिक दंगे भड़काए। खुशवंत सिंह जैसे समर्थ साहित्यकार द्वारा रचित पुस्तक 'ट्रेन टू पाकिस्तान' में ऐसी घटनाओं का हृदयद्रावक वर्णन है। 200 वर्ष के अंग्रेजी शासन ने भारत का भयंकर आर्थिक शोषण किया था। स्वतंत्र भारत के समक्ष निरक्षता तथा गरीबी से बेहाल भारत को शैक्षणिक-आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाने की सबसे बड़ी चुनौती थी। कृषि और औद्योगीकरण तथा शिक्षा एवं टेक्नोलॉजी के विकास द्वारा उस चुनौती को प्रत्युत्तर देना था। स्वतंत्रता के तत्काल बाद भारत में प्रातों की रचना का एक बड़ा मुद्दा सामने आया। जिसने पुन: एक बार भारत की एकता या अखंडता को खतरे में डाला। स्त्रियों, अनुसूचित एवम् अनुसूचित जनजातियों के विकास की समस्या स्वतंत्र भारत के सम्मुख थी। हालांकि आज भारत ने विकास करके इन समस्याओं पर विजय प्राप्त की है और भारत को विश्व की महासत्ता बनाने के लिए समस्त प्रजा कृतनिश्चयी बनी है।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) महात्मा गांधी के सत्याग्रह तथा अहिंसा के विचारों को समझाइए।

(2) स्वाधीनता संग्राम में उग्र क्रांतिकारियों की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

(3) ई.स. 1930 के सविनय कानून भंग आंदोलन के कारण तथा परिणाम बताइए।

(4) भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में सुभाषचंद्र बोस के सहयोग को स्पष्ट कीजिए।

(5) समझाए कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारत के समक्ष कैसी समस्याएँ थीं।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) ई.स. 1919 के कानून के बारे में बताइए।

(2) ई.स. 1935 के कानून ने भारतीयों को क्या-क्या दिया ?

(3) असहयोग आंदोलन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(4) सांप्रदायिकता (कौमवाद) के उदय के कारणों को संक्षेप में बताइए।

(5) सायमन कमीशन का विरोध क्यों किया गया था?

3. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) महात्मा गांधी का प्रथम सत्याग्रह कौन-सा था?

(अ) चंपारन (ब) अहमदाबाद (क) खेड़ा (ड) बारडोली

(2) सायमन कमीशन के विरोध में किस महान नेता की मृत्यु हो गई थी?

(अ) बिपिनचंद्र पाल (ब) बाल गंगाधर तिलक (क) लाला लजपत राय (ड) दादाभाई नवरोजी

(3) व्यक्तिगत सत्याग्रह के प्रथम सत्याग्रही कौन थे?

(अ) गाँधीजी (ब) विनोबा भावे (क) जवाहरलाल नेहरू (ड) सरदार पटेल

(4) भारत के संविधान की रचना किस योजना के अनुसार बनाया गया ?

(अ) अगस्त ऑफर (ब) क्रिप्स मिशन (क) वेवेल योजना (ड) कैबिनेट मिशन

(5) मुस्लिम लीग की स्थापन किस वर्ष हुई थी ?

(अ) ई.स. 1905 (ब) ई.स. 1906 (क) ई.स. 1907 (ड) ई.स. 1908

●

10 प्रगति का मार्ग एवं सुदृढ़ राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया

आर्थिक विकास के मॉडेल

किसी भी देश के आर्थिक तथा सर्वांगीण विकास के लिए आयोजन जरूरी है। ब्रिटिश शासनकाल में ही भारत में इस दिशा में महदअंश में कार्य हुए मालूम पड़ते हैं। श्री ओम विश्वसरैया ने भारत में सर्वप्रथम आर्थिक आयोजन का विचार अपनी पुस्तक 'Planned Economy for India' में किया। इस दौरान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पंडित नेहरू की अध्यक्षता में आयोजन समिति की रचना की (1938)। जिसमें प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. के. टी. शाह की अध्यक्षता में 29 उपसमितियाँ रची गईं। परंतु भारत तथा विश्व की अस्थिर परिस्थिति और राजनीतिक उथल-पुथल के कारण (1942 से 1946) यह समिति निर्धारित कार्य नहीं कर पाई और इसकी रिपोर्ट थोड़ी देर से (1949) प्रस्तुत हुई।

इस काल में देश के आर्थिक विकास हेतु 'मुंबई योजना', 'जनता योजना', 'गांधीवादी योजना', 'युद्धोत्तर पुनर्रचना योजना' इत्यादि प्रस्तुत हुईं। स्वतंत्रता-पूर्व अंतरिम सरकार के प्रधानमंत्री नेहरू के नेतृत्व में के. सी. नियोगी की अध्यक्षता में एक सलाहकार आयोजन बोर्ड बनाया गया (1946)। अल्पकाल में इस समिति द्वारा प्रस्तुत वृत्तांत में स्थायी रूप से योजना आयोग की रचना हेतु सिफ़राशि की गई थी। हालाँ की आजादी के बाद उत्पन्न हुई चुनौतियों और समस्याओं के कारण तत्काल इस दिशा में कोई कार्य नहीं हो सका। सरकार ने यह प्रश्न (जनवरी, 1950) हाथ में लिया और संवैधानिक आदर्शों तथा ध्येयों को पूर्ण करे, ऐसा योजना आयोग आरंभ किया गया (15 मार्च, 1950)। इसके साथ भारत में व्यवस्थित और आयोजनबद्ध आर्थिक विकास के लिए योजनाएँ प्रस्तुत की गईं। योजना आयोग की जगह अब नीति आयोग ने ली है।

योजना आयोग में सदस्य संख्या 6 से 12 निश्चित की गई। यह आयोग विशेषज्ञ अर्थशास्त्रियों, प्रशासनिक विशेषज्ञों तथा विविध क्षेत्र के विद्वानों से बना होता है। भारत के प्रधानमंत्री इसके पदेन अध्यक्ष होते हैं और उपाध्यक्ष सरकार तथा आयोग के सदस्यों के बीच कड़ी के रूप में काम करता है।

भारत के आर्थिक आयोजन में दीर्घकालीन तथा अल्पकालिक दोनों उद्देश्य होते हैं। दीर्घकालीन उद्देश्य धीरे-धीरे अर्थतंत्र में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने से संबंधित है जब कि अल्पकालिक उद्देश्य निश्चित समयावधि में लक्ष्यांक की प्राप्ति द्वारा आर्थिक विकास करना है।

भारत में आर्थिक आयोजन के मुख्य उद्देश्य निम्नानुसार हैं :

- **तीव्र आर्थिक विकास :** राष्ट्र के उत्थान में तीव्र एवं निरंतर वृद्धि करके प्रजा के जीवनस्तर में सुधार करना एवं भौतिक जीवन की गुणवत्ता सुधारना।
- **आर्थिक असमानता में कमी :** गरीबों तथा अमीरों के बीच आय और संपत्ति की असमानता घटाना।
- **पूर्ण रोजगारी प्राप्त करना :** देशवासियों की शक्ति का महत्तम उपयोग करके बेरोजगारी घटाना और नए अवसर प्रदान करके पूर्ण रोजगारी का ध्येय प्राप्त करना।
- **स्वावलंबन :** चीज-वस्तुओं, उपकरणों और तकनीकी जानकारी जैसी बातों में स्वावलंबन प्राप्त करना। विशेष रूप से अन्न उत्पादन में आत्मनिर्भर होना।

- **भाव स्थिरता :** ऐसी मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियाँ अमल में लाना जिससे भाव स्थिर रहें तथा विकास हो।
- **शैक्षणिक क्षेत्र में विकास :** शिक्षा का प्रसार बढ़ाना तथा समाजसुधार द्वारा राष्ट्र की कायापलट करना।

पंचवर्षीय योजनाएँ :

उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए देश के आर्थिक आयोजन के इतिहास में मील के पत्थर सी पंचवर्षीय योजनाएँ शुरू की गईं। मूलत: ऐसी योजनाओं का साम्यवादी सोवियत रूस में सफल प्रयोग हो चुका था। इसलिए साम्यवादी रूस की तरह भारत का भी तीव्र गति से आर्थिक विकास हो, इसके लिए पंचवर्षीय योजनाएँ अमल में लाई गईं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-1956) तक की समयावधि के लिए थी। द्वितीय विश्वयुद्ध, देश विभाजन, सांप्रदायिक दंगों के कारण देश का अर्थतंत्र डाँवाडोल स्थिति में था। ऐसे संयोगों में प्रथम पंचवर्षीय योजना के लिए दो ध्येय निश्चित किए गए :

- अन्न-उत्पादन के मामले में आत्मनिर्भर होना।
- राष्ट्रीय आय में वृद्धि और लोगों के जीवनस्तर में सुधार करना।

इस योजना की रचना के लिए 'हेरोड डोमर मॉडेल' का उपयोग हुआ। इस योजना की समाप्ति तक हम कृषि, सिंचाई, बिजली और वाहन-व्यवहार (यातायात) के क्षेत्र में अच्छी प्रगति कर सके। हमारी राष्ट्रीय आय में 18% वृद्धि हुई।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-1961) तक की समयावधि के लिए थी। आजादी के आठ वर्षों में गरीबी में उल्लेखनीय कमी नहीं हो सकी थी। भारतीय संसद ने आर्थिक नीति के ध्येय में 'समाजवादी समाज रचना का ध्येय घोषित किया उसके अनुसार आर्थिक विकास कार्यक्रमों का अमलीकरण इस तरह करना था, जिससे जो लोग गरीब हैं या समाज के एकदम पिछड़े रह गए हैं' उनकी भी प्रगति हो।

दूसरी योजना द्वारा भारत के भावि औद्योगिक विकास की नींव डाली गई। उसके साथ ही भावों में वृद्धि तथा मुद्रास्फीति का विषचक्र आरंभ हुआ। योजना के अंत में लोहा-इस्पात, सीमेंट, रसायनों, भारी यंत्रसामग्री, विद्युत संबंधी उपकरण इत्यादि के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकी।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-1966) समयावधि की रही। इस योजना के मुख्य लक्ष्यांक आत्मनिर्भर एवं स्वयंस्पष्ट टेक ऑफ स्टेज (Take off stage) की स्थापना का था। इस योजना की असफलता के मुख्य कारणों में चीन के साथ (1962) तथा पाकिस्तान के साथ युद्ध (1965) तथा देश में पड़े भयंकर अकाल को माना जा सकता है। इस परिस्थिति के कारण कीमतों में हुई वृद्धि और योजना के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संसाधनों की कमी के कारण चौथी पंचवर्षीय योजना को अंतिम रूप नहीं दिया जा सका। इस परिस्थिति के कारण चौथी योजना के स्थान पर (1966 से 1969 में) तीन वार्षिक योजनाएँ बनाई गईं। इसलिए इस समयावधि को 'योजना अवकाश' ('Plan Holiday') कहा गया।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-1974) की समयावधि के लिए थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य स्थिरता के साथ आर्थिक विकास और आत्मनिर्भरता प्राप्त करना था। इस योजना में 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण (1969) किया गया।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-1978) समयावधि की थी। इस योजना के प्रथम वर्ष को छोड़कर बाद के चार वर्ष सानुकूल सिद्ध होने से पाँचवी योजना संतोषजनक रही। पाँचवीं योजना एक वर्ष पहले समाप्त करने से छठी योजना अमल में आई (1978) जिसका नाम वार्षिक योजनाएँ (Rolling plan) रखा गया। जनवरी 1980 में केन्द्र में सत्ता परिवर्तन होने पर छठी पंचवर्षीय योजना (1980-1985) समयावधि की रही। इस योजना में गरीब निर्मूलन, रोजगार सृजन, लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करना, उत्पादन क्षमता बढ़ाना इत्यादि थे। छठी योजना पर्याप्त मात्रा में सफल रही।

सातवीं पंचवर्षीय योजना की समयावधि (1985-1990) रही। इस योजना में उत्पादन क्षमता बढ़ाकर रोजगारी-सृजन करना, गरीबी कम करना, पर्यावरण संरक्षित करना और हो सके उतने क्षेत्रों में स्वनिर्भरता प्राप्त करने का ध्येय रखा गया था। इस योजना में विकास दर का लक्ष्यांक प्राप्त किया जा सका परंतु इसके लिए जरूरी आंतरिक मौद्रिक साधन तथा विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का काम कठिन बना।

राजनीतिक अस्थिरता के कारण आठवीं पंचवर्षीय योजना दो वर्ष देर से शुरू की गई। उसकी समयावधि (1992-1997) दरम्यान थी। इस योजना में प्राथमिक शिक्षा का सार्वत्रीकरण करना, 15-35 वर्ष के वय-समूह के लोगों में से निरक्षरता दूर करना, पीने के पानी की व्यवस्था तथा कृषि का विकास मुख्य था। यह योजना ऐसे समय स्वीकृत हुई थी जब देश गंभीर आर्थिक संकट का सामना कर रहा था। जिसमें बजट-घाटा, भुगतान संतुलन संकट, बढ़ता ऋण तथा मुद्रास्फीति को माना सकता है। जिससे गरीबी, बेकारी और आर्थिक असमानता जैसी समस्याएँ जारी रही।

नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) समयावधि की रही। इस योजना में पहले की योजना के उद्देश्यों को यथावत रखकर देश को मंदी के संकट से उबारना, रोजगारी पैदा करना, गरीबी निवारण हेतु खेती तथा ग्राम विकास को अग्रिमता देने जैसे उद्देश्य रखे गए थे। इस योजना में गरीबों के कल्याण पर बल दिया गया, परंतु इस योजना के अंत में मुद्रास्फीति पर अंकुश नहीं लगाया जा सका। साक्षरता 65.38 % तक ही बढ़ सकी। आबादी वृद्धिदर रुक न सकी तथा औद्योगिक विकासदर भी मंद रही। इस तरह यह योजना अपने लक्ष्यों को पूर्ण रूप से सिद्ध नहीं कर सकी।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007) समयावधि की रही। यह योजना 'आय-व्यय मॉडेल' पर आधारित थी। इस योजना में सर्वप्रथम 'प्रतिराज्य दर विकास' को निश्चित किया गया। इस योजना में आर्थिक लक्ष्यों के साथ-साथ सामाजिक लक्ष्यांकों पर ध्यान रखने की व्यवस्था की गई थी। गरीबी का प्रतिशत 28 % से घटाकर 21 % तक ले जाना, प्रत्येक गाँव में पीने के पानी की व्यवस्था करना, उर्वरक (खाद) पर से सबसिडी कम करना, पेट्रोलियम पर से सबसिडी समाप्त करना, निजी पूँजी-निवेश से हवाई अड्डों का निर्माण करके उड्डयन क्षेत्र का विकास करना, बाल मृत्युदर कम करना, विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करना, घाटे में चल रही सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों का निजीकरण करने जैसे लक्ष्यांक रखे गए थे। इस योजना में 8 % विकासदर प्राप्ति के लिए छः सूत्री कार्यक्रमों की घोषणा की गई थी।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012) तक की थी। इस योजना में देश की विकासदर 7.8 % रही जबकि कृषि विकासदर 3.3 % रही।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) तक की है। जिसमें वृद्धिदर का लक्ष्यांक 8 % रखा गया है।

विभिन्न पंचवर्षीय योजना में निवेश, वृद्धिदर तथा प्राथमिकता-क्षेत्र

योजना और समयावधि	प्रस्तावित निवेश	वास्तविक निवेश	विकासदर लक्ष्यांक	प्राप्त विकासदर	प्राथमिकता क्षेत्र
प्रथम योजना 1951-56	2,070	1,960	2.1 %	3.6 %	कृषि, सिंचाई, बिजली
दूसरी योजना 1956-61	4,800	4,672	4.5 %	4.2 %	बड़े उद्योग, चिकित्सा और आरोग्य
तीसरी योजना 1961-66	7,500	8,577	5.6 %	2.8 %	खाद्यान्न उत्पादन, उद्योग
चौथी योजना 1969-74	15,900	15,799	5.7 %	3.4 %	खेती, सिंचाई
पाँचवी योजना 1974-79	37,250	39,426	4.4 %	4.9 %	जन आरोग्य, समाज कल्याण
छठी योजना 1980-85	95,500	1,03,292	5.2 %	5.4 %	खेती, उद्योग, ऊजाई
सातवीं योजना 1985-90	1,80,000	2,18,730	5.0 %	5.6 %	ऊर्जा, खाद्यान्न उत्पादन
आठवीं योजना 1992-97	4,34,000	4,95,670	5.6 %	6.7 %	मानव संसाधन, शिक्षण-आरोग्य एवं रोजगार वृद्धि
नौवीं योजना 1997-2002	8,59,200	9,41,041	6.5 %	5.7 %	सामाजिक न्याय, ग्राम विकास, रोजगार
दसवीं योजना 2002-2007	15,92,300	16,53,065	7.9 %	7.6 %	सुधार एवं सामाजिक संरचना का विकास
ग्यारहवीं योजना 2007-2012	36,44,718	37,50,978	9.0 %	8.0 %	सर्व हितकारी विकास और तीव्र विकास के साथ वृद्धि की दुहरी रणनीति

प्राथमिकता-क्षेत्र और वृद्धिदर

औद्योगीकरण

स्वतंत्रता पूर्व ब्रिटिश सरकार को भारत के औद्योगिक विकास में बहुत रुचि नहीं थी। उस सरकार का एकमात्र उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण करना था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पंचवर्षीय योजना को अमल में लाकर आयोजित तरीके से इस दिशा में विकास के प्रयत्न हुए। बड़े तथा आधारभूत उद्योगों की स्थापना की गई जिससे भावी औद्योगिक विकास की नींव डाली जा सकी। सूती कपड़ा, चीनी, वनस्पति घी-तेल जैसी इस्तेमाल की चीजों का उत्पादन करनेवाले उद्योगों के साथ-साथ यंत्रोद्योग भी विकसित हो सका है। आयोजनकाल में लोहा-इस्पात उद्योग, भारी यंत्रोद्योग, रसायन-उद्योग, कोयला-उद्योग इत्यादि का पर्याप्त अच्छा विकास हुआ है।

औद्योगिक उत्पादन में हम काफी हद तक स्वावलंबी बन सके हैं, इतना ही नहीं हम निर्यातकर्ता भी हो सके हैं। आजादी के बाद हमारी विकासदर का औसत 6% से 7% का रहा है। देश में उद्योगों के लिए अनुकूल वातावरण तैयार हुआ है। कारीगरों में शिक्षण-प्रशिक्षण द्वारा नया कौशल आया है। संचालकों का एक नया वर्ग अस्तित्व में आया है। इस तरह आजादी के बाद सुबद्ध आयोजन द्वारा हम तीव्र औद्योगिक विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठा सके हैं।

हरित क्रांति

हरितक्रांति बीसवीं सदी की एक विशेष देन, महान घटना और उपलब्धि मानी जाती है। इसकी शुरुआत मैक्सिको में (1940 के आसपास) हुई। तत्पश्चात् विश्व के अन्य देशों में इसका प्रसार हुआ।

हरितक्रांति अर्थात् ''प्रति हेक्टर अधिक पैदावार दे सकने वाले बीज और पर्याप्त मात्रा में रासायनिक खाद, जंतुनाशक दवाएँ एवं उचितमात्रा में पानी देने से होनेवाली उत्पादन वृद्धि।'' भारत में कृषिक्षेत्र में आधुनिकीकरण होने से अनाज के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हो सकी है। कृषिक्षेत्र में विभिन्न क्रांतियों की शृंखला निर्मित हुई है। जैसे कि कृषि विकास के लिए 'हरित क्रांति' दुग्ध-उत्पादन वृद्धि हेतु 'श्वेत क्रांति' रासायनिक खाद का उत्पादन बढ़ाने के लिए 'नीली क्रांति' तिलहनों के उत्पादन में वृद्धि के लिए 'पीली क्रांति', मांस/टमाटर के उत्पादन में वृद्धि के लिए 'गुलाबी-लाल क्रांति' आलू के उत्पादन-वृद्धि के लिए 'गोल क्रांति'। नई टेक्नोलॉजी के उपयोग के लिए किसान दिन-प्रतिदिन अधिक जाग्रत और उत्साही बनते जा रहे हैं। कृषिक्षेत्र में गेहूँ के अधिक उत्पादन से हम स्वावलंबी बन सके हैं। चाय के उत्पादन में भारत विश्व में प्रथम है। 1998 से भारत विश्व का सर्वाधिक दुग्ध-उत्पादक देश बन गया है। आर्थिक समृद्धि के परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में भी भौतिक सुविधाओं की मात्रा बढ़ती हुई दिखाई देती है।

यदि समाज में अमुक लोग अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं कर पाते हों और जीवन जीते हों, उन्हें गरीब माना जाता है। स्वतंत्रत-पूर्व भारत में दादाभाई नवरोजी ने जीवन-निर्वाह की लागत के आधार पर सर्वप्रथम गरीबी रेखा की संकल्पना प्रस्तुत की थी।

स्वतंत्रता के बाद आर्थिक असमानता दूर करने के लिए गरीबी निवारण का कार्यक्रम अमल में लाया गया। पंचवर्षीय योजना से राष्ट्रीय आय तथा प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि हुई परंतु गरीबों की संख्या में कमी नहीं आ सकी। धनी और अधिक धनवान बनते गए। साक्षरता अनुपात अवश्य बढ़ा है परंतु निरक्षरता की मात्र में उल्लेखनीय कमी नहीं आ सकी है। निरक्षर अधिकांशत: गरीब ही रहे हैं। परिवार नियोजन कार्यक्रमों को निर्धन वर्ग में प्रभावशाली रूप से लागू नहीं किया जा सकता है। इस कारण जनसंख्या वृद्धि से भी गरीबी की मात्रा अधिक दिखाई देती है।

गरीबी की समस्या का हल कठिन है, परंतु असंभव नहीं है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार अन्न उत्पादन तथा कृषि क्षेत्र को प्रधानता देनी ही पड़ेगी। यह निश्चित करना आवश्यक होगा कि गरीबों को वाजिब भाव पर जीवन जरूरी चीजें मिलती रहें ताकि पोषक आहार द्वारा देश के विकास में वे योगदान दे सकें। आर्थिक असमानता में कमी भी मुख्य मुद्दा बना रहेगा। परंतु इन सभी बातों का आधार दृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति और प्रजा के सहयोग पर निर्भर है।

स्वतंत्र भारत में प्राथमिक शिक्षा का विकास

ब्रिटिश शासनकाल में भारत में शिक्षा के क्षेत्र में कोई खास विकास नहीं हो सका था परंतु आधुनिक शिक्षा का प्रारंभ अवश्य हो सका था। लार्ड विलियम बैंटिक के शासनकाल से भारत में आधुनिक शिक्षा की शुरुआत अवश्य माना जा सकता है। स्वतंत्रता के समय में कक्षा 1 से 5 में 6 से 11 वर्ष की उम्रवाले कुल बालकों में से मात्र 35% बालकों को पाठशाला तक लाया जा सका था। साथ ही 6 से 11 वर्ष उम्र में बालकों के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य बनायी गई और हर पंचवर्षीय योजना में प्राथमिक शिक्षा को अधिकाधिक महत्त्व प्रदान किया गया। पंचायती राज द्वारा देश में प्राथमिक शिक्षा का प्रसार तेजी से हुआ।

भारत सरकार ने प्राथमिक शिक्षा में बुनियादी शिक्षा के सिद्धांत स्वीकार किए। श्री बी. जी. खेर की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त (1948) की गई जिसने तीन पंचवर्षीय योजनाओं में देश में संपूर्ण रूप से बुनियादी शिक्षा लागू करना निश्चित किया। तीन योजनाओं में अनेक जूनियर बुनियादी तथा सीनियर बुनियादी पाठशालाएँ शुरू हुईं। तीसरी योजना के अंत तक प्राथमिक प्रशिक्षण संस्थाओं का संपूर्ण रूप में बुनियादी करण हुआ, इसे अभूतपूर्व उपलब्धि माना जा सकता है। सामान्य प्राथमिक शाला की अपेक्षा बुनियादी प्रकार की प्राथमिक पाठशाला अधिक खर्चीली होती है, यह भी उसके मंद विकास का एक कारण है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश में प्राथमिक शिक्षा का प्रसार बढ़ने के बावजूद इसकी कतिपय समस्याएँ हैं, जैसे कि ग्रामीण क्षेत्र की पाठशालाओं की विद्यार्थियों की उपस्थिति में कमी, पढ़ाई के बीच में ही छोड़ना, पाठशालाओं में आज भी भौतिक सुविधाएँ का अभाव या कमी आदि। ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारें तथा ग्राम-पंचायतें इस क्षेत्र में सजग रहकर समस्याओं का निराकरण कर सकती हैं।

स्वतंत्र भारत में उच्चशिक्षा का विकास

ब्रिटिश शासनकाल में प्राथमिक शिक्षा की अपेक्षा उच्चशिक्षा के विस्तार और विकास को अधिक प्रोत्साहन और सहायता मिली। जिससे भारत में शिक्षा की नींव की अपेक्षा उच्चशिक्षा क्षेत्र का प्रसार अधिक हो सका।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद' ने प्रस्ताव पारित करके देश में माध्यमिक शिक्षा के बारे में एक आयोग की रचना की सिफारिश की (1948) । उसके अनुसार सरकार ने मद्रास यूनिवर्सिटी के कुलपति डॉ. ए. लंकास्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमकि शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। इसकी रिपोर्ट मिलने पर सरकार ने सक्रिय कदम उठाए, जिससे इस आयोग की अधिकांश सिफारिशें मान ली गईं। इस आयोग ने 183 सुझाव दिए थे।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में भारत सरकार ने एक विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (यूनिवर्सिटी एज्यूकेशन कमीशन) की नियुक्ति की (1948)। जिसने एक वर्ष में अपनी सिफारिशें सरकार को सुपुर्द किया।

सरकार द्वारा इस आयोग की अधिकांश सिफारिशें स्वीकार करने से -

- विश्वविद्यालयों में अधिकतर पाठ्यक्रम एक समान रखे गए।
- शिक्षा का माध्यम अधिकतर मातृभाषा रखी गई।
- देश में कृषि-पशुपालन, इंजीनीयरिंग, चिकित्सा, कानून तथा व्यवसायलक्षी डिप्लोमा अभ्यासक्रम चलानेवाली संस्थाओं और कॉलेजों की संख्या बढ़ाई गई।
- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूनिवर्सिटी ग्रांट कमिशन) की रचना की गई।
- कॉलेज में विद्यार्थियों की संख्या की सीमा तय की गई।
- अभ्यासक्रम तथा परीक्षा पद्धति में सुधार।
- अध्यापकों के वेतन में वृद्धि।

भारतीय शिक्षा के इतिहास में क्रांतिकारी परिवर्तन और अनन्य कहा जा सके, ऐसे कोठारी आयोग की रिपोर्ट (1966) में प्रकाशित हुई। उसके अधिकांश सुझावों को स्वीकार किया गया तथा भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाई (1968)। इस नई नीति के अनुसार शिक्षा स्तर को बनाए रखने के उपरांत प्राथमिक शिक्षा का सार्वत्रीकरण तथा प्रौढ़शिक्षा पर बल दिया गया, जिमसें दूरवर्ती शिक्षण (Distance Education) को भी स्थान दिया गया।

विश्वविद्यालयों की स्थापना

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में यूनिवर्सिटियों की स्थापना में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई है। शिक्षा को राज्यसूची में स्थान दिए जाने पर भी बनारस, दिल्ली, अलीगढ़, विश्वभारती और जवाहरलाल नेहरू

यूनिवर्सिटी केन्द्रीय यूनिवर्सिटियाँ हैं। इसके साथ ही विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता से कुछ विशिष्ट संस्थाएँ भी चल रही हैं:

- इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइंस (बेंगलुरु) (भारतीय विज्ञान संस्थान)
- इंडियन एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट (दिल्ली) (भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान)
- इंडियन स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज (दिल्ली)
- ताता इंस्टीट्यूट ऑफ सोशियल सायंस (मुंबई)
- बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियरिंग एंड सायंस (पिलानी)
- इंडियन स्कूल ऑफ माइंस (धनबाद)

यू.जी.सी. अधिनियम के अनुसार भारत में स्वायत्त संस्थाएँ - गूजरात विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, जामिया मिलिया ईस्लामिया, उस्मानिया यूनिवर्सिटी, अलीगढ़ यूनिवर्सिटी, गुरुकुल कांगड़ी जैसी संस्थाएँ भी कार्यरत हैं। उच्चशिक्षा के क्षेत्र में इतना उल्लेखनीय विकास हम कर सके हैं।

टेक्निकल और आई. आई. टी.

कोठारी कमीशन ने शिक्षा संस्थाओं की गुणवत्ता में सुधार और भारतीय विश्वविद्यालयों में विद्याकीय शिक्षा एवं संशोधन के क्षेत्रों में आंतरराष्ट्रीय स्तर के समकक्ष पहुँचे, इसके लिए सिफारिश की थी। तदनुसार आई. आई. टी. तथा कृषि विषयक विश्व विद्यालय का समावेश हो। परिणामत: देश में धीरे-धीरे टेक्निकल संस्थाओं में वृद्धि होती रही है। देश में इंजीनियरिंग के क्षेत्र में सर्वप्रथम थोम्पसन कॉलेज (1845) थी। स्वतंत्रता के बाद यह रुड़की इंजीनियरिंग यूनिवर्सिटी बनी थी (1948)।

आज टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में 20 संशोधन संस्थाएँ कार्यरत हैं। जैसे केन्द्रीय काँच एवं मिट्टीकाम शोध संस्थान (जादवपुर), केन्द्रीय ऊर्जा संशोधन संस्थान (बिहार) को गिनवाया जा सकता है। तदुपरांत मानव चिकित्सा, कानून, स्थापत्य, संगीत, डेरी उद्योग, पत्रकारत्व पशु चिकित्सा संबंधी संस्थाओं में भी बढ़ोत्तरी हुई है।

पूर्व प्राथमिक तथा प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के लिए प्रशिक्षक (ट्रेनिंग) कॉलेजों की संख्या और स्तर में सुधार हुआ है। भारत सरकार ने NCERT (नेशनल कौंसिल ऑफ एज्यूकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग) स्थापित की। इस संस्था के झंडे तले राज्यों में राज्यवार स्टेट कौंसिल आफ एज्यूकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग संस्थाएँ स्थापित की गई हैं।

परमाणु संशोधन, अवकाश संशोधन तथा अन्य वैज्ञानिक एवं टेक्नोलॉजिकल विकास

भारतीय संसद ने वैज्ञानिक नीति का प्रस्ताव पारित किया (1958)। जिससे वैज्ञानिक संशोधन, शिक्षण-प्रशिक्षण और विकास के नए द्वार खुले।

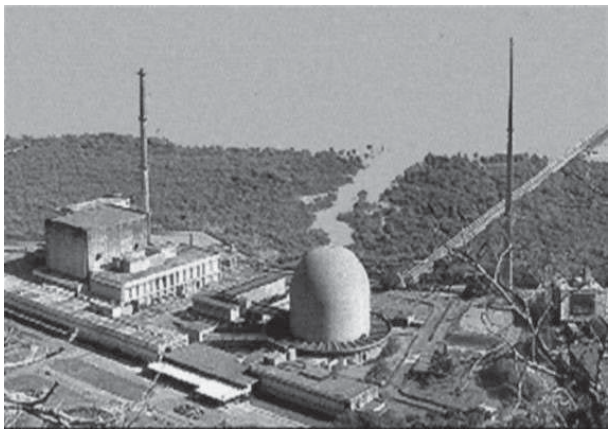

भाभा एटॉमिक रिचर्स सेन्टर

पदार्थ का सबसे छोटा स्वतंत्र कण यानी अणु। यह अणु अति सूक्ष्म कणों से बनता है, जिन्हें परमाणु कहते हैं। परमाणु ऊर्जा आयोग की स्थापना (1948) होने पर अप्सरा नामक परमाणु भट्ठी तैयार हुई (1956) और मुंबई के पास ट्राम्बे में एटॉमिक एनर्जी एस्टाब्लिशमेंट (AEE) नामक संस्था स्थापित हुई (1957)। डॉ. होमी जहाँगीर भाभा का अवसान होने पर उनकी स्मृति को स्थायी बनाने हेतु सरकार ने एटॉमिक एनर्जी एस्टॉब्लिशमेंट का नाम 'भाभा एटॉमिक रिसर्च सेंटर' (BARC) नाम दिया। डॉ. विक्रम साराभाई

उनके अनुगामी बने। उनकी उपलब्धियों के लिए उन्हें डॉ. शांतिस्वरूप भटनागर स्मारक पुरस्कार प्राप्त हुआ। परमाणुशक्ति प्राप्त करने के लिए हैवी वाटर की आवश्यकता उत्पन्न होने पर नांगल में हैवी वाटर प्लांट बनाया गया (1962)। चेन्नई के पास कल्पक्कम में 'इंदिरा गांधी सेंटर फॉर एटॉमिक रिसर्च' स्थापित किया गया (1971)। बेंगलुरु के पास गौरीबुदानपुर में सेस्मिक केन्द्र स्थापित हुआ (1965)। इस केन्द्र का उपयोग अणु विस्फोट कहाँ करना है, इसके लिए होता है। भारत ने राजस्थान के पोखरण में पहला परमाणु विस्फोट किया, (1974)। यह स्थल इस संस्था की मदद से चुना गया था। इसके साथ ही परमाणु परीक्षण करनेवाले विश्व के देशों में भारत छठवाँ राष्ट्र बना। भारत के कुल सात परमाणु ऊर्जा केन्द्रों के आयोजन, संचालन और व्यवस्था हेतु 'न्यूक्लियर पावर कॉर्पोरेशन आफ इंडिया' की स्थापना की गई है (1987)।

पोखरण परमाणु विस्फोट

भारत में 'इंडियन नेशनल कमेटी फॉर स्पेस रिसर्च' की रचना डिपार्टमेन्ट ऑफ एटॉमिक एनर्जी द्वारा हुई (1962)। तत्पश्चात् छोटे रॉकेट छोड़ने का काम शुरू किया गया। थुम्बा में दूसरे 'स्पेस सायंस एंड टेक्नोलॉजी सेंटर' (1963) की स्थापना के बाद अहमदाबाद के जोधपुर टेकरा में 'स्पेस एप्लीकेशन सेंटर' की स्थापना हुई (1969)। सरकार में डिपार्टमेन्ट ऑफ स्पेश तथा स्पेस कमीशन की स्थापना हुई। गणतंत्र भारत में बेंगलुरु में 'इंडियन स्पेस रिसर्च ऑर्गनाजिशन' (ISRO) की स्थापना हुई। इसी 'इसरो' संस्था द्वारा आर्यभट्ट नामक कृत्रिम उपग्रह अवकाश में छोड़ा गया। जिससे भारत का अवकाश युग में प्रवेश हुआ। भास्कर-1 (1979) तथा भास्कर-2 (1981) अवकाश में छोड़े गए। श्री हरिकोटा अवकाशीय केन्द्र से रोहिणी (RS-1) कृत्रिम उपग्रह को सफलतापूर्वक अवकाश में प्रस्थापित किया गया (1980)। इसके लिए SLV-3 नामक अवकाशयान का उपयोग हुआ, जिससे भारत अवकाश क्लब का छठा देश बना।

संदेश व्यवहार और इंफॉर्मेशन टेक्नोलॉजी

इन्सेट-1-बी के अवकाश में छोड़े जाने (1983) पर भारत में दूरसंचार, दूरदर्शन, आकाशवाणी और जलवायु विभाग में क्रांति आरंभ हुई। इन्सेट-1-बी की उम्र मात्र सात वर्ष की थी। इसलिए इन्सेट-1-डी छोड़ा गया (1990)।

IRS-1A (इंडियन रिमोट सेंसिंग सेटेलाइट) सोवियत रूस के बैकानूर केन्द्र से व्यावसायिक स्तर पर छोड़ा गया, तत्पश्चात इन्सेट–1B छोड़ गया (1991)। अवकाश विज्ञान के क्षेत्र में कृत्रिम उपग्रह छोड़ने के लिए ए.एस.एल.वी. (ओगमेंटेंड सेटेलाइट लांच व्हिकल) भारतीय वैज्ञानिकों ने तैयार कर लिया था। (1980)। इससे कृत्रिम उपग्रहों द्वारा दूरदर्शन और संदेश व्यवहार द्वारा देश को आज समाहित कर लिया गया है।

भारत में रेडियो का आरंभ कोलकाता तथा चेन्नई में निजी ट्रांसमीटर द्वारा हुई। (1930) में सरकार ने रेडियो प्रसारण अपने हाथ में ले लिया और उसे आल इंडिया रेडियो नाम दिया (1936)। आकाशवाणी केन्द्रों की संख्या (1985) में 71 थी जो बढ़कर (1994) में 160 हो गई।

भारत में दूरदर्शन (टेलीविजन) का प्रथम प्रयोग 1965 में हुआ। मुंबई से (1972) और कोलकाता, चेन्नई, श्रीनगर, अमृतसर, जलंधर तथा लखनऊ केन्द्रों द्वारा दूरदर्शन की सेवाओं का प्रसारण शुरू किया गया (1975)। भारत में आकाशवाणी तथा दूरदर्शन को अलग किया गया। (1976) दूरदर्शन पर राष्ट्रीय कार्यक्रमों (1987) से दोपहर का प्रसारण (1989) से शुरू किया गया। प्रायोजित श्रेणी का प्रसारण प्रारंभ (1984) हुआ।

स्वतंत्रता के पश्चात् संदेश-व्यवहार के क्षेत्र में बहुत अच्छी प्रगति हुई है। आजादी के समय 23,326 डाकघर थे, जो अब दो लाख से अधिक हो गए हैं। डाक सेवा द्रुतगामी बनी है, हालाँकि तार सेवा बंद हो चुकी है। सेलफोन के युग में एस.एम.एस. तथा सोशियल मीडिया संदेश-व्यवहार के नए माध्यम बने हैं। ई-मेल का व्यवहार बढ़ता जा रहा है। मोबाइल, इंटरनेट द्वारा एस.टी.डी. सेवाओं का लाभ सामान्य लोग लेने लगे हैं। सरकारी दूर संदेश व्यवहार (टेलीकम्युनिकेशन) संस्थाओं के साथ-साथ निजी संस्थाओं की संख्या भी बढ़ी है। उपग्रह की मदद से मनीऑर्डर भेजने की शुरुआत हो चुकी है(1994)। परंतु आज ऑनलाइन बैंकिंग तथा मोबाइल बैंकिंग सेवाओं के कारण मनीआर्डर सेवा भी लुप्तप्राय बन रही है।

इंफार्मेशन टेक्नोलॉजी क्षेत्र में भारत विकसित देशों की पंक्ति में आ गया है। भारत में इस क्षेत्र में हैदराबाद ने असाधारण प्रगति की है। गुजरात में भी इन्फोसिटी की स्थापना हुई है। प्रवेश, नौकरी और अदालती कार्यवाही के क्षेत्र में इस टेक्नोलॉजी का उपयोग सामान्य हो गया है। गुजरात ने प्रशासनिक क्षेत्र में अपना नेटवर्क (GSWAN-Gujarat State Wide Area Network) विकसित किया है। अत: यह कहा जा सकता है कि आज की दुनिया में ऑन लाइन एवं इंन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी महत्तम भाग बन रहे हैं।

महासत्ताओं और पड़ोसी देशों के साथ संबंध

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने अपनी विशिष्ट विदेशनीति द्वारा महासत्ताओं और पड़ोसी देशों के साथ के संबंधों में संतुलन स्थापित करने के प्रयास किए हैं। उसमें भारत काफी हद तक सफल भी रहा है।

अमेरिका

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय विश्व के अधिकांश देशों ने भारत को समर्थन दिया था, अमेरिका भी उसमें अलग नहीं था। फिर भी भारत-रूस संबंधों के कारण अमेरिका ने यू.एन. की सुरक्षा परिषद में पाकिस्तान को समर्थन देना शुरू किया। अमेरिका भारत को उसकी इच्छानुकूल विदेशीनीति के अनुसार ढालना चाहता था। भारत द्वारा उसे अस्वीकार किए जाने से दोनों देशों के बीच संबंध औपचारिक रहे। तदुपरांत चीन के यू.एन. में प्रवेश को लेकर भी अमेरिका के संबंध भारत के साथ मैत्रीपूर्ण नहीं रह सके। ऐसी परिस्थिति में भी दोनों देशों के बीच आर्थिक तथा टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में परस्पर आदान-प्रदान होता रहा। अमेरिकी राष्ट्रपति आइज़न हावर तथा केनेडी के भारत दौरे के बावजूद भारत के संबंध अमेरिका के साथ गहन तथा प्रगाढ़ मैत्रीपूर्ण नहीं बन सके, यह सच है।

भारत ने परमाणुशस्त्रों से संबंधित संधि पर हस्ताक्षर नहीं किया क्योंकि 'सर्वग्राही परमाणु परीक्षण संधि' तथा 'सर्वग्राही परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि' पर भारत हस्ताक्षर करे, इसका आग्रह अमेरिका ने रखा है। ये दोनों संधियाँ भेदभावयुक्त और हमारे राष्ट्रीय हितों के लिए हानिकारक होने से भारत ने उन पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं। अपने इरादों तथा आग्रहों की अवगणना होने से अमेरिका भारत से नाराज हुआ। भारत ने जब पोखरण (राजस्थान) में सफल परमाणु विस्फोट परीक्षण किया (1998) तब उसे गंभीर मानकर उसने भारत पर कुछ प्रतिबंध भी लगाए, जो समय बीतते-बीतते हलके होते गए। तत्पश्चात् भारत को आर्थिक तथा टेक्नोलॉजी क्षेत्र में अमेरिकी सहायता भी मिलती रही।

यूनाइटेड स्टेट्स में न्यूयॉर्क के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर (11 सितम्बर, 2001) हुए आंतकवादी हमले के बाद दोनों देशों के संबंधों में सुधार हुआ है। भारत ने भी आर्थिक क्षेत्र में प्रगति हाँसिल की है, यह बात अब वे स्वीकार करने लगे हैं। और दोनों देशों के बीच संबंध प्रगाढ़ बने, ऐसी इच्छा करने लगे हैं।

अभी हाल में (2014 और 2015) भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी अमेरिका के प्रवास पर गए थे वहाँ उन्होंने यू. एन. (U.N.) (संयुक्त राष्ट्र) की महासभा को भी संबोधित किया। अमेरिका के राष्ट्रपति बराक ओबामा 26 जनवरी

2015 को 66वें भारतीय गणतंत्र दिवस के समारोह में मुख्य अतिथि बनकर भारत आए। भारतीय गणतंत्र दिवस समारोह में भाग लेने वाले वे पहले अमेरिकी राष्ट्रपति हैं। इस तरह, भारत और अमेरिका के संबंध सुमेलभरे हो रहे हैं। आतंकवाद जैसी आंतरराष्ट्रीय समस्या के संदर्भ में दोनों राष्ट्रों के प्रमुख चिंतित हैं।

सोवियत संघ (U.S.S.R.)

अमेरिका की तरह सोवियत संघ ने भी भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का समर्थन किया था। आजादी के बाद रूस भारत का खास मित्र रहा है। कश्मीर प्रश्न के संदर्भ में वह सदैव भारत के समर्थन में खड़ा रहा है। सोवियत प्रमुख मिखाइल गोर्बाचोव के भारत दौरे से दोनों देशों के बीच संबंध गाढ़ बने और दोनों देशों के बीच अनेक क्षेत्रों में समझौते हुए, जिनमें भारतीय पंचवर्षीय योजना में भी सोवियत रूस की आर्थिक मदद मिली। भारत-चीन युद्ध (1962) जैसे आपात काल में सोवियत संघ ने सैन्य क्षेत्र में मिग युद्ध विमान में खास मदद की। आंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में सोवियत रूस ने भारत की गुट निरपेक्ष तथा तटस्थता की नीति को संपूर्ण समर्थन दिया।

भारत-पाक संबंध

ब्रिटिश भारत में से भारत तथा पाकिस्तान जैसे दो राष्ट्र अस्तित्व में आए। आरंभ से ही इन दोनों राष्ट्रों के आपसी संबंध तंग रहे। विभाजन के समय की स्थिति में सांप्रदायिक दंगों ने आग में घी का काम किया। पाकिस्तान के साथ आंतरराष्ट्रीय सरहद को लेकर आज तक विवाद है। पाकिस्तान के साथ के संबंधों में कश्मीर का मुद्द सदैव महत्त्वपूर्ण रहा है। उसे लेकर पाकिस्तान के साथ 1948, 1965, 1971 तथा 1999 में युद्ध हो चुके हैं, जिसमें उसकी हार हुई फिर भी आज तक पाकिस्तान के साथ हमारे संबंध सुधर नहीं सके हैं। ताशकंद करार तथा शिमला करार को भारत संपूर्ण समर्थन देता है किन्तु पाकिस्तान नहीं। प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी की लाहौर बस यात्रा और तत्पश्चात् पाकिस्तान के सैन्य शासक परवेज़ मुशर्रफ़ के साथ आगरा में उनके साथ की शिखर वार्ता होने पर भी संबंध तनावपूर्ण रहे हैं।

पंजाब के सिख उग्रवादियों, जम्मू-कश्मीर में अलगाववादियों और आतंकियों को सक्रिय मदद देकर भारत को हैरान करने में पाकिस्तान ने कोई कसर नहीं छोड़ी है। भारत के परमाणु परीक्षण के बाद पाकिस्तान ने भी परमाणु परीक्षण किए हैं। दोनों देश अब परमाणु शस्त्रसंपन्न देश बने हैं, ऐसे में सैन्य क्षेत्र में सदैव युद्ध सामग्री में निरंतर वृद्धि होने से दोनों देशों के बीच के संबंध तनावपूर्ण रहे हैं । शांतिपूर्ण संबंध बनाने की भारतीय नीति को पाकिस्तान ने योग्य प्रतिभाव नहीं दिया है।

भारत-चीन संबंध

चीनी साम्यवादी क्रांति (1949) के बाद उसने तिब्बत पर आधिपत्य जमाया। इसलिए संबंधों को सुधार ने के लिए नेहरू ने चीन के साथ पंचशील करार किया। इस करार द्वारा दोनों देशों के बीच प्यारभरे संबंधों की शुरुआत हुई और 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' के नारे लगे जो बाद में एक भ्रम सिद्ध हुआ। इस अवधि में (1954) चीन ने अपना मानचित्र प्रकाशित किया जिसमें से कई भारतीय प्रदेशों का समावेश अपने में किया था। चीन के इस कदम से दोनों देशों के बीच संबंध बिगड़ने शुरू हुए। चीन ने मैकमोहन रेखा को आंतरराष्ट्रीय सीमा मानने से इनकार किया। चीन द्वारा बफर स्टेट जैसे तिब्बत को अपने में विलीन कर लेने से दोनों देशों के बीच मतभेद पैदा हुए। चीन ने यह नक्शा पुराना है, कहकर बात को टाल दिया तथा भारतीय क्षेत्र में घुसपैठ आरंभ की। इसके पहले (1959 तक) भारत, चीन के साथ अपने संबंधों को शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के मार्ग से हल करना चाहता था। परंतु चीन ने भारत पर आक्रमण (1962) करके भारत के कुछ प्रदेशों पर अधिकार जमा लिया। भारत ने उसके खिलाफ सैनिक कदम उठाए तब तक बहुत देर हो

चुकी थी। अंत में चीन द्वारा एकपक्षीय युद्धविराम घोषित करने से यह युद्ध समाप्त हुआ। पर इस युद्ध में भारत को खूब सहन करना पड़ा। तब से लेकर आज तक दोनों देशों के बीच सीमा-विवाद को लेकर बहुत सी मंत्रणाएँ हुईं परंतु अभी तक सुखद समाधान नहीं लाया जा सका है। फिर भी पिछले दशक में भारत और चीन के बीच परस्पर सहयोग और मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित होते रहे हैं। भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी तथा चीन के प्रधानमंत्री जीनपिंग के बीच रिवरफ्रंट, अहमदाबाद में सौजन्यपूर्ण मुलाकात हुई (2014), जिससे भावि संबंधों में मिठास बढ़ने का संकेत माना जा सकता है।

भारत-बांग्लादेश संबंध

भारत-पाकिस्तान युद्ध (1971) द्वारा बांग्लादेश का उदय हुआ। इससे पहले यह क्षेत्र पूर्वी पाकिस्तान के नाम से जाना जाता था। बांग्लादेश के उदय में भारत का विशेष योगदान है।

आरंभ में भारत-बांग्लादेश संबंध मैत्रीपूर्ण रहा। बांग्लादेश की आज़ादी के बाद तुरंत ही भारत ने उसकी आर्थिक तथा भौतिक रूप से बहुत मदद की थी फिर भी पड़ोशी देश के रूप में कई बातों को लेकर दोनों के संबंध तंग रहे। भारत ने अपने 'तीन बीघा' का प्रदेश सौंपने (1992) से बांग्लादेश को उसके अन्य प्रदेशों में जाने में सुगमता हुई। पड़ोसी देश के रूप में आज भी भारत हमेशा बांग्लादेश के पक्ष में रहता है।

गंगा नदी के पानी के उपयोग तथा वितरण को लेकर हुई चर्चा द्वारा समाधान हुआ। अतिवृष्टि तथा प्राकृतिक प्रकोपों के समय भारत ने पर्याप्त प्रमाण में उसकी मदद की है। दोनों देशों के बीच (2015) विवादित भूमि तथा उस क्षेत्र के लोगों की नागरिकता के प्रश्नों के निराकरण के संबंध में सफल विचार-विमर्श हुआ है।

भारत-श्रीलंका संबंध

श्रीलंका के साथ भारत के संबंध रामायण काल से है। श्रीलंका में भारतीय तमिल निवास करते हैं। उनकी नागरिकता के प्रश्न पर दोनों देशों के बीच मतभेद होने भारत ने तमिलों को भारतीय नागरिकत्व देने की तैयारी भी बताई है।

श्रीलंका में सिंहलियों का बहुमत है। इस कारण तमिलों की समस्याओं के प्रति भेदभाव रखा जाता है, ऐसी भावना प्रबल बनने पर तमिलों ने अलग राज्य की माँग की, जिससे तमिलों तथा श्रीलंका की सरकार के बीच घर्षण आरंभ हुआ। प्रभाकरन के नेतृत्व में तमिलों ने उग्रवादी संगठन (L.T.T.E.) (लिबरेशन आफ तमिल टाईगर्स इलम्) चरकर आंतक का भी सहारा लिया। ऐसे में दोनों देशों की सरकारों के बीच समझौता हुआ। (1987) राजीव गांधी की सरकार के समय श्रीलंका में शांति स्थापना के भारतीय सैन्य की टुकड़ी भेजी गई, परंतु भारत का यह प्रयोग असफल रहा और पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी पर आत्मघाती हमला करके उनकी हत्या हुई। भारत की इच्छा दोनों पक्षों के बीच शांतिमय समाधान की है।

भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने श्रीलंका के प्रवास में तमिल प्रभाव वाले विस्तार जाफ़ना गए (13 मार्च, 2015)। असरग्रस्त श्रीलंकन तमिलों के पुन:वसन के लिए भारत की आर्थिक सहायता से 27000 मकान बनाए गए हैं। आज भारत के साथ श्रीलंका के संबंध मैत्रीपूर्ण हैं।

भारत-नेपाल संबंध

भारत और नेपाल के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध का आरंभ 1950 से हुआ। उसके अनुसार दोनों देशों ने एक-दूसरे के सार्वभौमत्व और अखंडता को स्वीकार किया है। नेपाल को उसके आर्थिक विकास के लिए भारत ने उसे उदार आर्थिक तथा सामाजिक सहायता देता रहा है।

नेपाल और भारत के लोग सरलता से एक दूसरे के देश में आ-जा सकते हैं, धार्मिक स्थानों की यात्रा करते हैं। कभी-कभी माओवादी त्रासवादी प्रवृत्तियाँ करते हैं। वे कभी भारत के नक्सलवादियों के साथ उनका संपर्क पता चलता है। इन देशों में सरलता से आवागमन हो सकने के कारण यहाँ आतंकवादी प्रवृत्ति में लिप्त बहुत से लोग वहाँ आश्रय लेते हैं जिससे दोनों देशों में तनाव पैदा होता है। भारत के चीन के साथ के संबंधों को लेकर नेपाल के संबंधों के बारे में गलत फहमी होती है। भारत, नेपाल के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध रखने के लिए आतुर रहा है।

नेपाल के सामाजिक आर्थिक विकास में भारत ने बहुत मदद की है। हिमालय से निकलनेवाली कुछ नदियाँ नेपाल में से बहकर भारत में आती हैं। वर्षाऋतु में उनमें भारी बाढ़ आती है, जिससे भारत को बहुत हानि होती है। नदियों की बाढ़ को रोकने के लिए भारत-नेपाल में समझौता करने हेतु भारत प्रयत्न करता रहा है। 25 अप्रैल, 2015 को नेपाल में 5.8 तीव्रता का भूकंप आया था, जिसमें लगभग 8000 लोग मारे गए थे। इस प्राकृतिक आपदा में भारत ने बचाव-राहत कार्य में नेपाल की मदद की और पुनर्वसन में सहायता दी।

भारत-म्यानमार (बर्मा) संबंध

म्यानमार को स्वतंत्रता (1948) मिली तभी से दोनों देशों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय म्यानमार ने सहायता माँगी उस समय भारत ने तुरंत ही आर्थिक मदद भेजी थी। दोनों देशों के बीच हुई संधि के मुताबिक परस्पर एक-दूसरे का सार्वभौमत्व को मान देना तथा एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में दखल न देना स्वीकार किया है (1951)। इसी वर्ष दोनों देशों के बीच पंचवर्षीय करार होने से व्यापारिक संबंध मजबूत बने। दोनों देशों के बीच भावपूर्ण संबंधों के विकास में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू और म्यानमार के प्रधानमंत्री ऊ नू की व्यक्तिगत मैत्री का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

म्यानमार सीमा पर विद्रोही प्रवृत्ति बढ़ने पर बर्मा ने भारत से शस्त्र सहायता प्राप्त की। साथ ही भारत ने उस रकम का आधा भाग छोड़ दिया। उपरांत, म्यानमार के आपातकाल में भी भारत ने लोन (ऋण) देने की घोषणा की। बर्मा के प्रमुख नेविनो के भारत दौरे (1965) से दोनों देशों के बीच पारस्परिक संबंध और अधिक प्रगाढ़ बनाने का निश्चय हुआ। यह उल्लेखनीय है कि आजादी के बाद भारत की बर्मा के साथ कोई अनबन नहीं हुई है।

भारत-भूटान संबंध

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने भूटान के स्थायी शांति और मैत्री-संधि की। (1949) भारत ने भूटान की स्वायत्तता को स्वीकार किया, साथ ही भूतान ने भी संरक्षण और विदेशनीति के क्षेत्र में भारत को विश्वास में लेना स्वीकार किया। प्रधानमंत्री नेहरू भूटान के दौरे पर गए थे (1958)। चीन द्वारा तिब्बत पर अधिकार जमा लेने पर भूटान को भी चीन से डर लगा था। इस कारण भी वह भारत के अधिक समीप आया।

भूटान में दोरजी के खून (1964) के बाद भारत विरोधी प्रवृत्ति शुरू हुई। परंतु थोड़े ही समय से वातावरण स्वच्छ हो गया। भारत के प्रयासों से भूटान यूनिवर्सल पोस्ट यूनियन का सदस्य बना (1969) तथा यू.एन. का भी सदस्य बना (1971) म्यानमार की ही भाँति भारत के भूटान के साथ संबंध भी समानता के स्तर पर, मैत्रीपूर्ण रहे हैं। एक छोटा-सा राष्ट्र होने के बावजूद भारत ने भूटान को विशिष्ट महत्त्व दिया है।

भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भूटान का दौरा (जून, 2014) किया, उस समय उन्होंने कहा कि भारत प्रगति करेगा तो उसका सीधा प्रभाव पड़ोसी देशों पर पड़ेगा। तत्पश्चात् दोनों देशों के परस्पर सुरक्षा सहयोग पर संतोष व्यक्त किया गया। इस तरह, भारत ने भूटान जैसे लघु पड़ोसी राष्ट्र के साथ भी भावपूर्ण संबंध स्थापित किया है।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) योजना आयोग की रचना तथा मुख्य उद्देश्य बताइए।

(2) पंचवर्षीय योजनाओं के बारे में संक्षेप में लिखिए।

(3) स्वतंत्र भारत में शिक्षा के विकास का वर्णन कीजिए।

(4) परमाणु संशोधन के क्षेत्र में भारत द्वारा किए गए विकास की चर्चा कीजिए।

(5) अमेरिका तथा सोवियत रूस के साथ भारत के संबंधों के बारे में जानकारी दीजिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) हरितक्रांति के बार में समझाइए।

(2) संदेश-व्यवहार के क्षेत्र में हुए विकास की जानकारी दीजिए।

(3) औद्योगीकरण के बारे में जानकारी दीजिए।

(4) भारत-पाकिस्तान संबंधों के बारे में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(5) भारत-श्रीलंका संबंध के विषय में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

3. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) भारत में योजना आयोग का आरंभ कब हुआ?

(अ) ई.स. 1947 (ब) ई.स. 1950 (क) ई.स. 1955 (ड) ई.स. 1952

(2) स्वतंत्र भारत के प्रथम विश्वविद्यालय आयोग के अध्यक्ष कौन थे?

(अ) डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (ब) कोठारी

(क) डॉ. ए. लंकास्वामी मुदालियर (ड) मेकाले

(3) भारत ने पहला परमाणु विस्फोट किस स्थल पर किया ?

(अ) बेंगलुरु (ब) पोखरण (क) अहमदाबाद (ड) कच्छ

(4) 'स्पेस एप्लीकेशन सेंटर' कहाँ स्थित है?

(अ) बेंगलुरु (ब) दिल्ली (क) अहमदाबाद (ड) थुम्बा

(5) कौन-सी पंचवर्षीय योजना एक वर्ष पहले ही समाप्त कर दी गई थी ?

(अ) चौथी योजना (ब) पाँचवीं योजना

(क) सातवीं योजना (ड) आठवीं योजना

●

11 आधुनिक युग का आरंभ

समय की दृष्टि से मध्यकालीन इतिहास को आधुनिक इतिहास से तथा आधुनिक इतिहास से समकालीन इतिहास को अलग करने के बारे में इतिहासकारों में मतभेद है। साथ ही यूरोप के आधुनिक काल का आरंभ कब से हुआ, यह निश्चितरूप से कहना मुश्किल है। फिर भी 14 वीं से 16 वीं सदी में वैज्ञानिक संशोधनों, भौगोलिक खोजों, व्यापार के विकास, पूँजी के उदय, मध्यवर्ग के उदय तथा प्राचीन कला-साहित्य को पुनर्जीवन मिला। परिणामस्वरूप यूरोप में अराजकता की समाप्ति पर अशांति दूर हुई तथा यूरोप में नवजीवन तथा नई चेतना प्रकट हुई, इसी कारण इतिहासकार उसे आधुनिक युग का आरंभ मानते हैं।

इस प्रकरण में हम आधुनिक युग के आरंभिक काल में हुई कतिपय घटनाओं का अध्ययन करेंगे।

नवजागरण

यूरोप में मध्ययुग के अंत और अर्वाचीन युग के आरंभ में जिस नए युग का आरंभ हुआ उसे नवजागरण (पुनर्जागरण) अथवा रेनेसां **(Renaissance)** के रूप में पहचाना जाता है। नवजागरण यूरोपीय प्रजा की मानसिक क्रांति थी। वहाँ बौद्धिक आंदोलन की शुरुआत हुई। लोगों में नया देखने-जानने की जिज्ञासा और ज्ञानपिपासा जाग्रत हुई थी। मध्ययुगीन संस्थाओं और विचारशैली में परिवर्तन आ रहा था। उसने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक सभी पहलुओं पर व्यापक प्रभाव डाला था। यूरोपीय समाज मानसिक दासता से मुक्त हो रहा था।

मध्ययुगीन सामंतशाही तथा जागीरदारी प्रथा के अंत की शुरुआत हुई तथा नगर बसे। नए व्यापारी वर्ग ने धर्म की अपेक्षा विज्ञान को अधिक महत्त्व दिया। मानवीय अंधश्रद्धा, वहम, रूढ़िगत विचारों से ऊपर उठकर विवेक, बुद्धि तथा तर्क से किसी वस्तु के बारे में विचार करने लगा। धर्म का स्थान बुद्धि तथा तर्क ने लिया। हर विषय में धर्म के बजाय मानव को महत्त्व दिया गया। परलोक के काल्पनिक सुख के बदले इस जगत के भौतिक सुख तथा भोगवाद की तरफ लोगों का आकर्षण बढ़ा। इस समय में बुद्धिवाद, मानवतावाद, भौतिकवाद के साथ ही उदारता, विशालता का विकसा हुआ, इसलिए इस युग को नैतिकता विस्मरण युग भी कहते हैं।

धर्मयुद्ध, कांस्टेंटिनोपल (इस्तम्बूल) का पतन, अरबों के साथे के संपर्क तथा भौगोलिक खोजों के कारण अरब-कला, प्राचीन विज्ञान, साहित्य का परिचय हुआ।

नए शहर विकसित हुए। वस्तु विनिमय का स्थान मुद्राव्यवहार ने लिया। इस समय यूरोप में यह युक्ति प्रचलित हुई कि 'स्वतंत्रता की खोज में हो तो शहर में जाओ।' परिणामस्वरूप वेनिस, जिनीवा जैसे नगरों का खूब विकास हुआ। ईसाई विद्वानों ने इटली में ग्रीक तथा लैटिन भाषा की पाठशालाएँ खोलीं। कागज तथा प्रिंटिंग प्रेस की खोज से बड़ी संख्या में पुस्तकें छापी जाने लगीं। जिससे प्राचीन ग्रीस तथा रोम के दार्शनिकों के विचारों का परिचय सामान्य लोगों को हुआ। विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। जस्टीनियन, प्लेटो, एरिस्टॉटल (अरस्तू)। रोजर बेकन आदि के अध्ययन का महत्त्व बढ़ा। इटली, जर्मनी, स्पेन तथा फ्रांस के लोगों के लिए वर्तनी कोष (शब्दकोश) तैयार किए गए।

लियोनार्दो-द-विंसी

इस समय दांते ने अपनी कृति 'डिवाइन कॉमेडी' में धार्मिक विषयों के साथ खगोल, भूगोल तथा भौतिक विज्ञान की समझ दी। इंग्लैंड के अंधकवि मिल्टन ने बाइबल की 'आदम तथा ईव' कथा के आधार पर 'पेरेडाइस लॉस्ट' नामक महाकाव्य लिखा । महान निबंधकार फ्रांसिस बेकन तथा महान नाटककार शेक्सपीयर नवजागरण के समय की देन है। मार्टिन ल्यूथर ने बाइबल का जर्मन भाषा में अनुवाद किया ।

इल काल में लियोनोर्दो-दि-विंसी ने 'मोनालिसा' तथा 'लास्ट सपर' राफेल ने

'मेडोना', 'द स्कूल आफ एथेंस' के भीतचित्र तथा माइकल एंजेलोन रोम में बनाए गए 300 भीतचित्रों तथा चित्रकला को उच्च शिखर पर पहुँचाया। स्थापत्य के क्षेत्र में भी फिलिप्लो, माइकल एंजेलो तथा ब्राम्टे जैसे स्थपतियों ने भवन निर्माण के क्षेत्र में महान् सिद्धि प्राप्त की।

'लास्ट सपर'

धर्म सुधार

ईसाई गिरजाघर (चर्च) संस्था में सुधार के लिए किया गया आंदोलन यानी 'धर्मसुधार' ईसाई धर्म के मूलभूत सिद्धांतों सेवा, सत्य, समानता तथा बंधुत्व के स्थान पर चर्च में प्रविष्ट स्वेच्छाचार, भ्रष्टाचार, शोषण तथा दंभ के विरूद्ध जो प्रचंड आंदोलन हुआ वह 'धर्मसुधार' के रूप में जाना जाता है। अपने निहित स्वार्थों के लिए पादरी, बिशप, तथा ईसाई साधुओं ने ईसु के मानवतावादी उपदेशों को विकृत बना दिया था। ईसु के मूल संदेश को पुनः स्थापित करने तथा ईसाई समाज की पुनर्रचना के लिए प्रजा द्वारा आरंभ किए गए आंदोलन धर्मसुधार के नाम से जाने जाते हैं। ईसु के मूल संदेश - मन की पवित्रता, सादगी, सरलता और ईश्वर की अनुकंपा पर विश्वास रखनेवाले मार्टिन ल्यूथर नामक जर्मन पादरी ने विटेनबर्ग के चर्च के दरवाजे पर 95 मुद्दों की सूची चिपकाई जिसे लोगों का जबरदस्त समर्थन मिला। यूरोप के बहुत से देशों में रोमन कैथोलिक ईसाई धर्म संप्रदाय के खिलाफ विरोध आरंभ हुआ। विरोध करनेवाले लोग प्रोटेस्टंट (protest यात्री विरोध) संप्रदाय के रूप में जाने गए।

धर्मसुधार आंदोलन सच्चे अर्थों में कैथोलिक धर्म की कुछ मान्यताओं का विरोध पोप की निरंकुश सत्ता के लिए चुनौती थी। धर्मगुरुओं के विकृत होते जा रहे जीवन का सुधार करने के प्रयत्नों की प्रक्रिया थी, लोगों की अंधश्रद्धा और अज्ञानता को दूर करने के लिए प्रयास था। ईसु तथा बाइबल के सच्चे संदेश को लोगों में फैलाने का पुरुषार्थ था। कैथोलिक चर्च में बढ़ रही सत्तापिपासा, धन लालसा, अनैतिक दुराचार आदि दूर करने का प्रचंड आंदोलन था।

14 वीं सदी में इंग्लैंड में जॉन विकलिफ ने चर्च की कमियों को लोगों के सम्मुख उजागर किया। उससे पोप द्वारा आज तक बाइबल के नाम पर समझाए जाने वाले बनावटी उपदेशों का लोगों को पता चला, सच्ची समझ मिली। इसलिए पोप तथा चर्च द्वारा विकलिफ का विरोध हुआ। उसकी मृत्यु के बाद उसके समर्थक 'लो लार्डस्' के रूप में जाने गए। उन्होंने चर्च के खिलाफ आंदोलन जारी रखा।

विकलिफ की ही तरह जॉन हस का नाम भी विरोध करनेवालों में अग्रगण्य था। उसे कैद करके जिन्दा जला दिया गया। जॉन विकलिफ, जॉन हस तथा सावोनारोला की असफलता का कारण लोगों की अपरिपक्व समझ तथा धनीवर्ग के साथ का अभाव था।

धर्मसुधार के कारण चर्च तथा पोप की सर्वोपरिता समाप्त हो गई। लोगों को स्वतंत्र रूप से विकसित होने के अवसर मिले। बाइबल के अनुसार सत्य के खोज की स्वतंत्रता मिलने से मात्र धर्म के क्षेत्र में ही नहीं अपितु अन्याय, पाखंड, भ्रष्टाचार और जुल्म के खिलाफ लड़ने की प्रेरणा मिली। इस दृष्टि से यह आंदोलन नवजागरण का पूरक आंदोलन बना। उन दोनों ने मिलकर संयुक्त रूप से आधुनिक यूरोप की रचना की पूर्वपीठिका का निर्माण किया।

प्रतिधर्मसुधार

धर्मसुधार आंदोलन की सफलता से कैथोलिक चर्च संस्था ने अपनी आंतरिक शुद्धि के लिए पोप पोल

तृतीय ने ट्रेंट (जर्मनी) में आयोजित परिषद में कैथोलिक धर्म में कतिपय सुधार किया जो 'प्रतिधर्मसुधार' के नाम से जाने जाते हैं। संत इग्नेशियस द्वारा स्थापित 'सोसायटी ऑफ जीसस' और उसके सदस्य जेस्युईटों द्वारा कैथोलिक संप्रदाय की आंतरिक शुद्धि की प्रवृत्ति की गई। जनता की सेवा का ध्येय स्वीकार करने वाले ये जेस्युईट मिशनरी के रूप में भी पहचाने जाते हैं।

प्रतिधर्मसुधार से कैथोलिक चर्च के प्रति रोष तथा असंतोष में कमी आई। इस संस्था के सदस्य संत फ्रांसिस ज़ेवियर जैसे जेस्युईट ने भारत में कैथोलिक संप्रदाय के प्रचार-प्रसार का काम किया।

वैज्ञानिक आविष्कार

नवजागरण आंदोलन के कारण धार्मिक मान्यता के स्थान पर लोगों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक बना। प्रायोगिक संशोधन आरंभ हुआ। प्राचीन मुद्रणकला में सुधार करके प्रकाशित पोप के लेटर्स आफ इंलजंस और बाइबल का व्यापक स्वागत हुआ। वैज्ञानिक खोजों-आविष्कारों ने यह प्रवृत्ति सरल बना दी। 13 वीं सदी में मानवशरीर पर शल्य प्रक्रिया के प्रतिबंध दूर होने से चिकित्सा के क्षेत्र में अनेक प्रायोगिक पद्धतियाँ विकसित हुई। सर्जरी के क्षेत्र में मानवभ्रूण के अध्ययन द्वारा अनेक रोगों के उपचार की पद्धतियाँ खोजी गईं। फ्रेंच सर्जन एम्ब्रायज ने इस काल में अर्वाचीन सर्जरी की नींव डाली।

इस तरह भौतिकविज्ञान, रसायनशास्त्र तथा खगोलशास्त्र के क्षेत्र में अनेक नए आविष्कार हुए। निकोलस कॉपरनिक्स महान् खगोलशास्त्री था। उसने दूसरे खगोलशास्त्री टोलेमी के 'ग्रहों के भ्रमण के केन्द्र में पृथ्वी है' - इस सिद्धांत को गलत सिद्ध किया। उसने कहा कि पृथ्वी नहीं बल्कि सूर्य है। पृथ्वी उसके चारों ओर घूमती है। कॉपरनिक्स ने परिभ्रमण नामक पुस्तक में ऋतु परिवर्तन तथा पृथ्वी एवं अन्य ग्रहों की जानकारी विस्तारपूर्वक दी है।

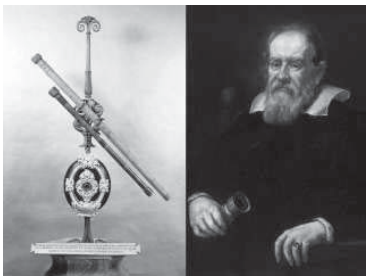

गेलेलियो

दूरबीन की क्रांतिकारी खोज करनेवाले इटली के वैज्ञानिक गैलीलियो ने सभी पदार्थ एक समान गति से नीचे गिरते हैं - यह सिद्ध करके एरिस्टॉटल के 'असमान भार वाले पदार्थ असमान गति से नीचे गिरते हैं' - इस सिद्धांत का खंडन किया। उसने दूरबीन से चर्च उपदेशित स्वर्ग और टोलेमी के सिद्धांतों को गलत सिद्ध किया। यह खोज उसने 'डॉयलोग्स ऑन द टू चीफ सिस्टम्स् ऑफ द वर्ल्ड' में प्रकाशित किया। इससे चर्च तथा धर्मगुरु उससे नाराज हुए। उसे नास्तिक बताकर जेल में बंद कर दिया। इस समय उसे लाचार होकर यह घोषित करना पड़ा कि उसकी खोजें भूलभरी हैं।

न्यूटन

गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत देने वाले प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन ने 'द प्रिंसिपिया' में गति के सिद्धांत समझाए। दृष्टिशास्त्र के बारे में अनेक लेख लिखे हैं तथा कलनशास्त्र की खोज प्रकाशित की है। पोप ग्रेगरी ने जूलियन केलेंडर में सुधार करके पुराने पंचांग को दस दिन पीछे ले जाकर शताब्दी के अंत में लीप वर्ष के अतिरिक्त दिनों को रद्द किया। यह संशोधित पंचांग 'ग्रेगोरियन केलेंडर' के रूप में जाना जाता है।

भौगोलिक संशोधन-खोजें

15वीं और 16 वीं सदी में विश्व के मानचित्र में एकाएक परिवर्तन हुआ। नवजागरण से उत्पन्न जिज्ञासा तथा भारतीय मसाले पाने, पूर्व की आर्थिक समृद्धि को हस्तगत करने, सोना, कीर्ति तथा धर्मप्रचार की लालसा से

अनेक साहसी यात्री जान जोख़िम में डालने के लिए तैयार हुए। 'हेनरी द नेवीगेटर' के रूप में प्रसिद्ध पुर्तगाल के प्रिंस हेनरी ने 'नौकायान शास्त्र' की संस्था स्थापित करके स्थानीय नाविकों को खूब प्रोत्साहित किया। परिणामस्वरूप (ई.स. 1488) बार्थोलोम्युडायेज़ 'केप ऑफ गुड होप' (उत्तमाशा अंतरीय) पहुँचा। तत्पश्चात् इटालियन नाविक क्रिस्टोफर कोलंबस वेस्पुची नामक एक खलासी ने उसकी भूल सुधारी कि वास्तव में वह भारत नहीं बल्कि एक नया महाद्वीप है। यह पता चलने पर उस महाद्वीप का नाम (अमेरीगो वेस्पुची के नाम पर) अमेरिका पड़ा।

पुर्तगाली नाविक वास्को-द-गामा केप आफ गुड होप से आगे भारतीय खलासी अहमद-इब्न-मजीद की मदद से कालीकट बंदरगाह पहुँचा (ई.स. 1498)। उसके बाद पुर्तगाली नाविक फर्डिनांड मेगलन दक्षिणी अफ्रीका से फिलीपाइन्स पहुँचा। उसने पृथ्वी की प्रदक्षिणा करके यह सिद्ध किया कि पृथ्वी गोल है।

संस्थानवाद का उदय

भौगोलिक खोजों के परिणामस्वरूप यूरोपीय राष्ट्रों और सौदागरों में अमेरिका, अफ्रीका, और एशिया में अधिकाधिक इलाकों पर अधिकार करने, कच्चा माल तथा संसाधनों को प्राप्त करने की होड़ शुरू हुई, जिसमें स्पेन और पुर्तगाल के बीच के झगड़ों के निबटारों के एलेक्ज़ांडर छठे ने एटलांटिक महासागर में एक काल्पनिक सीमा तय की थी जिसके पश्चिम में स्पेन तथा पूर्व में पुर्तगाल को प्रदेश दिए। यह रेखा 'पोपलाइन' **(Line of Demarcation)** के नाम से पहचानी जाती है।

बाद में यूरोप के अन्य राष्ट्र भी इस स्पर्धा में जुड़े। आरंभ में व्यापार के लिए गए इन यूरोपियनों ने संस्थानों एवं अपने हितों की रक्षा के लिए सेना रखना शुरू किया और अंत में इन प्रदेशों के शासक बने।

मध्य और दक्षिण अमेरिका में विशेषरूप से लैटिन देशों में पुर्तगाल, स्पेन और फ्रांस ने वहाँ के मूल निवासियों का नाश किया। लैटिन भाषा तथा लैटिन संस्कारों का प्रचार किया। उत्तर अमेरिका में ब्रिटेन तथा फ्रांस ने अपने-अपने संस्थान स्थापित किए। बाद में हालैंड और स्वीडन के निवासी भी यहाँ आए। अफ्रीका महाद्वीप यूरोपीय प्रजा के लिए अंध महाद्वीप ही रहा था। यहाँ सबसे अधिक प्रभाव गुलामों के व्यापार पर पड़ा। यहाँ की हबसी प्रजा को गुलाम बनाने में रुचि रखनेवाली यूरोपियन प्रजा ने पश्चिमी किनारे पर व्यापारिक केन्द्र बनाए और कीमती धातुओं की खानों से आय प्राप्त की।

एशिया तथा चीन में अपने व्यापारिक केन्द्र स्थापित करने में यूरोपीय प्रजाओं में सर्वप्रथम पुर्तगाली सफल रहे। तत्पश्चात् अंग्रेज (ब्रिटेन), डच (हालैंड) और फ्रांसीसियों ने यहाँ व्यापारिक केन्द्र स्थापित किए। हालांकि जापान में यूरोपियन प्रजा केवल व्यापारिक संधि ही कर सकी क्योंकि जापान ने एशिया में स्थापित संस्थानों का तीव्र विरोध किया था।

अमेरिका स्वातंत्र्य संग्राम (1776)

इंग्लैंड ने अपने यहाँ राजतंत्र के विरुद्ध क्रांति करके लोकतंत्र की स्थापना की थी परंतु अमेरिका में अपने राजा का आधिपत्य कायम रखा था। सत्ता स्थापना के लिए यहाँ इंग्लैंड और फ्रांस के बीच हुए सप्तवर्षीय युद्ध में विजय के बाद उसका खर्च वसूल करने के लिए इंग्लैंड ने स्टैम्प एक्ट पर अमल आरंभ किया। उसका विरोध होने पर उसे रद करना पड़ा। उसके बाद नाविक कानून, अयोग्य व्यापारिक कानून और चुंगी द्वारा अमेरिका प्रजा का शोषण किया गया। जिसके विरोध में ईस्ट इंडिया कंपनी के तीन जहाजों में लदी चाय की पेटियाँ समुद्र में फेंक दी। यह घटना अमेरिकी इतिहास में 'बोस्टन-टी-पार्टी' के नाम से प्रसिद्ध है। उसके बाद अमेरिकी संस्थानों की कठिनाइयों पर विचार करने के लिए फिलाडेल्फिया में तीन बैठकें हुई, जिनमें स्वतंत्रता का घोषणापत्र तैयार

किया गया। संस्थानों को स्वतंत्र घोषित किया गया । (ई.स. 1776) उसके बाद 6 वर्ष तक इंग्लैंड और अमेरिका के सैनिकों में दस बड़ी लड़ाइयाँ हुईं। इंग्लैंड के सेनापति लार्ड कार्नवालिस के आत्मसमर्पण से युद्ध समाप्त हुआ। अंत में पेरिस की संधि (इ.स. 1773) के अनुसार इंग्लैंड ने अमेरिकी संस्थानों को स्वतंत्र, सार्वभौम राष्ट्र के रूप में मान्यता दी। इस क्रांति ने विश्व को समावायी प्रजातंत्रात्मक और अध्यक्षीय सरकार, लिखित संविधान, शासन में प्रजा की सहमति का स्वीकार, सभानता, स्वतंत्रता तथा व्यक्ति-स्वातंत्र्य की भेंट दी।

फ्रांसीसी क्रांति (1789)

18 वीं सदी के अंत तक फ्रांस यूरोप के अन्य देशों से आगे था। यहाँ उद्योग-व्यापार के विकास के बावजूद स्वेच्छाचारी राजतंत्र और सामंतशाही में अनेक अनिष्ट थे। इस कारण सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक तथा धार्मिक क्षेत्र में, अराजकता थी। विविध प्रकार के अन्याय को सहनेवाली प्रजा अब जाग्रत हुई थी, उसके परिणामस्वरूप न्यायप्राप्ति के लिए फ्रांस की प्रजा ने क्रांति का मार्ग अपनाया।

अराजकता वातावरण में मोंतेस्क्यू, वाल्तेर, रूसो तथा दिदरो जैसे फ्रांसीसी विचारकों ने प्रजा को वैचारिक रीति से क्रांति के लिए तैयार किया। जिसमें मोंतेस्क्यू ने 'कानून की भावना' नामक पुस्तक द्वारा कानून और संवैधानिक स्वतंत्रता, रूसो ने 'सामाजिक करार' पुस्तक में मानवमात्र की समानता तथा दिदरो ने विशाल विश्वकोश के माध्यम से करव्यवस्था, शासन पद्धति तथा चर्च के अधिकार जैसे विषयों पर साफ-साफ स्पष्टता की।

क्रांति के अंत में 'मानव अधिकारों का घोषणापत्र' प्रकाशित किया गया और फ्रांस का नया संविधान गढ़ा गया। राजा लुई 16 वें) को पदभ्रष्ट करके फ्रांस को गणतंत्र राज्य घोषित किया गया। राजा तथा रानी को देहांत दंड की सजा सुनाई गई (1793)। इस क्रांति के परिणामस्वरूप फ्रांस में मध्ययुगीन सामंतशाही राज का अंत हुआ। गणतंत्रात्मक राज्य की स्थापना हुई। प्रजा में एकता तथा राष्ट्रीयता का उद्‌भव हुआ। स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के अमूल्य सिद्धांत विश्व को दिए। इस क्रांति ने उस समय के फ्रांस के लिए ही नहीं अपितु पूरे विश्व की प्रजा के लिए नूतन युग की शुरुआत की। इस क्रांति से विश्व के पराधीन देशों को स्वतंत्र बनने तथा लोकतंत्र के विचारों को समझने की प्रेरणा मिली। फ्रांस में राजाशाही का अंत होने पर अन्य सत्ताओं ने प्रजासत्ताक के खिलाफ युद्ध घोषित किया परन्तु वे उसमें सफल नहीं हुए।

क्रांति के बाद फ्रांस में थोड़े समय में ही आंतरिक झगड़ों और हिंसा के कारण गणतंत्रात्मक शासन बहुत लम्बे समय तक टिक न सका। उस समय नेपोलियन बोनापार्ट ने फ्रांस में तानाशाही की स्थापना की।

ऐसा होने पर भी महान आदर्शों के प्रति समर्पित इस राष्ट्र ने 75 वर्षों के बाद पुनः गणतंत्र राज्य की स्थापना की । इस क्रांति की सच्ची सफलता उसके आदर्शों तथा सिद्धांतों में निहित थी इसलिए इसका प्रभाव विश्वव्यापी बना।

राष्ट्रवाद का उदय : इटली और जर्मनी के विश्वव्यापी संदर्भ में

इटली का एकीकरण

राष्ट्रवाद के उदय के कारण इटली और जर्मनी में एकीकरण संभव हो सका। फ्रांस की क्रांति तक मात्र भौगोलिक क्षेत्र माना जानेवाला इटली अनेक छोटे-बड़े राज्यों में बँटा हुआ था। वहाँ पर आस्ट्रिया और रोम के पोप की सत्ता थी। नेपोलियन ने रोम में से आस्ट्रियन सत्ता का नाश किया। वहाँ राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए इटली के सभी राज्यों को एक किया। वहाँ दो संघराज्यों की रचना करके उसने इटली में राष्ट्रीय एकता का बीजारोपण किया। परंतु नेपोलियन के बाद वियना सम्मेलन ने इटली में फिर से एक बार छोटे-बड़े राज्यों की स्थापना द्वारा वहाँ राजाशाही स्थापित करके इटली की एकता तथा स्वतंत्रता की भावना

को भिन्न-भिन्न कर दिया। परिणामतः इटली एकबार फिर से उत्तर इटली तथा दक्षिण इटली में बँट गया, जहाँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आस्ट्रिया का अंकुश था। वियना संधि में की गई इस व्यवस्था के प्रति लोगों में भारी निराशा आई और असंतोष बढ़ा। (1820 से 1830) कार्बोनेटी नामक एक गुप्त क्रांतिकारी संस्था द्वारा इटली को आस्ट्रिया के आधिपत्य से मुक्त कराने का प्रयास हुआ, परन्तु सफलता नहीं मिली।

तत्पश्चात् इटालियन राष्ट्रवाद के पैगम्बर माने जानेवाले में जिनी के नेतृत्व में यंग इटली (युवा इटली) संगठन द्वारा किए गए विद्रोह को अपेक्षित सफलता नहीं मिली। इटली के एकीकरण के तीसरे चरण में काबूर ने फ्रांसीसी सम्राट नेपोलियन (तृतीय) की मदद से इटली के कुछ भागों को आस्ट्रिया से खाली कराया। इन प्रदेशों को काबूर ने सार्डीनिया के साथ मिला दिया।

इटली के एकीकरण के अंतिम चरण में गेरीबाल्डी ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उसने अपने 'लाल कमीजधारी दल' के स्वयंसेवकों द्वारा क्रांतिकारियों की मदद की। ई.स. 1860 में सिसली पर कब्जा किया। इस समय नेपल्स की जनता ने भी उसे अपना तेना माना। उसने बहुत ही कम समय (मात्र 5 माह) में विक्टर इमेन्युअल द्वितीय को एकीकृत इटली का राजा घोषित किया।

इस तरह, आस्ट्रिया के आधिपत्य में से रोम के सिवा सभी प्रदेशों को मुक्त कराया । (1866 में) प्रशिया के साथ हुए युद्ध में आस्ट्रिया की हार हुई। इस समय इटली ने अपने बाकी प्रदेशों को ओस्ट्रिया से छीन लिया। रोम स्थित फ्रांसीसी सेना को नेपोलियन ने प्रशिया के विरुद्ध लड़ने के लिए बुलाया। विक्टर इमेन्यअल ने उस समय रोम पर हमला करके उस पर कब्जा कर लिया। वेटिकन शहर को रोम के निवास स्थान के रूप में देकर बाकी बचे रोम को इटली की राजधानी बना दिया गया।

संक्षेप में, इटली में उत्पन्न राष्ट्रवाद, मेज़िनी का नैतिकबल, गेरीबॉल्डी की वीरता, काबूर की उत्कृष्ट कूटनीति, विक्टर इमेन्युअल की बुद्धिमानी और देशप्रेम तथा इटली की जनता का अदम्य उत्साह एवं बलिदान का संयुक्त परिणाम था।

जर्मनी का एकीकरण :

जर्मनी में नेपोलियन बोनापार्ट अपनी सत्ता स्थापित करने के बाद सौ जर्मन राज्यों का एक संघ बनाया। प्रत्येक राज्य के लिए समवायतंत्रीय कार्यप्रणाली अपनाई, इससे समग्र जर्मनी में एक समान शासन प्रणाली लागू हुई। केवल आस्ट्रिया और प्रर्शिया को नेपोलियन ने अभी स्वतंत्र नहीं किया था। उसने समवायतंत्र की सामंतशाही की जगह धार्मिक सहिष्णुता तथा कानून समानता का विचार प्रस्तुत किया। यहाँ सभी राज्यों की भाषा जर्मन थी।

जेना के युद्ध में प्रशिया की नेपोलियन से हार हुई, उससे जर्मन प्रजा में राष्ट्रभावना अधिक प्रबल हुई। नेपोलियन की पराजय के बाद वियेना सम्मेलन ने 39 राज्य ही रखे और उनका एक शिथिल संघ बनाया। आस्ट्रिया उसका अध्यक्ष तथा प्रशिया को उपाध्यक्ष बनाया गया।

तत्पश्चात् (1834) 'ज़ोल्वरिन संघ' (आर्थिक चुंगी संघ) रचा गया जिसमें सिवा आस्ट्रिया के बाकी सभी राज्य थे। इससे जर्मनी की एकीकरण का स्वप्न पूरा होने की आशा पैदा हुई। जर्मनी के एकीकरण का यश प्रशिया के बड़े जागीरदार और जर्मनी के लौहपुरुष बिस्मार्क को दिया जा सकता है। उसने डेनिश युद्ध (1884) तथा फ्रांस-प्रशिया युद्ध (1886) तथा फ्रांस-प्रशिया युद्ध (1870) में आस्ट्रिया और फ्रांस को पराजित किया। परिणामस्वरूप आस्ट्रिया, स्पेन तथा फ्रांस को अपने ही प्रदेश खोने पड़े। अंत में (1871) शक्तिशाली राष्ट्र का उदय हुआ, जिसमें राजाशाही तथा सैन्य प्रमुख थे। बिस्मार्क की रक्त और शास्त्रनीति ने जर्मनी में सैन्यवाद तथा सत्तावाद को पोषित किया, जो अंत में विश्युद्ध में परिणमित हुआ।

इंग्लैंड में संसदीय पद्धति का विकास

इंग्लैंड में रक्तविहीन क्रांति (1688) के बाद संसदीय लोकतंत्र का नया युग आरंभ हुआ। क्रांति के अंत में पार्लामेंट द्वारा पारित 'अधिकार पत्र' राजा और राष्ट्र के बीच एक करार तथा जिसमें कानून और प्रजा की सर्वोपरिता स्वीकार की गई और राजशाही को संवैधानिक रूप दिया गया। 'म्युटिनी एक्ट' तथा 'सिविल एक्ट' द्वारा प्रजा की स्वतंत्रता छीन लेने की राजा के अमर्यादित अधिकार का अंत हुआ। त्रिवार्षिक कानून द्वारा समाचारपत्रों को स्वतंत्रता मिली। एक्ट आफ सेटलमेंट द्वारा प्रजा को अपने अधिकार और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए कानूनी रक्षण प्राप्त हुआ। ज्यार्ज प्रथम गद्दी पर बैठा तब अंग्रेजी भाषा के उसकी अज्ञानता का लाभ उठाकर पार्लामेंट ने हाउस ऑफ लॉर्ड (राज्यसभा) को नियंत्रित करके, निम्नसदन लोकसभा (हाउस ऑफ कॉमन) की सर्वोपरिता स्थापित की। इसी समय लोकसभा (पार्लामेंट) के सार्वभौमत्व का विकास हुआ। मंत्रिमंडल तथा पक्ष पद्धति का स्वरूप स्पष्ट हुआ। संसद द्वारा प्रधानमंत्री को वास्तविक सत्ता प्रदान की गई। 19 वीं सदी के आरंभ में ब्रिटेन में कोई भी एकाधिकारवादी राजा, वहाँ की संसदीय पद्धति के विकास को रोक न सका।

इतना होने के बावजूद मताधिकार तथा संसदीय प्रतिनिधित्व की जो प्रथा मध्यकाल में थी वह यथावत् रही क्योंकि पार्लामेंट के दोनों सदन तथा सरकार में धनी वर्ग ही मतदान कर सकता था। उसके प्रतिनिधि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उमरावों (सामंतों) के वर्चस्व के अधीन रहते, इस दृष्टि से पार्लामेंट में उमरावों का वर्चस्व रहता। तत्पश्चात् लंबे संघर्ष के बाद कानूनी तौर पर मध्यमवर्ग के प्रत्येक वयस्क स्त्री-पुरुष को गुप्त मतदान का अधिकार प्राप्त हुआ। इस तरह 20 वीं सदी के आरंभ में इंग्लैंड की शासन पद्धति को संपूर्ण संसदीय लोकतंत्र का स्वरूप दिया गया।

समाजवादी विचारधारा का उद्‌भव

समाजवादी (सोशियालिज़्म) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग इंग्लैंड के रॉबर्ट ओवन की फ्रेंच पत्रिका 'लेग्लोब' (1832) में हुआ।

समाजवाद की निश्चित व्याख्या करना कठिन है क्योंकि समाजवादी विचारक फेडरिक लिस्ट और थॉमस पूँजीवाद की निन्दा करने के साथ मध्ययुगीन सामंतशाही को आर्थिक क्षेत्र में मान्य नहीं रखते थे। सिस्मोंकी ने समाज में उत्पन्न हो रही विसंवादिता की समझ दी तो प्रुर्दो ने मजदूरों को ही मालिक मानकर मालिक को मिलनेवाले भाड़े, व्याज, लाभ इत्यादि देने का विरोध किया। थॉमस कोलॉईल मालिक-मजदूर के बीच के सहयोग को आवश्यक मानते हैं। जॉन ग्रे ने श्रमिक के अतिरिक्त अनुत्पादक वर्गों को समाज के लिए भाररूप गिना है। सेंट सियोन और कुरिओ सामूहिक स्वामित्व के सिद्धांत के हिमायती थे। उसके साथ ही व्यक्तिगत सुख और उसके लिए उत्पादन पर सामाजिक नियंत्रण के समर्थक थे। इसके लिए आर्थिक तथा सामाजिक आयोजन द्वारा संविधान का राज्य होना चाहिए। इस तरह हर विचारक ने समाजवाद के लिए अपने अलग-अलग विचार प्रस्तुत किए हैं। संक्षेप में कहें तो, 'उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व के स्थान पर सार्वजनिक स्वामित्व के अधिकार के स्वीकार का सिद्धांत समाजवाद की नींव में है।'

समाजवादी आंदोलन की आत्मा जैसे ट्रेड यूनियन आंदोलन की प्रवृत्ति का रॉबर्ट ओवन ने नेतृत्व किया था। उसके आंदोलन का स्वरूप पूँजीवाद के साथ संघर्ष को बदले समाधान और हिंसा की जगह समझा-बुझाकर हृदय परिवर्तन करना था। उसने श्रम या कामदार की सहकारी प्रवृत्तियों का विकास किया। श्रम कल्याण के कानूनों को मान्यता दिलाकर आंदोलन को सफल बनाया। इस तरह समाधान और समझाने में विश्वास रखनेवाले ओवन जैसे लीएन कार्ल, सेंट साइमन तथा कुर्टो जैसे समाजवादी नेताओं ने कार्ल मार्क्स

जैसे समाजवादी, साम्यवादी चिंतक धुनी या तरंगी कहते थे। फिर भी समाजवाद में दिए गए उनके प्रदान को मार्क्स ने भी स्वीकार किया है।

सामान्य रूप से इस समय पूँजीवादी विचारधारा का विरोध करनेवाले सभी को समाजवादी माना जाता था। मार्क्स को भी एक महत्त्वपूर्ण समाजवादी विचारक, माना जाता है। उसने प्रत्येक व्यक्ति के लिए 'साम्यवाद' को श्रेष्ठ माना। उनके अनुयायी अपने को समाजवादी से अलग साम्यवादी कहलवाते हैं।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) नवजागरण के लिए कौन-से परिबल उत्तरदायी थे?

(2) धर्मसुधार का स्वरूप समझाइए।

(3) नवजागरण काल के वैज्ञानिक आविष्कारों के विषय में संक्षेप में बताइए।

(4) फ्रांसीसी क्रांति के परिणाम बताइए।

(5) समाजवादी विचारधारा के उद्‌भव और विकास के बारे में संक्षेप में लिखिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) नवजागरण अर्थात् क्या?

(2) प्रतिधर्मसुधार यानी क्या?

(3) निकोलस कॉपरनिक्स ने टोलेमी की किस मान्यता का खंडन किया?

(4) नौकायनशास्त्र की संस्था किसने और कहाँ स्थापित की?

(5) अमेरिकी क्रांति ने विश्व को किन नए विचारों की भेंट दी?

3. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) 'मोनालिसा' तथा 'लास्ट सपर' का कर्ता कौन था?

(अ) राफेल (ब) मिल्टन (क) लियोनार्डो-द-विंसी (ड) मेडोना

(2) सोसायटी ऑफ जीसस के सदस्य किस नाम से जाने जाते थे?

(अ) जेस्युइट (ब) जेरूसलेम (क) पोप पोल (ड) बेस्युची

(3) 'यंग इटली' का नेतृत्व किसने किया?

(अ) गेरीबॉल्डी (ब) जॉन हस (क) मेज़िनी (ड) विकलीफ

(4) 'बोस्टन-टी-पार्टी' घटना किस क्रांति से संबंधित है?

(अ) अमेरिकी क्रांति (ब) फ्रांसीसी क्रांति

(क) इंग्लैंड क्रांति (ड) नेपोलियन बोनापार्ट

(5) जर्मनी के लौह पुरुष कौन थे?

(अ) हिटलर (ब) मुसोलिनी

(क) बिस्मार्क (ड) नेपोलियन बोनापार्ट

●

12 19वीं सदी के अंत में विश्व की स्थिति से प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति तक

प्रथम विश्वयुद्ध

प्रथम विश्वयुद्ध को 20 वीं सदी की युगप्रवर्तक अविस्मरणीय घटनाओं की सूची में अग्रिम स्थान पर अवश्य रखा जा सकता है। (1914-18) इस युद्ध का प्रभाव समान्य लोगों तक पड़ा था। उसका कारण अजोड़ तथा परिणाम युगप्रवर्तक थे। वे एक ऐतिहासिक युग के अंत तथा नए युग के आरंभ का संकेत दे रहे थे। ऐसी अभूतपूर्व घटना के पीछे कोई एक ही कारण उत्तरदायी नहीं हो सकता, उनमें से कुछ कारणों का विवेचन नीचे दिए गए रूप में दर्शाते हैं।

प्रथम विश्वयुद्ध के कारण

संकुचित एवं विकृत उग्र राष्ट्रवाद : 19वीं सदी में विकसित हुए राष्ट्रवाद ने प्रथम विश्वयुद्ध के लिए आधार की भूमिका बनाई। आरंभिक वर्षों में उदार राष्ट्रवाद के कारण ग्रीस, इटली, जर्मनी इत्यादि में स्वतंत्र राष्ट्रों का सृजन हुआ। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप उदार राष्ट्रवाद ने उग्र और संकुचित राष्ट्रवाद का स्वरूप लिया। यूरोप के अधिकांश राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की कीमत पर भी प्रगति सिद्ध करने में प्रवृत्त हुए। यूरोप के प्रत्येक राष्ट्र की इस स्वार्थी भावना के उग्र राष्ट्रवाद का स्वरूप धारण करने पर इस महायुद्ध का उद्‌भव हुआ।

साम्राज्यवाद : यूरोप की औद्योगिक क्रांति ने पूँजावाद, संस्थानवाद तथा साम्राज्यवाद को जन्म दिया। इसके लिए यूरोपीय राष्ट्रों ने एशिया और अफ्रीका के देशों में साम्राज्यवादी प्रवृत्ति शुरू की। उद्योग के लिए आवश्यक कच्चामाल प्राप्त करने तथा तैयार माल के लिए बाजार पर एकाधिकार पाने के लिए स्पर्धा शुरू हुई। इसके कारण जो प्रभावक्षेत्र मिले वहाँ अपनी सत्ता स्थापित करने के संघर्ष यूरोपीय देशों के बीच में शुरू हुए।

सैन्यवाद : यूरोप के प्रत्येक राष्ट्र को उग्र राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद की दौड़ में सफल होने या टिके रहने के लिए शस्त्रसज्ज होना और उस में भी विशेष रूप से नौसेना में वृद्धि करना अनिवार्य हो गया था। उग्र राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद के परिणामस्वरूप विश्व महायुद्ध की तरफ धकेला गया। ऐसे में हर राष्ट्र को अपने स्वबचाव के लिए सैन्य की सज्जता में वृद्धि करने की आवश्यकता महसूस हुई।

क्षेत्रीय संघर्ष : वियना काँग्रेस (1815) द्वारा प्रदेशों के अयोग्य बँटवारे के प्रति राष्ट्रवाद के कारण सरहद को लेकर असंतोष पनप रहा था। जर्मनी, इटली, बेल्जीयम आदि राष्ट्रों ने अपनी शक्ति में वृद्धि के लिए प्रदेश जीतकर उनका एकीकरण किया था। उसी के नक्शे कदम पर आस्ट्रिया ने भी 'स्लाव' लोगों की आबादीवाले राज्यों पर अपना दावा पेश किया था। रूस भी बाल्कन जलडमरूमध्य पर अधिकार करना चाहता था। यह प्रादेशिक संघर्ष आपसी शांति की बड़ी चुनौती थी।

गुप्त संधियाँ तथा राष्ट्रों की गुटबंदियाँ : गुप्त संधियों तथा राष्ट्रों की गुटबंदी प्रत्येक राष्ट्र के लिए शंका तथा चिंता की स्थिति पैदा की । इसका आरंभ बिस्मार्क ने किया था। उसके समय दरम्यान और उसके बाद भी यूरोप की राजनीति जर्मनी-आस्ट्रिया के बीच द्विराज्य संधि (1879) हुई । उसके खिलाफ़ रूस और फ्रांस के बीच में भी सम्मेलन (1994), फ्रांस, इटली के बीच मैत्री समझौता (1902), इंग्लैंड और फ्रांस के बीच मैत्री करार (1904), इंग्लैंड और रूस के बीच मैत्री संधि (1907) तथा रूस और बाल्कन देशों के बीच संधिकरार आदि संधियाँ शुरू हुईं।

इनके अतिरिक्त भी विभिन्न देशों के राजपुरुषों तथा कूटनीतिज्ञों में गुप्त मंत्रणाएँ, गुप्त मुलाकातें तथा गुप्त

पत्रव्यवहार हुए थे। शायद उनका उद्देश्य आक्रमण या विरोधी गुट को हानि पहुँचाना नहीं भी रहा हो परन्तु इससे आंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में शंका तथा भय का वातावरण छा गया था।

समाचारपत्रों का विघातक प्रभाव : इस काल में समाचार पत्र अपनी नीतियों के कारण दो राष्ट्रों के बीच के झगड़े या मतभेदों का अतिशयोक्तिपूर्ण सूचनाएँ देकर या उस पर टीका-टिप्पणी करके अथवा लेखों द्वारा प्रत्याक्रमण करके लोगों की राष्ट्रीय भावना को भड़काते थे।

जर्मनी की महत्त्वाकांक्षा : जर्मनी साम्राज्यवादी राष्ट्र बनने की स्पर्धा में पिछड़ गया था। इंग्लैंड जैसा महान साम्राज्य बनने की उसकी महेच्छा थी। दुनिया में जर्मनी को अग्रस्थान पर प्रस्थापित करने के लिए अत्यंत महत्त्वाकांक्षी राजा कैसर विलियम ने जर्मन कारखानों में शस्त्र का उत्पादन बढ़ाना शुरू किया। युद्ध के लिए आवश्यक सैनिक तथा नौकादल भी तैयार किए थे। पूरी दुनिया में 'जर्मनी सबसे आगे है', ऐसी घोषणा बारबार करके वह दुनिया में भय फैला रहा था।

शक्तिशाली मध्यस्थ संस्था का अभाव : यूरोपीय राष्ट्र अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए था। अपनी इच्छा के कारण मनमाने ढंग से व्यवहार करते थे। उस समय उन पर नियंत्रण लगाए ऐसी कोई शक्तिशाली मध्यस्थ संस्था न थी, उसे प्रथम विश्वयुद्ध के लिए 'नकारात्मक' कारण माना जा सकता है। 'हेग परिषद' (1898-1907) के परिणामस्वरूप आंतरराष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना हुई थी। परन्तु अपने निर्णयों को दोनों पक्षों को स्वीकार करवाने या लागू करवाने जितनी शक्ति या सत्ता उसके पास नहीं थीं। आतरराष्ट्रीय झगड़ों के निबटाने, प्रश्नों का हल या समस्या का समाधान कर सकने जितनी क्षमता भी संभवत: उसके पास नहीं थीं। इस तरह उस समय ऐसी मध्यस्थ सत्ता या संस्था का अभाव था जिसकी तटस्थता में सभी राष्ट्रों को विश्वास हो, अत: उसके अभाव में राष्ट्रों के बीच के तनाव को दूर नहीं किया जा सका।

तात्कालिक कारण/आस्ट्रिया की राजगद्दी के उत्तराधिकारी की हत्या : आस्ट्रिया की राजगद्दी के उत्तराधिकारी आर्क ड्यूक फर्डिनांड अपनी पत्नी के साथ खुली बग्घी में सैनिक परेड का निरीक्षण करने जा रहे थे (28 जून 1914) उस समय बोस्निया की राजधानी साराजेवो में दोनों की हत्या हुई। आस्ट्रिया की सरकार ने इस घटना में सर्बिया पर उसका हाथ होने का आरोप लगाया। सर्बिया ने इस पर माफी माँगी परन्तु उसे अस्वीकृत करके आस्ट्रिया ने सर्बिया के खिलाफ युद्ध की घोषणा की। आस्ट्रिया के मित्र जर्मनी ने फ्रांस तथा रूस के विरुद्ध युद्ध घोषित किया। जर्मनी ने फ्रांस पहुँचने के लिए तटस्थ राष्ट्र बेल्जियम से उसके प्रदेश में से होकर जाने की अनुमति माँगी परन्तु वह न मिलने के बावजूद जर्मन सेना ने बेल्जियम में प्रवेश किया। जर्मनी द्वारा आंतरराष्ट्रीय समझौते को भंग करने के लिए इंग्लैंड के भी युद्ध में प्रविष्ट (5 अगस्त 1914) होने से विश्व दो गुटों में बँट गया और विश्व के इतिहास में प्रथम विश्वयुद्ध का आरंभ हुआ।

युद्ध की घटनाएँ : प्रथम विश्वयुद्ध में विश्व 'मित्रराष्ट्र' तथा 'धुरीराष्ट्र' जैसे दो गुटों में बँट गया। मित्रराष्ट्रों में अमेरिका, फ्रांस, इंग्लैंड, रूस, सर्बिया, पुर्तगाल, इटली, जापान, ग्रीस, रूमानिया और धुरी राष्ट्रों में जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगेरी, बल्गेरिया और तुर्की थे। बहुत लम्बे समय तक इटली तटस्थ रहा था परंतु युद्ध में मित्रराष्ट्रों की विजय निश्चित लगने पर वह मित्रराष्ट्रों के साथ जुड़ गया था। इटली और आस्ट्रिया के बीच हुए युद्ध में जर्मनी की मदद से आस्ट्रिया ने इटली को हराया। जर्मनी ने बल्गेरिया की मदद से मित्र राष्ट्रों ने सर्बिया को हँफाया। जर्मनी ने रूमानिया पर कब्जा किया। मित्रराष्ट्रों के निरंतर पराजय के कारण उन्होंने समुद्री मार्ग से जर्मनी को मिलनेवाली खाद्यसामग्री तथा अन्य जरूरी माल की मदद रोक दी। इसके प्रत्युत्तर में जर्मनी ने मित्रराष्ट्रों के जहाजों को डुबो देने के लिए सबमरीन युद्ध किया तथा जहरीली गैस का उपयोग आरंभ किया तब इंग्लैड ने भी टैंक युद्ध आरंभ कर दिया।

आरंभ में मित्रराष्ट्रों की पराजय होने के बावजूद (1916) के बाद में मित्रराष्ट्रों का पलड़ा भारी पड़ने

लगा। आज तक तट्स्थ रहे देशों के मालवाहक जहाजों को डुबो देने की जर्मनी द्वारा घोषणा किए जाने पर अमेरिका ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। युद्ध में जर्मनी के सम्मुख रूस की पराजय के बाद 1917 में रूस के ज़ार निकोलस द्वितीय ने गद्दी छोड़ी। बल्गेरिया ने शस्त्र रख दिए तथा तुर्की ने आत्मसमर्पण किया। आस्ट्रिया भी शस्त्र विराम करके युद्ध से अलग हो गया। परिणास्वरूप धुरी राष्ट्रों में जर्मनी के अकेला पड़ जाने से उसकी युद्ध के प्रत्येक क्षेत्र में पराजय होने लगी। युद्ध से थक गई जर्मन प्रजा ने राजा विलियम के गद्दी छोड़ने की माँग की। जमीनी तथा समुद्री मोर्चों पर लगातार पराजय होने पर जर्मन सैनिकों ने (11 नवम्बर, 1918) मित्र राष्ट्रों के सम्मुख आत्मसमर्पण किया और प्रथम विश्वयुद्ध का अंत हुआ।

इस तरह जो युद्ध आरंभ में मात्र आस्ट्रिया और सर्बिया के बीच का स्थानीय संघर्ष माना जा रहा था वह विश्वयुद्ध में बदल गया। वास्तव में इस महायुद्ध में विश्व के अधिकांश देशों ने कोई न कोई भूमिका किसी न किसी रूप में निभाई हो, ऐसा मानव इतिहास का सर्वप्रथम युद्ध था।

प्रथम विश्वयुद्ध के परिणाम

पेरिस शांति परिषद :

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद के वर्ष (18 जनवरी, 1919) फ्रांस के राजधानी पेरिस में वर्सेल्स के 'आयना महल' में युद्ध विजेता मित्रराष्ट्रों की परिषद आयोजित हुई, जिसका उद्देश्य प्रथम विश्वयुद्ध में पराजित राष्ट्रों के साथ शांति समझौते की शर्तों पर विचार करना तथा यूरोप की पुनःव्यवस्था करना था। पेरिस की इस शांति परिषद ने वर्सेल्स की तथा अन्य शांति संधियाँ कीं जिससे यूरोप में अनेक राजनैतिक परिवर्तन हुए। विशेषतया पराजित राष्ट्रों के साथ ने वर्सेल की तथा अन्य शांति संधियाँ की, जिससे यूरोप में अनेक राजनीतिक परिवर्तन हुए। विशेषतया पराजित राष्ट्रों के साथ किए गए विभिन्न समझौतों में महासत्ताओं के स्वार्थ को ही ध्यान में रखा गया था। पेरिस की इस शांति परिषद में हुई वर्सेल्स की यद संधि प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध के बीच के समय की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संधि मानी जाती है।

वर्सेल्स की संधि (28 जून, 1919) :

इस संधि का मसौदा बनाने में अमेरिकी राष्ट्रपति वुड्रो विल्सन, ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉइड ज्यॉर्ज तथा फ्रांसीसी राष्ट्रपति क्लेमेंसो ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। विशेष रूप से फ्रांस के प्रादेशिक दावों, इटली की कतिपय माँगों तथा संस्थानों की समस्याओं को हल करने के प्रयास हुए थे। जैसे कि युद्धदंड, निःशस्त्रीकरण, सेना, क्षेत्रीय व्यवस्था, युद्ध-मुआवज़ा प्राप्त करने का प्रावधान आदि का समावेश हुआ था। जर्मनी के लिए यह संधि अत्यंत कठोर, क्रूर, कड़ी और वैरवृत्तियुक्त थी। समग्र युद्ध के लिए मानो एक मात्र जर्मनी ही जिम्मेदार हो इस तरह उस पर अन्यायी, अपमानजनक ढंग से 6.6 अरब पाउंड का दंड लगाया गया था, जिससे उसे अपने अनेक खनिज संपत्तिवाले प्रदेश खोने पड़े थे। अन्य प्रजाओं की राष्ट्रीयता को ध्यान में रखकर उन्हें बहुमतिवाले प्रदेश दिए गए थे जब कि जर्मनी के पास से उलटे जर्मन आबादीवाले प्रदेश ले लिए गए थे।

संक्षेप में, यह संधि ताकत की धमकी से की गई थी। उसे आपसी समझौते या सहानुभूति का समर्थन न था। यह संधि मानो विजयी राष्ट्रों को पराजित राष्ट्रों को लूटने का अधिकार दे रही थी। वह बर्बरता भरे सिद्धांत पर आधारित थी। इस कारण ही कुछ विवेचकों ने प्रथम विश्वयुद्ध के लिए जिस तरह फ्रैंकफर्ट की संधि (1871) को उत्तरदायी माना है उसी तरह द्वितीय विश्वयुद्ध के लिए इस वर्सेल्स की संधि (1919) को मानते हैं। जैसा कि, लार्ड ब्राइस ने कहा कि, ''शांति केवल संतोष से आ सकती है, इन संधियों से असंतोष ही उत्पन्न होगा और उसका परिणाम क्रांति या युद्ध ही होगा।'' आनेवाले बीस वर्ष में ही उसकी भविष्यवाणी सच सिद्ध होनेवाली थी और विश्व फिर से विश्वयुद्ध की ज्वालाओं की लपेट में आ गया था।

प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी के अतिरिक्त अन्य पराजित राष्ट्रों के लिए इस शांतिपरिषद (1919 से 1920)

के दरम्यान आस्ट्रिया के साथ जर्मनी की संधि, बल्गेरिया के साथ न्वीली की संधि, हंगेरी के साथ ट्रियोना की संधि तथा तुर्की के साथ सेव्रे की संधि की गई थी।

विवेचकों के मतानुसार पेरिस की शांति परिषद राजनीतिज्ञों की महा निष्फलता थी, क्योंकि इससे विजेताओं तथा पराजितों दोनों को असंतोष रहा था और भावी पीढ़ी के लिए विषम वातावरण उत्पन्न हुआ था।

जनहानि :

इसके पहले इतनी बड़ी संख्या में मानव कभी भी किसी युद्ध में शामिल नहीं हुए थे, इसलिए जनहानि भी बड़े पैमाने पर हुई। युद्ध में टैंक, जहरीली गैस, बम, हथगोला, पनडुब्बी, लड़ाकू विमानों आदि अनेक नए घातक और भयानक शस्त्र-युद्ध सामग्री का प्रयोग हुआ था। परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर जन-धन हानि हुई थी। ऐसी गणना की गई है कि इस विश्वयुद्ध में कुल मिलाकर 30 देशों के 80 लाख से अधिक लोग मारे गए थे। तीन करोड़ घायल हुए अथवा कैदी बने या गुम हो गए थे।

राजनीतिक :

प्रथम विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप विश्व पर यूरोप के आधिपत्य का अंत हुआ। एशिया-अफ्रीका में स्वतंत्रता, लोकतंत्र और राष्ट्रवाद आरंभ हुआ। यहाँ की प्रजाओं को साम्राज्यवादी शासकों का सामना करने की प्रेरणा मिली। इटली में फ़ांसीवाद, जर्मनी में नाज़ीवाद का जन्म हुआ। जापान ने सैन्यवाद के सहारे विश्व की महासत्ताओं में स्थान पाने का प्रयत्न किया । युद्ध की समाप्ति पर अमेरिका ने पराजित तथा विजेता अने यूरोपीय राष्ट्रों को उनकी पुनर्स्थापना के लिए आर्थिक सहायता दी, जिससे यूरोप में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी। संक्षेप में, आंतरराष्ट्रीय संबंधों के विकास को प्रथम विश्वयुद्ध का महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिणाम गिना जा सकता है।

आर्थिक :

इस युद्ध में अपार धनहानि हुई थी। विद्वानों के मतानुसार यदि खर्च की गणना करें तो कुल मिलाकर 560 करोड़ पाउन्ड खर्च हुए। इसके अलावा मित्रराष्ट्रों तथा धुरीराष्ट्रों के परोक्ष नुकसान की कोई गिनती ही नहीं की जा सके, ऐसा है। युद्ध के कारण जीवनजरूरी वस्तुओं का उत्पादन कम हुआ, भाववृद्धि हुई, मुद्रा की कीमत घटी, व्यापार-उद्योग छिन्न-भिन्न हो गए। राष्ट्रीय ऋण को चुकाने के लिए प्रजा पर असह्य कर लादे गए। यूरोप तथा विश्व के अनेक देशों में महामंदी (1929) की लहर आई। उसे भी प्रथम विश्वयुद्ध का परिणाम माना जा सकता है।

सामाजिक :

प्रथम विश्वयुद्ध के प्रभाव से सामाजिक क्षेत्र में क्रांतिकारी कहे जा सकें, ऐसे कुछ परिणाम आए। युद्ध में बड़ी संख्या में पुरुष मारे गए। समाज में स्त्रियों की संख्या बढ़ गई। नौकरी, व्यापार-धंधों को सँभालने की जवाबदारी स्त्रियों के सिर पर आयी। इससे स्त्रियों में आत्मविश्वास और आत्मसम्मान की भावना विकसित हुई। समाज में स्त्रियों का स्थान महत्त्वपूर्ण बना। प्रत्येक देश में स्त्री मताधिकार के लिए आंदोलन होने लगे।

स्त्रियों की तरह मजदूरों का भी महत्त्व बढ़ा। मजदूर आंदोलन को वेग मिला। मजदूर जाग्रत हुए। मजदूर पक्षों की रचना हुई। राजनीतिक दलों में उनका महत्त्व बढ़ा।

संक्षेप में, ऐसा कहा जा सकता है कि परिणाम की दृष्टि से प्रथम विश्वयुद्ध केवल यूरोपीय इतिहास में ही नहीं, अपितु विश्व इतिहास की एक युगप्रवर्तक घटना थी।

प्रथम विश्वयुद्ध का भारत पर प्रभाव

ब्रिटिश साम्राज्य के एक भाग के रूप में बेशक भारत प्रत्यक्ष रूप से सीधे विश्वयुद्ध में शामिल नहीं था, फिर भी भारत पर उसका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव अवश्य पड़ा था। मित्रराष्ट्रों की सहायता के लिए भारतीय साधन-सामग्री का उपयोग किया जाता था। युद्ध में आदमियों, नकद रकम सहायता के रूप में ली जाती थी, जिसे वे भारत की ओर से भेंट गिनते थे।

युद्ध के दौरान अन्य देशों की भाँति भारत का व्यापार भी एकदम बिखर गया था। भारत को अपनी जरूरतें अनिवार्यत: स्वयं पूरी करनी पड़ी। परिणामस्वरूप भारत में सूत तथा पटसन जैसे पुराने तथा युद्धकालीन नए उद्योग तेजी से बढ़े। सरकार ने अब तक जिसकी उपेक्षा की थी, ताता का वह लौह-इस्पात का कारखाना महत्त्वपूर्ण बना। परदेश में से मशीनों तथा यंत्रों का आयात बढ़ा। विदेशी माल की स्पर्धा के अभाव में पूँजीपतियों ने लाभ की मात्र बढ़ाई थी। मजदूरी की दर बढ़ी। जीवन की आवश्यक चीजें मँहगी हुई, इससे उलटे मजदूरों की आर्थिक दशा बिगड़ी।

युद्ध में भारत के जमींदारों तथा काश्तकारों को सैनिकों की पूर्ति के लिए विवश किया गया। विशेषरूप से पंजाब में से सैनिकों की भर्ती जबरदस्ती की गई। परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार की तरफ रोष फैला।

बुद्धिजीवियों विशेषरूप से बुद्धिजीवी बेकारों ने इंग्लैंड की तकलीफ को अपने देश के लिए सुअवसर माना। उन्होंने निष्क्रियता त्यागकर देश के लिए विविध मांगें आरंभ की। जेल से बाहर आने पर लोकमान्य तिलक ने होमरूल लीग की स्थापना की। दूसरी होमरूल लीग की स्थापना एनी बेसंट ने की थी जिससे लोगों को ब्रिटिश शासन का विरोध करने के लिए जाग्रत किया।

संक्षेप में, गोपालकृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, बिपिनचंद्रपाल, श्रीमती एनी बेसंट जैसे क्रांतिकारी नेतृत्व में भारत में स्वराज के लिए माँगें तेज हुईं, इसलिए ब्रिटिश सरकार ने अनेक सुधारों के लिए वचन दिए। भारत में जाँच कार्य शुरू किए। वाइसरॉय मांटेग्यू और भारतीय मामलों के मंत्री चेम्सफर्ड के सुझावों के आधार पर कतिपय परिवर्तन तथा सुधार-मोंटफर्ड सुधार के नाम से घोषित हुआ। भारत में सुधारों के लिए ऐसे कामचलाऊ प्रस्तावों पर विवाद जगे तथा उनका विरोध हुआ। विश्वयुद्ध पूरा होने पर भारत में सर्वत्र परिवर्तन की प्रबल अपेक्षाएँ बढ़ीं और इस समय पूर्णस्वराज्य के लिए पूर्वभूमिका तैयार हुई।

रूसी क्रांति (1917)

जिस समय प्रथम विश्वयुद्ध चल रहा था उसी बीच रूस में क्रांति हुई थी, जिसे समग्र विश्व के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना माना जा सकता है। इसे एक विशिष्ट क्रांति माना जा सकता है। उसके नेतागण राष्ट्र में परिवर्तन लाने की निश्चित समझ के साथ क्रांति से जुड़े थे। रूस की इस वोल्शेविक क्रांति में समाजवादी विचारक कार्ल मार्क्स के विचारों का व्यापक प्रभाव था। इस क्रांति के नेताओं ने मार्क्स के सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए साम्यवादी विचारधारा का प्रचार किया।

रूसी क्रांति के कारण

राजनीति स्थिति : स्वेच्छाचारी, निरंकुश जारशाही : रूस के रोमेनोफ वंश के राजा अपने को ज़ार (सम्राट) कहलावाते थे। रूस का अंतिम सौ वर्षों का ज़ार शासन सर्वसत्ताधीश, स्वेच्छाचारी, अत्याचारी, निरंकुश तथा त्रासदायी शासकों का था। ज़ार निकोलस प्रथम ने अपनी संकुचित विचारधारा के कारण पाश्चात उदारमतवादी वाले साहित्य को प्रतिबंधित किया। रूसियों को विदेशयात्रा करने पर रोक लगा दी गई। परिणामस्वरूप जिस समय यूरोप में सुधारवादी युग शुरू हुआ उस समय भी रूसी प्रजा मध्ययुगीन स्वेच्छाचारी राजतंत्र के नीचे पिस रही थी। ज़ार अलेक्ज़ांडर द्वितीय इतना अत्याचारी था कि उसने क्रांतिकारियों की हत्या

करवायी। रूस का अंतिम सम्राट ज़ार निकोलस द्वितीय (1894-1917) ने समाचारपत्रों, यूनिवर्सिटियों, मुद्रण प्रेसों पर कठोर नियंत्रण रखा। यहूदियों तथा गैररूसियों पर जुल्म करता था। निर्दोष लोगों पर आरोप लगाकर उन्हें साइबेरिया के अतिशय शीतवाले प्रदेश में कैद किया जाता था।

प्रशासन तंत्र : ज़ार राजशाही प्रशासन के सर्वोच्च पद पर स्वयं ज़ार शासक थे जिनमें प्रशासनिक कुशलता का अभाव था। ज़ार की सत्ता निरंकुश थी। राज्य की प्रत्येक सत्ता ज़ार के हाथ में थी। प्रजा का दु:ख दर्द जानने या प्रकट करने के लिए कोई कानून न था। ज़ार का प्रशासनतंत्र कीतना अक्षम, भ्रष्ट तथा सड़ा हुआ था कि उसे प्रशासक को प्रजा का दु:ख-दर्द समझने, दूर करने की उसके पास कुशलता या फुरसत न थी। ज़ार निकोलस द्वितीय का मनोबल कमजोर था वह सदा अपनी रानी तथा रास्पुटिन नामक तांत्रिक के प्रभाव में रहा। यह रास्पुटिन (अर्थ-गंदा कुत्ता) को मंत्रिमंडल में भी स्थान दिया गया। ज़ार ऐसे अयोग्य मंत्री के कहने के अनुसार प्रत्येक काम करता था। शासन तंत्र की रचना में प्रजा की कोई भागीदारी न थी। प्रजा का विचार करने के बजाय ज़ार की अपनी महत्त्वाकांक्षाओं, शौक, वैभव-विलास तथा युद्ध खर्च प्रजा को भोगना पड़ता था।

संक्षेप में, अत्याचारी ज़ारशाही के रूसी प्रजा की गरीबी, दु:ख तथा यातना का कारण बन जाने से अंत में जनता का रोष या असंतोष इस क्रांति का मूल कारण बना।

आर्थिक कारण : उस समय रूस एक कृषि प्रधान देश था, फिर भी किसानों की दशा सुधारने के लिए राज्य द्वारा कोई प्रयत्न नहीं हुआ था। कम पैदावार के कारण अपने परिवार का पालन-पोषण, उपरांत सरकार तथा प्रांतों को प्रजा द्वारा दिए जानेवाले विभिन्न कर-चुंगियाँ बहुत अधिक थीं। उपरांत (1891 से 1901) अनेक अकालों में भी कर वसूली के लिए अधिकारी, उमराव तथा भूमिमालिक उन पर अनेक जुल्म और अत्याचार करते थे।

लेनिन

गाँवों में जैसी हालत किसानों की थी शहरों में वैसी ही हालत मजदूरों की थी। औद्योगिक क्रांति के साथ उसके दूषण; जैसे - गरीबी, शोषण, बेकारी, व्यसन, गंदी बस्तियाँ, महामारी, अनीति आदि आए। फिर भी मजदूर अपनी कंगालियत और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के दूषणों के प्रति सावधान थे। इसी कारण साम्यवादियों को उनके मजदूर संगठनों तथा मजदूर आंदोलनों का समर्थन मिला था।

सामाजिक कारण : इस समय का रूसी समाज शासक और शोषित अधिकारी और कर्मचारी, मालिक और मजदूर जैसे दो वर्गों में बँटा हुआ था। जो ऊपरी तथा निचला (Haves and Havenot) वर्ग कहलाता था। ऊपरी वर्ग के पास अधिकार, संपत्ति, पद थे। इनके अतिरिक्त बाकी लोगों का समावेश दूसरे वर्ग में होता था। इन में मुख्यत: व्यापारी, शिक्षक, डॉक्टर, इंजीनियर, वकीलों का समावेश होता था। इनके पास किसी भी प्रकार का अधिकार या सत्ता नहीं होती थी।

इन दोनों वर्गों के बीच वर्ग-विग्रह की स्थिति पैदा हुई। विशाल निचले वर्ग को लेनिन का नेतृत्व प्राप्त हुआ, जिन्होंने लेनिन द्वारा दिखलाए गए मार्ग, हाथ में हथौड़ा (कामदार का प्रतीक) तथा हँसिया (किसानी का प्रतीक) लेकर क्रांति के लिए तैयारी की।

धार्मिक कारण : ज़ार राजा 'राजा के ईश्वरीय सिद्धांत' के अनुसार अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे और स्वयं को प्रजा पर शासन करने के लिए भेजा गया ईश्वरीय प्रतिनिधि कहते थे। अपनी रूसी विचारधारा-संस्कृति, भाषा, रीति-रिवाज़, धर्म लोग अपनाएँ इसके लिए उन्होंने 'एक सम्राट (ज़ार) एक संस्कृति और एक राष्ट्र' का नारा दिया। पाठशालाओं, देवालयों, संस्थाओं में तस्वीर लगवाकर स्वयं का छोटे गोरे भगवान के रूप में परिचय देने लगे। ऐसे धार्मिक अत्याचारों ने लोगों को क्रांति की ओर मोड़ा।

कार्ल मार्क्स की विचारधारा : कार्ल मार्क्स के 'मजदूरों का अधिनायकत्व', 'वर्गहीन समाज रचना', 'राज्यविहीन शासन व्यवस्था' आदि समाजवादी विचारों ने रूस पर प्रभाव डाला। ज़ार राजशाही के दमन में जी रहे लोगों, शोषित पीड़ित तथा हताश मजदूरों को नेतृत्व प्रदान करनेवाले मजदूर संगठनों की रचना हुई। उन्होंने अपनी मांगों के लिए मजदूर आंदोलन (ई.स. 1898) का आश्रय लिया। इसी वर्ष रूसी मजदूर पक्ष की रचना हुई जो बाद में रूसी साम्यवादी पक्ष बना, जिसमें अनेक युवकों ने सक्रिय भाग लिया । उननें से 'लेनिन' एक था। उसने 'ईस्का' नामक पत्रिका द्वारा लोक जागृति का काम किया। इस पक्ष की सभा (ई.स.1903) में हुई। उसमें क्रांति के लिए विचारों में मतभेद पैदा होने पर पक्ष के दो भाग हुए। लेनिन समर्थक 'बोल्शेविक' (बहुमत) तथा विरोधी मोंसेविक (अल्पमत) कहलाए।

विचारकों का योगदान : किसी भी महान क्रांति में विचारक लोकमानस गढ़ने का काम करते हैं। उस समय के रूसी समाज में अंधश्रद्धा, वहम, अज्ञानता थी। ज़ार के दमन ने लोगों के मस्तिष्क, विचारों तथा भावनाओं पर गहरा असर किया था। प्रजा को उस स्थिति में से मुक्त करने का काम बौद्धिकों-विचारकों ने किया। जिनमें महान् साहित्यकार टोल्सटॉय, दोस्तावस्की, मैक्सिम गोर्की तथा कार्ल मार्क्स के विचार प्रमुख थे। उसके विख्यात ग्रंथ 'दास कैपिटल' का रूसी भाषा में अनुवाद हुआ। इससे रूस के विशाल जनसमुदाय में उत्साह आया। रूसी नेताओं में मुख्य रूप से लेनिन, ट्राटेस्की, मेक्सिन, केरेंसी आदि ने लोगों को नेतृत्व प्रदान किया। इन नेताओं ने देशभर में अनेक संस्थाएँ स्थापित करके साम्यवादी विचारधारा का प्रचार-प्रसार किया। नई समाज रचना और राज्यव्यवस्था के लिए मनोबल की पूर्ति करके रूसी क्रांति की पूर्वभूमिका तैयार कराई। राजशाही ने दमन द्वारा इन नेताओं को रोकने के प्रयत्न किए, परंतु तब तक उसके लिए बहुत देर हो चुकी थी।

रूस-जापान युद्ध (1904-05) : रूस अपनी अनेक आंतरिक समस्याओं से घिरा हुआ था। उसी समय चीन के उत्तर में स्थित मंचूरिया पर कब्जे को लेकर जापान के साथ उसका युद्ध हुआ। वामन जापान ने विराट रूस को इस युद्ध में हरा दिया। युद्ध की समाप्ति पर जापान के साथ की गई 'पोर्ट्स-माउथ' की संधि रूस के ज़ार राजाओं के लिए अपमानजनक थी। इससे ज़ार शासकों की कमजोरियाँ प्रजा के समक्षा और अधिक स्पष्ट हो गईं। पराजय से उत्तेजित लोगों ने देशभर में जुलूस निकाले, प्रदर्शन किए। सभाएँ हुईं। रूसी गृहमंत्री प्लखेनो की हत्या हुई जिसके लिए ज़ार प्रशासनतंत्र ने कामदारों की बनी सोवियत को उत्तरदायी मानकर उन पर दमन की कार्रवाई की जिससे समग्र रूस में भय का वातावरण निर्मित हुआ।

रूस की असफल क्रांति तथा खूनी रविवार (22 जनवरी, 1905) : रूस-जापान युद्ध में रूस की पराजय से रूसी प्रजा में उत्तेजना बढ़ गई थी। उनके द्वारा संवैधानिक सुधार हेतु दिए गए आवेदन पत्र की ज़ार ने एकदम अवगणना की। इस कारण अपनी परिस्थिति का वर्णन करने तथा अनाज पाने के लिए अर्जी लेकर सेंट पिट्सबर्ग के कारखानों के नि:शस्त्र मजदूर फादर गोपेन के नेतृत्व में ज़ार के वसंत-महल की ओर गए। उन पर गोलियाँ चलाई गईं जिससे लगभग एक हजार मजदूर मारे गए, अनेक घायल हुए। इस घटना को रूस के इतिहास में 'खूनी रविवार' के नाम से जाना जाता है। इस घटना ने बुद्धिजीवी वर्ग को भी अपना संघ बनाने, सुधार के लिए जाग्रत किया। इतिहासकार लॉरेन्स लिखता है कि ''इस एक अपकृत्य के कारण ज़ार निकोलस द्वितीय ने देश में अपने हज़ारों वफ़ादार प्रजाजनों का विश्वास तथा समर्थन खो दिया।'' यह घटना क्रांति के लिए प्रेरक बल बनी।

डूमाओं की निष्फलता : ज़ार राजाशाही के प्रति लोगों के विरोध को दूर करके सहानुभूति पाने के लिए लोक प्रतिनिधियों से बनी डूमा (संसद) की रचना करने के लिए ज़ार ने उत्साहपूर्वक घोषणा की। इस दौरान (1906-1912) चार बार डूमा की बैठक हुई। परन्तु हर बार कोई ठोस सुधार करने में असफल रही। अंतिम डूमा (1917) ने क्रांतिकारियों को अधिक प्रोत्साहित करके क्रांति के लिए मार्ग आसान बनाया।

प्रथम विश्वयुद्ध और रूस :

प्रथम विश्वयुद्ध में ज़ार निकोलस द्वितीय ने रूस को मित्र राष्ट्रों के पक्ष में युद्ध में शामिल किया। आरंभ में ही जर्मनी के साथ युद्ध में रूस की पराजय हुई। सैन्य तथा शस्त्रसामग्री की अनेक कमजोरियों तथा ज़ार की ओर से सहयोग का अभाव, अपर्याप्त खाद्य आपूर्ति, सुविधाओं के अभाव आदि कारणों से युद्ध के हर मोर्चे पर पराजित रूसी सैनिक अधिकारियों की अवगणना करके भागने लगे। युद्ध के कारण उत्पादन घटा, अनाज की तंगी हुई, लोग बेकार बने। ऐसे समय में ज़ारशाही को हटाने के लिए प्रजा ने क्रांति का मार्ग अपनाया।

रूसी क्रांति की घटनाएँ

वसंत क्रांति (8 मार्च 1917) : प्रथम विश्वयुद्ध में रूस की बिगड़ी हुई परिस्थिति ने इस क्रांति को जन्म दिया। इसी समय पेट्रागार्ड के कामदारों की हड़ताल को दबाने में ज़ार असफल रहा। इन हड़तालियों के साथे सेना, डूमा आदि जुड़े। सार्वजनिक इमारतों तथा पुलिस स्टेशन को अपने कब्जे में लिया। ज़ार ने मास्को में राजगद्दी छोड़ दी और उसके भाई ग्रांड ड्यूक माईकेल ने गद्दी स्वीकार नहीं की। रूस पहली बार ज़ार विहीन बना। डूमा ने प्रिंस ल्योब के नेतृत्व में अंतरिम सरकार की रचना की। यह क्रांति मार्च महीने में हुई थी इसलिए इसे मार्च क्रांति के नाम से भी जाना जाता है।

अंतरिम सरकार की निष्फलता : अंतरिम सरकार ने अनेक सुधारों की घोषणा की परंतु किसानों या मजदूरों को सरकार में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया। साथी ही प्रथम विश्वयुद्ध में शामिल होने की घोषणा की। इस समय खेती के लिए जमीन तथा भूख मिटाने के लिए रोटी की जरूरत थी। प्रथम विश्वयुद्ध से ऊबी प्रजा को शांति चाहिए थी, उनके लिए सरकार के सुधारों की कोई कीमत नहीं थी।

बोल्शेविक क्रांति (नवम्बर क्रांति - 1917) : अंतरिम सरकार के प्रति प्रजा का विरोध बढ़ता जा रहा था। इससे सरकार विरोधी संगठन और मजबूत हुए। देशनिकाला भोग रहा लेनिन विदेश में रहकर भी रूस की परिस्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त कर रहा था। उसकी अनुपस्थिति में भी बोल्शेविकों ने सोवियत (प्रतिनिधि मंडल) की रचना की। लेनिन उस समय पेट्रागार्ड आया उस समय बोल्शेविकों ने उसका भव्य स्वागत किया। नए जोश और उत्साह से लेनिन ने प्रजा को रोटी, जमीन और शांति का सूत्र दिया। लेनिन को यह समय सशस्त्र क्रांति के लिए उपयुक्त लगा। उसने सैनिक क्रांतिकारी समिति की रचना की। किसानों तथा मजदूरों को महत्त्वपूर्ण स्थान तथा सत्ता देने का समर्थन किया। (7 नवम्बर, 1917) बोल्शेविकों की छोटी-छोटी टुकड़ियों ने रेलवे स्टेशन, सरकारी बैंक, तार-डाक तथा टेलीफोन कार्यालयों तथा अन्य सरकारी इमारतों पर अधिकार कर लिया। केरेन्सकी उन्हें रोकने का असफल प्रयास किया और अंत में उसे भाग जाना पड़ा। दूसरे दिन तक संपूर्ण पेट्रोगार्ड बोल्शेविकों के कब्जे में आ गया। बोल्शेविक क्रांति संपूर्ण सफल बनी। अंतरिक्ष सरकार को हटाकर लेनिन के नेतृत्व में सोवियत सरकार की स्थापना की गई।

रूसी क्रांति के परिणाम

रूसी क्रांति के परिणामों को अध्ययन की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है : पहला रूस के लिए परिणाम और दूसरा वैश्विक परिणाम।

रूस के लिए परिणाम :

रूस में हुई सफल क्रांति के परिणामस्वरूप रूस से ज़ार राजशाही का अंत हुआ जिसके परिणामस्वरूप स्वाभाविकरूप से ही रूस को प्रथम विश्वयुद्ध से हटना पड़ा। ज़ारशाही का अंत होने से ईसाई चर्चों के विशेषाधिकार भी समाप्त हो गए।

रूढ़िगत ज़ार राजतंत्र के बदले साम्यवादी विचारधारा की सरकार अस्तित्व में आई। लेनिन के नेतृत्व में सरकार ने विशेषाधिकारों को समाप्त करके वर्ग विहीन समाज रचना की। समाज में उच्च पद, सामाजिक वर्ग तथा विशेषाधिकार समाप्त हुए। शिक्षा और पुस्तकालय विकास को प्राधान्य मिला। राजनीति या राज्य व्यवस्था में से इसाई चर्चों के विशेषाधिकार दूर किए गए। धर्म को राजनीति से दूर रखा गया। बैंक महत्त्वपूर्ण उद्योगों, रेलवे तथा विदेश व्यापार का राष्ट्रीयकरण किया गया।

भूमि का योग्य वितरण किया गया। 'जो काम करे वह खाये, जो काम करे उसे मत का अधिकार' से सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक असमानता दूर की गई। पंचवर्षीय योजनाओं तथा नई आर्थिक नीति द्वारा देश के आर्थिक विकास का ध्येय तय किया गया। संक्षेप में, क्रांति के बाद रूस में सार्वत्रिक और सर्वक्षेत्रीय सुधारों से बहुत ही कम समय में वह विश्व की महासत्ता बना, जिसने द्वितीय विश्वयुद्ध में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

सफल क्रांति के पश्चात् मास्को को रूस की राजधानी बनाया गया। राष्ट्रध्वज का रंग लाल रखा गया। उसमें हँसिया और हथौड़े का प्रतीक अंकित किया गया जो कामदारों तथा किसानों की सर्वोपरिता और महत्ता को दर्शाता है।

वैश्विक परिणाम

क्रांति के बाद प्रथम विश्वयुद्ध में से हट गये रूस ने बहुत ही कम समय में एक समय के अपने शत्रु जर्मनी से संधि करके मित्र राष्ट्रों को आश्चर्य में डाल दिया। कोमिंटर्न (लेबरदल का आंतरराष्ट्रीय संगठन) द्वारा सोवियत की रक्षा तथा विश्व में प्रसार किया। परिणामस्वरूप पूर्वी यूरोप के अनेक राष्ट्रों में साम्यवादी सरकारें बनीं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद चीन, उत्तर कोरिया, उत्तर वियतनाम तथा मंगोलिया में साम्यवादी शासन प्रणाली आरंभ हुई।

इसे क्रांति ने विश्व को 'व्यक्ति का आर्थिक शोषण नहीं होना चाहिए' का सिद्धान्त दिया। लोकतंत्र तथा पूँजीवादी देशों की समझ में आया कि राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ ही आर्थिक तथा सामाजिक समानता भी किसी भी राष्ट्र की प्रजा के लिए अनिवार्य है। साम्यवादी विचारधारा ने विश्व से गुलामी प्रथा, रंगभेद की नीति दूर करके कामदार-कल्याण कानूनों को प्रोत्साहन देने का उपदेश दिया। पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा विश्व ने आर्थिक विकास का बोधपाठ प्राप्त किया। साम्राज्यवाद विरोधी साम्यवादी विचारों ने विश्व के खासतौर पर एशियाई-अफ्रीकी देशों को स्वतंत्र बनने का समर्थन किया।

हालांकि विश्व में लोकतंत्र के साथ ही साम्यवादी विचारधारा का महत्त्व बढ़ा, पर इन परस्पर विरोधी विचारधाराओं ने विश्व में शीतयुद्ध की परिस्थिति को जन्म दिया।

संक्षेप में, यह क्रांति ने इसका अनुभव विश्व को कराया। 20 वीं सदी में संगठित किसान, संगठित मजदूर किसी भी शासन प्रणाली में परिवर्तन ला सकते हैं।

ई.स. 1960 के बाद रूसी नेताओं ने लोकतंत्री देशों के साथ संघर्ष के बदले सहकार की नीति अपनाई। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में साम्यवादी विचारधारा में परिवर्तन आया। उदारवादी रूसी राष्ट्रपति मिखाईल गोर्बोचोव (1985-92) ने विश्वशांति की स्थापना और शीतयुद्ध के भय को दूर करने के लिए राजनीतिक तथा आर्थिक बातों में खुलेपन की नीति अपनाई।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) प्रथम विश्वयुद्ध के कारणों की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।

(2) प्रथम विश्वयुद्ध का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा?

(3) ज़ार के शासनकाल की राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति का वर्णन कीजिए।

(4) रूसी क्रांति में विचारकों के योगदान की चर्चा कीजिए।

(5) रूसी क्रांति से रूस में आए परिवर्तनों को समझाइए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) उग्रराष्ट्रवाद अर्थात् क्या?

(2) प्रथम विश्वयुद्ध का तात्कालिक कारण कौन-सा था?

(3) प्रथम विश्वयुद्ध में 'मित्र राष्ट्र' के गुट में कौन-कौन से देश थे?

(4) रूसी क्रांति को साम्यवादी क्रांति भी कहते हैं, क्यों?

(5) बोल्शेविक क्रांति में लेनिन ने प्रजा को कौन-सा नारा दिया था?

3. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) जर्मनी के लिए अन्यायी तथा अपमानजनक संधि :

(अ) फ्रैंकफर्ट की संधि (ब) ट्रियानो की संधि (क) वर्सेल्स की संधि (ड) जर्मनी की संधि

(2) 'एक सम्राट, एक संस्कृति तथा एक राष्ट्र' का सूत्र देनेवाला :

(अ) ज़ार राजा (ब) लूई राजा (क) धर्मगुरु (ड) रास्पुटिन

(3) वर्गविहीन समाजरचना का हिमायती :

(अ) ट्रॉटेस्की (ब) मैक्सिम गोर्की (क) कार्ल मार्क्स (ड) मोंतेस्क

(4) लेनिन समर्थक :

(अ) मोन्शेविक (ब) बोल्शेविक (क) लेनिनशेविक (ड) दाससेविक

(5) 'व्यक्ति का आर्थिक शोषण नहीं होना चाहिए'...

(अ) चीन की क्रांति (ब) बोल्शेविक क्रांति

(क) अमेरिकी क्रांति (ड) रक्तविहिन क्रांति

●

13 ई.स. 1919 से 1939 के बीच का विश्व

वर्सेल्स की संधि (ई.स. 1919) द्वारा प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति हुई। ऐसे युद्ध का पुनरावर्तन न हो तथा विश्व में शांति बनी रहे, इसके लिए राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई थी फिर भी मात्र 20 वर्ष की अल्प अवधि में विश्व को दूसरे विश्वयुद्ध का सामना करना पड़ा। इन 20 वर्षों में अनेक नए परिवर्तन हुए। हम इस प्रकरण में प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद विश्व को दूसरे विश्वयुद्ध की ओर ले जाने वाली अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

राष्ट्रसंघ (League of Nations)

महाविनाशक युद्ध के पश्चात् विश्व के देशों में शांति बनाये रखने, पारस्परिक मतभेदों को शांति से सुलझाने तथा विश्वबंधुत्व की भावना को विकसित करने हेतु आंतरराष्ट्रीय संस्था की आवश्यकता थी। ऐसे समय में अमेरिकी राष्ट्रपति वुड्रो विल्सन के 14 मुद्दों के आधार पर पेरिस की शांतिपरिषद ने (10 जनवरी 1920) ने राष्ट्रसंघ (The League of Nations) की स्थापना की। इस राष्ट्रसंघ का सदस्य बनने को इच्छुक देश के लिए सर्व प्रथम राष्ट्रसंघ के संविधान-दस्तावेज की शर्तों का स्वीकार करना होता था, उपरांत राष्ट्रसंघ की सामान्य सभा के दो तिहाई सदस्यों का बहुमत प्राप्त करना होता था। इस राष्ट्रसंघ की सदस्यता त्यागने के लिए अनिवार्यरूप से 2 वर्ष पहले नोटिस द्वारा सूचना देनी होती थी। संविधान की शर्तों को भंग करनेवाले देश को राष्ट्रसंघ से दूर करने का प्रावधान भी था। अमेरिका जैसी महासत्ता इसमें कभी नहीं जुड़ी फिर भी राष्ट्रसंघ की प्रत्येक प्रवृत्ति पर उसका वर्चस्व रहता था।

राष्ट्रसंघ के आदर्श/उद्देश्य

राष्ट्रसंघ का प्रत्येक सदस्य देश अन्य देशों की प्रादेशिक अखंडता बनाए रखे, गुप्त संधियाँ न करे, शस्त्रसामग्री में वृद्धि न करे, मतभेद या झगड़े को पंच, बातचीत या मध्यस्थता से हल करें। पंच का निर्णय दोनों देश स्वीकार करें। उस निर्णय से यदि असंतोष हो तो भी कम से कम तीन महीने तक युद्ध का सहारा न लें। जो राष्ट्र पंच के फैसले को स्वीकार न करे और युद्ध का सहारा ले उसे विद्रोही राष्ट्र घोषित करना। उसके साथ के सारे संबंध तोड़ लेना पड़े। इस युद्ध में विद्रोही राष्ट्र के खिलाफ लड़ने के लिए प्रत्येक राष्ट्र युद्ध के लिए मदद करे। किसी भी युद्ध को जन्म देनेवाले गरीबी, बेरोजगारी, निरक्षरता जैसे परिबलों को दूर करने का प्रयत्न प्रत्येक राष्ट्र को करना चाहिए।

राष्ट्रसंघ की संस्थाएँ

राष्ट्रसंघ ने अपने आदर्शों तथा उद्देश्यों को सिद्ध करने के लिए कुछ समितियों की रचना की थी। उनमें 'सामान्य सभा' के सदस्यों के मताधिकार हेतु कामकाज होता था। राष्ट्रसंघ के उद्देश्यों के खिलाफ आचरण करनेवाले विद्रोही राष्ट्र के विरुद्ध कारवाई करने का अधिकार 'कार्यकारिणी समिति' के पास थे। राष्ट्रसंघ की महत्त्वपूर्ण संस्था 'सचिवालय' राष्ट्रसंघ के कार्यों के लिए बैठकों का आयोजन करता था और उसमें लिए गए निर्णयों तथा चर्चाओं, प्रस्तावों आदि का ब्योरा रखता तथा उन निर्णयों की जानकारी सदस्य राष्ट्रों को पहुँचाता था।

राष्ट्रसंघ की रचना हुई उसके पहले ही आंतरराष्ट्रीय अदालत की स्थापना हो चुकी थी। उसका मुख्यालय हेग (नीदरलैंड) था। यह अदालत मुख्यरूप से आंतरराष्ट्रीय स्तर के वाद-विवाद का हल निकालती थी। उसमें 11 मुख्य तथा 4 उप न्यायाधीशों की नियुक्ति 7 वर्ष के लिए की जाती थी। इस संस्था ने द्वितीय विश्वयुद्ध तक 60 जितने विवादों में से 32 के निर्णय तथा 28 मामलों में मात्र सुझाव-सलाह देकर आंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में तनाव रोकने और सुमेल बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थीं।

जिनीवा में मुख्यालय वाला आंतरराष्ट्रीय मजदूर संघ (I.L.O.) नामक संस्था विश्व भर के मजदूरों के आर्थिक तथा सामाजिक कल्याण हेतु कार्य करती थी। इस संस्था की विशेषता यह थी कि जो देश राष्ट्रसंघ के सदस्य न हों वे भी इसमें जुड़ सकते थे। इस संस्था की विशाल कार्यवाही के लिए 300 कर्मचारी रखे गए थे।

राष्ट्रसंघ की उपलब्धियाँ

मात्र 20 वर्ष के संक्षिप्त काल में राष्ट्रसंघ ने अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त करी थी। मानवाधिकारों का घोषणापत्र प्रकाशित करके मानव के मूलभूत अधिकारों की रक्षा की, पिछड़े देशों को आर्थिक मदद की, मंदी में फँसे देशों को कर्ज़ (लोन) की सुविधा दी। उपरांत गुलामी, बंधक मजदूरी प्रथा, स्त्रियों की अवैध बिक्री, बालक तथा स्त्री के प्रति अनुचित व्यवहार आदि के प्रति कठोर रुख अपनाकर सामाजिक सुधार के कार्य किए। विश्व आरोग्य संस्था (W.H.O.) द्वारा हैजा, क्षय (टी.बी.), चेचक, टाइफाइड इत्यादि संक्रामक रोगों की रोकथाम, इलाज के लिए दवाएँ खोजने हेतु संशोधन केन्द्र स्थापित किए। इस तरह राष्ट्रसंघ ने मानवजाति की खूब उपयोगी सेवाएँ की।

राष्ट्रसंघ की असफलता

राष्ट्रसंघ का मुख्य हेतु विश्वशांति था किन्तु अपनी कुछ कमजोरियों के कारण वह यह उद्देश्य सिद्ध न कर सका। इस अवधि (1919 से 1939) में कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं जिन्होंने विश्व को दूसरे विश्वयुद्ध की ओर धकेला।

(1931) चीन के मंचूरिया प्रदेश पर जापानी आक्रमण को राष्ट्रसंघ रोक न सका। इसी तरह इटली के तानाशाह मुसोलिनी ने अफ्रीका के एबीसीनिया पर आक्रमण किया तब राष्ट्रसंघ ने उस पर आर्थिक प्रतिबंध घोषित किए फिर भी अन्य सदस्य देशों ने इटली को गुप्तरीति से मदद जारी रखी। इटली के खिलाफ दंडात्मक कार्यवाही हो उसके पहले तो इटली ने राष्ट्रसंघ की सदस्यता छोड़ दी। इसी तरह जर्मनी में हिटलर ने वर्सेल्स की संधि को कागज का टुकड़ा कहकर फेंक दिया और युद्धदंड भरना बंद करके अन्य राष्ट्रों पर कब्जा करना आरंभ किया, फिर भी राष्ट्रसंघ कुछ भी नहीं कर सका। इस तरह, हर घटना के समय राष्ट्रसंघ मात्र मूक प्रेक्षक बना रहा। परिणामस्वरूप उसने अपनी प्रतिष्ठा खोई। अंत में (1939) विश्वयुद्ध शुरू होने के साथ ही राष्ट्रसंघ का अंत हो गया।

इटली में फासीवाद

इटली में फासीवाद के उदय के अलग-अलग अनेक कारण हैं। खासतौरपर प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् विकट राजनीतिक, आर्थिक स्थिति उसके लिए उत्तरदायी थी। प्रथम विश्वयुद्ध में इटली मित्रराष्ट्रों के पक्ष में लड़ा था परंतु युद्ध के अंत में हुई वर्सेल्स की संधि में इटली को आर्थिक या प्रादेशिक लाभ नहीं मिला था। इस कारण इटली के सैनिकों और प्रजा में अत्यंत असंतोष था।

आर्थिक महामंदी

प्रथम विश्वयुद्ध में इटली मित्रराष्ट्रों के पक्ष में रहकर लड़ा था। उसका इस युद्ध में अपार धन खर्च हुआ। व्यापार-उद्योग नष्ट हो गए थे। इससे गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी व्यापक रूप से फैल गई। देश की आर्थिक दशा अत्यंत बिगड़ गई। इटली की सरकार ने प्रजा की तकलीफ़ों को दूर करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया था।

सामाजिक परिणाम

आर्थिक महामंदी के परिणामस्वरूप इटली के बेकार मजदूर रूस की साम्यवादी विचारधारा की ओर आकर्षित हुए। साम्यवादियों ने भी उसका लाभ उठाया। उन्होंने चुनावों में भाग लिया। सरकार के विरुद्ध प्रदर्शन किया। हड़ताल तथा तोड़-फोड़ की प्रवृत्तियाँ शुरू की। इटली की सरकार इसे भी रोकने में असफल रही।

राजनीतिक परिणाम

इटली में फांसीवाद का सर्वाधिक प्रभाव राजनीतिक पहलू पर दिखता है। इटली की प्रजा किसी ऐसे नेता की खोज में थी जो उसकी इन सभी कठिनाइयों को दूर करे। इस समय बेनिटो मुसोलिनी का नेतृत्व प्रबल होने पर उसने बड़ी तीव्रता से इटली की सत्ता प्राप्त कर ली।

बेनिटो मुसोलिनी

इटली के एक गरीब लुहार के घर जनमे (ई.स. 1883) मुसोलिनी को क्रांतिकारी विचार अपने पिता की तरफ से विरासत में मिले थे। उसकी माँ शिक्षिका थी। शिक्षा पूरी करने के बाद उसने कुछ समय तक शिक्षक के रूप में काम किया। उसी दौरान साम्यवादी विचारधारा की ओर आकर्षित हुआ, परन्तु बाद में उसका कट्टर विरोधी हो गया। प्रथम विश्वयुद्ध में वह एक सैनिक के रूप में लड़ाई में शामिल हुआ था।

फासिस्ट दल की स्थापना

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर हुई वर्सेल्स की संधि में इटली के प्रति हुए अन्याय को दूर करने के लिए मुसोलिनी ने इटली के असंतुष्ट युवकों का दल बनाकर (1919) इटली के मिलान शहर में उग्रराष्ट्रवादी फासिस्ट दल की स्थापना की। लकड़ी का गट्ठर तथा कुल्हाड़ी (फेसिस) के रोमन सम्राट के प्रतीक को अपने पक्ष के रूप में स्वीकार किया, इसलिए इस पक्ष को फांसीवाद या फासिस्ट पार्टी के रूप में पहचाना गया। फासिस्टों का गणवेश काला था इस कारण वे 'काली कमीजधारी' कहलाए।

आगे चलकर (ई.स. 1919) में आयोजित चुनाव में खुद मुसोलिनी भी पक्ष के साथ हारा, परन्तु ई.स. 1922 में फासिस्ट सबसे शक्तिशाली पक्ष के रूप में उभरे। इस समय साम्यवादियों द्वारा प्रायोजित हड़ताल रोकने में सरकार विफल रही इसलिए मुसोलिनी ने कहा, ''हड़ताल को काबू में रखो या सत्ता के सूत्र सौंप दो।'' मुसोलिनी ने सैनिकों के साथ रोम की ओर कूच किया। समय की नज़ाकत को भाँपकर सम्राट इमेन्युअल ने मुसोलिनी को सरकार बनाने को कहा। अंत में (30अक्टूबर, 1922) मुसोलिनी ने अपने पक्ष की सरकार बनाकर सत्ता ग्रहण की।

व्यक्ति राज्य के लिए है, राज्य से अलग व्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं है, ऐसा माननेवाला मुसोलिनी राज्य को महत्त्व देता था। लोकतंत्र तथा व्यक्ति स्वातंत्र्य का वह कट्टर विरोधी था। तानाशाही का समर्थक तथा साम्यवाद विरोधी था।

उग्र फासीवादी विचारधारा वाले मुसोलिनी ने बहुत ही कम समय में इटली की कायापलट करना शुरू किया। राज्य की प्रत्येक संस्था को फासीवादी सिद्धांत के अनुसार ही काम करने को मजबूर किया। उसकी नई आर्थिक नीति के परिणामस्वरूप उत्पादन बढ़ा। राज्य का आर्थिक विकास तीव्र बना। बेरोजगारी तथा निरक्षरता दूर करने के लिए विशेष कार्यक्रम चलाए। इस कारण इटली में (1935) मात्र 2 प्रतिशत लोग ही निरक्षर रह गए थे। सैन्यशक्ति बढ़ाने के लिए सेना में भर्ती को अनिवार्य बना दिया। सैनिक संगठन बनाया। 60 वर्ष से भी अधिक समय से पोप के साथ चल रहे विवाद को संधि द्वारा अंत करके एक बड़ी उपलब्धि प्राप्त की। उसके द्वारा वेंटिकन शहर पर पोप की सत्ता स्वीकार किए जाने से हजारों कैथोलिक खुश हुए इससे उसकी लोकप्रियता में स्वाभाविक रूप से वृद्धि हुई।

जर्मनी में नाज़ीवाद

प्रथम विश्वयुद्ध के अंत में पराजित ज़र्मनी को अत्यन्त क्रूर तथा अपमानजनक वर्सेल्स संधि पर अनिवार्यरूप से हस्ताक्षर करना पड़ा। इस संधि से ज़र्मन प्रजा का अपमान हुआ था। जिससे स्वाभाविक रूप से ज़र्मन युवक क्रोधित हुए। इन राष्ट्रवादी युवकों का संगठन नाज़ीवाद का उदय हुआ। साम्यवाद के आंतरराष्ट्रीय सिद्धांत के कारण जर्मनी में यह भय व्याप्त हुआ कि यदि जर्मनी में साम्यवाद का अधिक प्रसार हुआ तो साम्यवादी ज़र्मनी रूस की कठपुतली बन जाएगा। इस भय ने जर्मनी में नाज़ीवाद का विकास किया। प्रथम विश्वयुद्ध तथा वर्सेल्स की संधि के परिणामस्वरूप आर्थिक रूप से बेहाल जर्मनी को अमेरिका ने आर्थिक मदद की, परन्तु (1929-30) महामंदी ने उसकी आर्थिक दशा और बदतर कर दी।

प्रथम विश्वयुद्ध के अंत में जर्मनी में पैदा हुई अनेक समस्याओं का निराकरण करने में वाइमर गणराज्य असफल हुआ। ऐसे में प्रजा को एक शक्तिशाली तथा दृढ़ निर्णयशक्ति वाले नेतृत्व की कामना थी। उस समय हिटलर के रूप में लोगों को अपना उद्धारक दिखने लगा जिससे उसका व्यापक स्वीकार-स्वागत हुआ।

एडोल्फ हिटलर

आस्ट्रिया के एक सामान्य परिवार में जनमे (20 अप्रैल, 1889) हिटलर को गरीबी के कारण पर्याप्त शिक्षा नहीं मिल पाई थी। आरंभ में वह वियना में ठेकेदार के यहाँ नौकरी करता था बाद में वह म्यूजियम में चित्र बनाकर अपना गुजारा करने लगा। यहाँ उस पर ज़र्मन-संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ा। प्रथम विश्वयुद्ध के समय वह जर्मनी की सेना में जुड़ा था। इस युद्ध में जर्मनी के पराजय के लिए उसने जर्मन नेताओं और यहूदी प्रजा को जवाबदार माना। पराजित जर्मनी के गौरव की स्थापना के ध्येय के साथ वह उग्र राष्ट्रवाद के शस्त्र लेकर राजनीति में जुड़ा।

नाज़ी पक्ष

असंतुष्ट जर्मन सैनिकों के गुट में से हिटलर ने 'राष्ट्रीय समाजवादी जर्मन कामदार का पक्ष' (National Socialist German Workers Party) नाज़ी पक्ष की स्थापना की। अपनी एक सभा में हिटलर ने 25 सूत्री कार्यक्रम घोषित किया। जिनमें मुख्य रूप से वर्सेल्स की संधि अस्वीकार करना, खोये हुए प्रदेशों को पुनः प्राप्त करना, मजदूर-मध्यम वर्ग की आर्थिक दशा सुधारना तथा शस्त्रसामग्री में वृद्धि करने के कार्यक्रम थे। जर्मन प्रजा की जागृति के लिए इन कार्यक्रमों की घोषणा करने पर सरकार ने उसे जेल में डाल दिया। यहाँ जेल में उसने 'मेरा संघर्ष' (MEIN KAMPF) नामक पुस्तक लिखी, जिससे लोगों में नाजी विचारों का अधिक प्रसार हुआ। पूरे देश में नाजी पक्ष की शाखाएँ शूरू की। वे नीले रंग की सैन्य पोशाक और कंधे पर लाल रंग की पट्टी के साथ उलटे स्वस्तिक ┼ का निशान (आर्यत्व का प्रतिक) रखते थे। नाज़ी अंगरक्षक काले रंग का गणवेश पहनते थे। उस पर खोपड़ी का निशान होता था। ये अंगरक्षक नाज़ी विरोधियों को खत्म करने को सदैव तत्पर रहते थे।

तानाशाह हिटलर

हिटलर ने महामंदी से जर्मनी को उबारने के प्रयत्न किए। उसने प्रत्येक व्यक्ति को काम तथा रोटी देने का वचन दिया। सामान्य चुनाव में ई.स. 1930 तथा 1932 में नाज़ी पक्ष एक शक्तिशाली दल के रूप में उभर कर आया। दूसरे ही वर्ष हिटलर प्रधानमंत्री बना। इसी बीच राष्ट्रपति हिंडेनबर्ग का अवसान (1934) होने पर चुनाव करवाने के बजाय हिटलर ने स्वयं राष्ट्रपति पद सँभाला। इस घटना के साथ ही जर्मनी में गणतंत्र का अंत हुआ और एक व्यक्ति के तानाशाही शासन की शुरुआत हुई।

सर्वोपरि, सर्वग्राही तथा सर्वसत्ताधीश राष्ट्र में माननेवाले हिटलर ने 'एक पक्ष, एक प्रजा तथा एक नेता' का आदर्श अपनाया। नाज़ी पक्ष में असीम, संपूर्ण और सर्वोपरि सत्ता का प्रतीक फ्यूहरर कहलाता। उसकी आज्ञा और आदेश सर्वोपरि माने जाते थे। समग्र विश्व में मात्र जर्मन प्रजा ही आर्य प्रजा है, ऐसी मान्यतावाले हिटलर ने पाठयपुस्तक में 'हिटलर हमारा नेता है और हम उसे चाहते हैं' ऐसा बताया। प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी की हार के लिए यहूदियों को जवाबदार मानकर हिटलर ने 60 लाख यहूदियों की गैस चैम्बर्स में दमघोंट कर हत्या की। हिटलर ने 'जहाँ-जहाँ जर्मन, वहाँ-वहाँ जर्मनी' का अत्यंत संकुचित राष्ट्रवादी नारा अपनाकर दूसरे विश्वयुद्ध का बीज बोया।

हिटलर ने थोड़े ही समय में नाज़ी पक्षकारों का मजबूत जर्मन संगठन बनाकर उसे सम्मान दिलाया। यहूदी प्रजा का विरोध तथा जर्मन प्रजा का समर्थन तथा नई आर्थिक नीति से उसने जर्मनी को समृद्ध बनाया। बेकारी दूर करने के प्रयत्न किए। सिंचाई, रेलवे, सार्वजनिक भवनों का निर्माण कराया। युद्धसामग्री का उत्पादन आरंभ किया। विश्व में जर्मन प्रजा को सर्वोपरि बताकर उसका जोश बढ़ाया जिसने आगे चलकर उग्र राष्ट्रवाद का मंद ज़हर जनमानस में डाला। जिसने द्वितीय विश्वयुद्ध को जन्म देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

न्यू डील पॉलिसी एवं विश्व में अमेरिका का बढ़ता महत्त्व

महामंदी (1929-30) के प्रभाव से अमेरिका अपने को बचा न सका था। उस समय अमेरिका को इस मंदी से बाहर निकालने के लिए अमेरिका राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डी. रूज़वेल्ट ने उत्तम आदर्शों के साथ नवीनीकरण का

कार्यक्रम अमेरिका में शुरू किया, जिसे 'न्यू डील' के नाम से जाना जाता है। न्यू डील का उद्देश्य रिलीफ (Relief), रिकवरी (Recovery) तथा रिफॉर्म (Reform) थे। जिससे लोगों में आत्मविश्वास बढ़े। लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा हो तथा राष्ट्र की प्राकृतिक संपदा के संरक्षण करने का मूल्य विकसित हो, ऐसी अपेक्षा थी। रूज़वेल्ट ने इस नीति को अल्पकालिक तथा दीर्घकालीन ऐसे दो चरणों का रखा था। इस न्यू डील के अनुसार कृषि, श्रम, न्याय, व्यापार, रोजगार, प्राकृतिक संपदा तथा सामजिक सुरक्षा आदि के लिए कदम उठाए गए, जिसमें पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ प्राकृतिक संपदा के उपयोग का आयोजन था। इस न्यू डील नीति में राष्ट्रपति एफ.डी.रूजवेल्ट की कर्मठता, निष्ठा और सूझ-बूझ के साथ राष्ट्रहित के लिए उनकी समर्पण भावना का परिचय मिलता है।

इंग्लैंड तथा फ्रांस में आए परिवर्तन

इस अवधि में विश्व के ब्रिटिश साम्राज्य वाले देशों में राष्ट्रीय आंदोलनों के कारण साम्राज्य पर उसकी पकड़ ढीली पड़ी। इंग्लैंड में सर्वदलीय सरकार की रचना की गई। सरकार ने असाधारण सत्ता का उपयोग करके देश को आर्थिक महामंदी से उबारने के प्रयत्न किए। स्वायत्त संस्थाओं के सार्वभौमत्व को स्वीकृति मिली। सामूहिक सुरक्षा के लिए राष्ट्रसंघ द्वारा किए गए प्रयत्नों को अपने हितों को ध्यान में रखकर समर्थन दिया। संक्षेप में, इस समय के इंग्लैंड की विदेशनीति व्यावहारिक तथा संतुलित थी।

यूरोप के तत्कालीन देशों में फ्रांस संभवत: सर्वाधिक शक्तिशाली तथा प्रतिष्ठित राष्ट्र होने पर भी उसे जर्मनी से सबसे अधिक भय था। इसलिए उसने राष्ट्रसंघ से अपनी सेना रखने की अनुमति माँगी तथा इंग्लैंड एवम् अमेरिका के साथ त्रिपक्षीय संधि द्वारा प्रादेशिक अखंडता तथा युद्ध के समय सैनिक सहायता का वचन प्राप्त किया। बेल्जियम, पोलैंड एवं ज़ेकोस्लोवेकिया के साथ परस्पर मैत्री, संरक्षण तथा सैन्य संधि की। उन्हें आर्थिक सहायता देकर फ्रांस ने अपना संघ अधिक मजबूत तथा सुरक्षित बनाया। आर्थिक मंदी के कारण गरीबी, बेकारी जैसे प्रश्नों को हल करने में असफल रहने से सरकार की प्रतिष्ठा में बारबार पतन होने लगा, जिससे राष्ट्रीय अस्थिरता में वृद्धि हुई।

संक्षेप में, किसी भी तरह से अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा कायम रखना यह दो विश्वयुद्धों के बीच के समय में इंग्लैंड तथा फ्रांस की सभी प्रवृत्तियों एवं विदेशनीति का मुख्य लक्ष्य था।

यू.एस.एस.आर. (सोवियत रूस) का उदय

स्टालिन के नेतृत्व में (1929 से 39) पंचवर्षिय योजनाओं से बहुत ही कम समय में सोवियत संघ ने अभूतपूर्व आर्थिक विकास किया। (1936) सोवियत रूस का नया संविधान अमल में आने पर सोवियत रूस में 'सोवियत समाजवादी प्रजासत्ताक संघ' (यू.एस.एस.आर.) अस्तित्व में आया। इस संविधान द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार दिए गए। कामदारों की समितियों को कारखानों का संचालन सौंपा गया। अनेक सामाजिक तथा शैक्षणिक सुधारों द्वारा रूस का सर्वांगीण विकास का प्रयास किया गया। फिर भी साम्यवादी पक्ष और उसका प्रमुख राष्ट्र में सर्वोपरि थे, जिससे लोगों के राजनीतिक अधिकारों पर में व्यापक कटौती आई।

अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका देशों में हुए परिवर्तन (1919-1939)

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अफ्रीका में स्वतंत्रता के आंदोलनों के प्रति जागृति आई। प्रथम विश्वयुद्ध के अंत में उन्हें स्वतंत्रता मिलेगी इस आशा से अफ्रीकी देशों ने उस युद्ध में 'मित्र राष्ट्रों' को सहयोग दिया था, परंतु संस्थानों के प्रति फ्राँस तथा इंग्लैंड की नीति में कोई परिवर्तन नहीं आया। इस कारण अफ्रीकी देशों में उस समय राष्ट्रीय जागरण आरंभ हुआ जिस में विविध संगठन रचे गए। इन संयोगों में (1912) अफ्रीका में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थपाना हुई। उसने अपने राष्ट्र की गुलामी में पिस रही प्रजा को अधिकारों के प्रति जाग्रत किया। अफ्रीकी संस्थानों की गुलामी में पिस रही प्रजा को अधिकारों के प्रति जाग्रत किया। अफ्रीकी संस्थानों की प्रजा स्वतंत्रता, लोकतंत्र तथा राष्ट्रवाद के रंग में रंग गई। परिणामस्वरूप अपने साम्राज्यवादी स्वामियों के विरुद्ध सिर उठाना शुरू किया।

अमेरिका के दक्षिण में स्थित 24 संस्थान लैटिन अमेरिका के नाम से जाने जाते थे। यहाँ बसनेवाली प्रजा लैटिन कुल की थी, उसकी भाषा भी लैटिन थी। अमेरिका की ही तरह यहाँ के संस्थानों को भी अपनी स्वतंत्रता के लिए लंबे समय तक संघर्ष करना पड़ा था। यहाँ के पड़ोसी देशों अमेरिका तथा केनेडा ने लैटिन अमेरिका की समस्याओं को जानने के प्रयत्न नहीं किए, पर अपना विकास जारी रखा। इस समय लैटिन अमेरिका ने स्वतंत्रता के बाद अमेरिका का अनुसरण नहीं किया, अपितु अपने विकास के लिए स्वतंत्र रूप से प्रयत्न किया। इस कारण इन राष्ट्रों में आंतरिक कलह, तानाशाही तथा सैन्य विद्रोह आरंभ हुए। ऐसी स्थिति में ब्राजील, चिली और अर्जेन्टिना - इन तीन राष्ट्रों में राजनीतिक स्थिरता और लोकतंत्रात्मक शासन की आशा थी, परंतु उनमें लैटिन अमेरिका के अन्य राज्यों का समावेश होता गया। इस समय अर्जेंटिाइना तथा ब्राजील में तानाशाही शासन स्थापित हुए। मैक्सिको में भी एकदलीय व्यवस्थावाली लोकतंत्री शासन स्थापित हुआ। लैटिन अमेरिका में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लोकतंत्र का दर्जा उरुग्वे को मिला।

एशिया में राष्ट्रवादी आंदोलन

राष्ट्रवाद का सामान्य अर्थ ''स्वदेश के प्रति वफ़ादारी अथवा देशभक्ति'' होता है। इस काल में (1919 - 1939) एशिया के कुछ देशों पर यूरोपीय राष्ट्रों फ्रांस तथा इंग्लैंड का शासन था। इस समय एशिया में राष्ट्रीय आंदोलन हुए। उसकी प्रेरणा भी यूरोप से ही मिली थी क्योंकि व्यक्ति स्वातंत्र्य, उदारता, राष्ट्रीय एकता, स्वतंत्रता, लोकतंत्र, समाजवाद, संवैधानिक सरकार जैसे स्वाधीनता के विचार एशियाई राष्ट्रवादी नेताओं जैसे कि चीन के डॉ.सुन-यान-सेन, भारत के महात्मा गाँधी, नेहरू, जिन्ना वियतनाम के हों-ची-मीन्ह, फिलीपाइन्स के क्विजो ने यूरोपीय शिक्षा से ही प्राप्त किए थे। इसी तरह साम्राज्यवादी देशों द्वारा आर्थिक शोषण, रंगभेद, जातिभेद, आवागमन तथा संदेशव्यवहार के साधनों के विकास इत्यादि ने एशियाई प्रजा में यूरोपीय शासन के विरोध में राष्ट्रवादी आंदोलनों के लिए पूर्वभूमिका तैयार की।

भारत में इस समय गाँधीजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन आरंभ हुआ। रोलेट एक्ट, जलियाँवाला बाग हत्याकांड, चौरीचौरा कांड आदि घटनाओं के विरुद्ध अहिंसक आंदोलन शुरू हुए। यहाँ असहयोग आंदोलन के साथ कुछ क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ तथा रचनात्मक कार्यों द्वारा आंशिक स्वराज की माँग से पूर्ण स्वराज की माँग तक के राष्ट्रीय आंदोलनों का स्वरूप व्यापक बना।

'शिन हाई' (1911) नामक सफल क्रांति ने चीन में गणतंत्र की स्थापना की। यहाँ लंबे समय तक साम्यवादी अपना शासन स्थापित नहीं कर सके थे, किन्तु दीर्घकालीन संघर्ष के पश्चात् यहाँ साम्यवादी सरकार की रचना हुई।

भारत के पड़ोसी देश अफ़गानिस्तान ने इंग्लैंड के विरुद्ध सशस्त्र लड़ाई लड़कर स्वतंत्रता प्राप्त की। ईरान से रूसी सैनिकों को रूस द्वारा वापस बुला लेने के बाद ईरान में इंग्लैंड के शासन के विरुद्ध संघर्ष शुरू हुआ। अंत में (1950) में ईरान ने आज़ादी प्राप्त की।

इस तरह एशिया में प्रथम विश्वयुद्ध के अंत में फ्रांस तथा इंग्लैंड के विरुद्ध स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष अनेक देशों में आरंभ हुए, जिसके कारण कुछ राष्ट्रों को पूर्ण आजादी मिली तो कुछ राष्ट्रों में आजादी प्राप्ति के लिए चल रहे आंदोलनों की नींव मजबूत बनी।

जापान में सैन्यवाद

इस समय में जापान ने अपनी पैदल सेना तथा नौकादल को आधुनिक बताया। शस्त्रसामग्री उत्पादन के लिए अनेक कारखाने शुरू किए। राजनीति में सैन्य अधिकारियों को महत्त्वपूर्ण पद प्रदान किए गए। राजनीति में सेना का महत्त्व बढ़ा। प्रजा सेना को आदर कथा सम्मान से देखने लगी। प्रचंड सैन्य ताकत के बल पर जापान ने अनेक नए प्रदेशों पर अधिकार किया। सैन्यवादी नीति अपनाकर वर्सेल्स की संधि की अवगणना की। नौसेना के मामले में तो उसने इंग्लैंड तथा अमेरिका के बाद तीसरा स्थान प्राप्त किया।

जापान का विश्वसत्ता के रूप में उदय

एशिया का छोटा-सा देश जापान 20 वीं सदी के प्रथम तीन दशक तक पूँजीवादी तथा व्यक्तिवादी विचारधारा के प्रभाव में था। उसकी गृह तथा विदेशीनीति, संवैधानिक संसदीय लोकतंत्र के स्वरूप की थी। विदेशनीति पर आंतरराष्ट्रीय सद्‌भाव, सहिष्णुता तथा सहयोग का वर्चस्व था। व्यक्तिवादी विचारों के प्रभुत्व के परिणामस्वरूप व्यापार, रोजगार तथा उद्योग-धंधे में प्रगति हुई थी। इस समय यहाँ निश्चित राष्ट्रीय दल का आधिपत्य था। पाश्चात्य जीवनशैली के कारण देश की संपत्ति और प्रगति अमुक विशिष्ट वर्ग के हाथ में रही। उसने अपनी अनुकूलता अनुकूलता के अनुसार देश के लिए नीति निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस तरह राष्ट्र में आर्थिक तथा सामाजिक स्थिरता स्थापित करने के बाद जापान ने सैन्यवाद को प्रोत्साहित करनेवाली प्रवृत्तियाँ शुरू की। इस तरह राजनीतिक, आर्थिक तथा सैनिक शक्ति में वृद्धि करके जापान पाश्चात महासत्ताओं की पंक्ति में स्थान पाने में सफल रहा।

आक्रमक एवं तुष्टीकरण की नीति

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद हुई वर्सेल्स संधि में जर्मनी, जापान, इटली के प्रति हुए अन्याय के कारण इन राष्ट्रों में महासत्ताओं के प्रति विशेष रूप से इंग्लैंड तथा फ्रांस के प्रति नफरत तथा तिरस्कार की भावना जनमी। इस समय इटली में फासीवाद, जर्मनी में नाज़ीवाद तथा जापान में सैन्यवाद का प्रसार हुआ था। परिणामस्वरूप ये राष्ट्र आक्रमक बने। रूस भी इस समय 'कोमिन्टर्न' द्वारा साम्यवाद की रक्षा तथा प्रसार के लिए कटिबद्ध बना था। ऐसे में इन फासीवादी, नाज़ीवादी सत्ताओं तथा जापान को खुश रखकर आक्रमण के लिए प्रोत्साहित करने की ब्रिटेन तथा फ्रांस की नीति इतिहास में 'तुष्टीकरण की नीति' के रूप में जानी जाती है।

ब्रिटेन तथा फ्रांस की इस तुष्टीकरण नीति का मुख्य उद्देश्य साम्यवाद तथा सोवियत रूस के विस्तारवाद को रोकना था। उसके लिए फासीवादी सत्ता तथा सोवियत रूस के बीच घर्षण जारी रहे तो दोनों गुटों का एक-दूसरे पर अंकुश रहे। इसके लिए ब्रिटेन ने नाज़ी जर्मनी को शक्तिशाली बनने से रोकने के लिए इटली द्वारा एबीसीनिया पर किए गए आक्रमण को परोक्ष समर्थन दिया। इसी तरह स्पेन के गृहयुद्ध के समय इटली ने विद्रोहियों की मदद की परंतु इंग्लैंड ने फिर भी इटली के साथ मित्रता और मुसोलिनी को खुश रखने के प्रयत्न किए।

साम्यवाद के प्रसार के भय से ब्रिटेन ने (1935) जर्मनी के साथ नौसेना-संधि की जिससे जर्मनी को वर्सेल्स की संधि को भंग करने का प्रोत्साहन मिला। उसी तरह जापान की मंचूरिया पर विजय को स्वीकृति देकर ब्रिटेन अपने व्यापारिक हितों की रक्षा तथा आर्थिक लाभ लेना चाहता था। इस समय एशिया-अफ्रीका के संस्थानों पर ब्रिटेन की पकड़ ढीली पड़ती जा रही थी, इस कारण उसे साम्यवाद के प्रसार का ज्यादा भय लगा। परिणामस्वरूप फासीवादी सत्ताओं का मूल उद्देश्य और उनकी व्यूहरचना समझने में ब्रिटेन एकदम असफल रहा।

इंग्लैंड की भाँति फ्रांस को भी एशिया-अफ्रीका के अपने संस्थानों पर अपनी पकड़ कमजोर होती मालूम पड़ी और उसकी असुरक्षा की भावना तीव्र बनी। उसकी विदेशनीति किसी भी तरह से जर्मनी को शक्तिशाली होने से रोकने की थी। इसके लिए उसने सामूहिक सुरक्षा की कीमत पर भी इटली की मित्रता प्राप्त करने की कोशिश की।

संक्षेप में, साम्यवाद के प्रसार के भय से लोकतांत्रिक ब्रिटेन और फ्रांस ने इटली, जर्मनी तथा जापान के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाई, जिससे सत्ता संतुलन नष्ट हुआ, जिसके परिणामस्वरूप द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ।

चीन पर जापान का आक्रमण

चीन का खनिज सम्पन्न मंचूरिया प्रांत जापान को अपने औद्योगिक विकास के लिए अनुकूल लगा। इसके लिए जापान ने सर्वप्रथम 'दक्षिण मंचूरिया रेलवे कंपनी' की स्थापना करके मंचूरिया में रेल बिछाने की तैयारी की। इस प्रदेश से और अधिक लाभ लेने के लिए जापान ने (1931) मंचूरिया पर आक्रमण करके उस पर

संपूर्ण अधिकार जमाया। तत्पश्चात् चीन के अन्य प्रदेशों पर कब्जे के लिए उसने आक्रामक कदम उठाए। चीनने राष्ट्रसंघ में इसकी शिकायत की, पर राष्ट्रसंघ जापान के विरुद्ध कोई दंडात्मक कारवाई नहीं कर सका।

आगे चलकर जापान ने मंचूरिया में 'मंचुकुओ' नामक अलग राज्य बनाकर वहाँ अपनी 'कठपुतली सरकार' स्थापित की। इतना ही नहीं उसके साथ अलग से संधि करके वहाँ अपनी सेना तथा राजनीतिक - आर्थिक सलाहकार रखने की माँग की तथा अन्य सुविधाएँ भी प्राप्त कर ली।

इथोपिया पर इटली का आक्रमण

पूर्व अफ्रीका में स्थित इथोपिया पर इटली ने (1896 में) आक्रमण करके अपना वर्चस्व स्थापित करने का प्रयत्न किया; परन्तु उस समय हबसी प्रजा के कारण वह सफल नहीं हुआ। उसके बाद (1928 में) 'स्थायी मैत्री और मध्यस्थता' की संधि करके भी इटली यहाँ पर कुछ भी प्राप्त नहीं कर सका। उस समय जापान और जर्मनी से प्रेरणा ग्रहण करके इटली ने बलप्रयोग द्वारा आक्रमण करने का निर्णय किया। एक इटालियन सैनिक की हत्या (अक्टूबर, 1935) को निमित्त बनाकर इटली ने इथोपिया पर आक्रमण कर दिया। उस समय इथोपिया के शाह हेइल ने राष्ट्रसंघ से शिकायत की। राष्ट्रसंघ ने इटली को 'आक्रमणकर्ता' घोषित किया, फिर भी राष्ट्रसंघ के कुछ देशों ने इटली की आर्थिक सहायता जारी रखी। अंत में (1936) इटली के प्रमुख को इथोपिया का सम्राट घोषित किया गया।

वैश्विक घटनाओं में नाज़ी जर्मनी की भूमिका

जर्मन तानाशाह हिटलर ने प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी की समस्याओं को दूर करने के लिए नाज़ीपक्ष की स्थापना की। बहुत ही कम समय में आक्रमक कदम उठाकर, जर्मनी को मुश्किली में से बचाकर अनेक सिद्धियाँ प्राप्त की। इससे जर्मनी की प्रजा के जीवन में परिवर्तन आया। सत्ता पर आते ही हिटलर ने नाज़ी विचारधारा के अनुरूप यूरोपीय सत्ताओं के साथ अपने संबंधों में परिवर्तन किया। उसने पोलैंड के साथ 'मैत्री और अनाक्रमण की दसवर्षीय संधि करके पोलैंड को फ्रांस के राजनीतिक प्रभाव से मुक्त किया। नाज़ीवादी विचारों को अटकाने के लिए रूसने पेरिस शांति समझौते में फेरफार की जो माँग रखी थी उसे छोड़ दिया। वर्साई की संधि के मुताबिक जो राजनीतिक सरहदें निश्चित की गई थीं उस मुद्दे को फ्रांस ने समर्थन दिया। इससे ज़ेकोस्लोवाकिया, रूमानिया तथा युगोस्लाविया के बीच जो एकता थी वह शिथिल हो गई। फ्रांस और इटली में नजदीकी बढ़े तो युगोस्लाविया के कुछ भागों पर इटली की सत्ता स्थापित हो सकने के भय से युगोस्लाविया ने इटली के विरुद्ध जर्मनी को समर्थन देना शुरू किया। हिटलर तथा नाज़ी पक्ष से बचने के लिए (1935) रूस एवं फ्रांस के बीच तथा सोवियत रूस, फ्रांस और जेकोस्लोवाकिया के बीच रक्षासंधि हुई। इस तरह, साम्यवादी तथा लोकतंत्री विचारधारावाले राष्ट्र नाज़ी जर्मनी के भय से निकट आए। परिणामस्वरूप विश्व की महासत्ताओं के संबंधों ने नया रूप धारण किया। परंतु बहुत ही कम समय में सत्ता-संबंधों का यह नया रूप नाज़ी जर्मनी की आक्रमक नीति के कारण नष्ट हुआ।

'कोमिन्टर्न' .. विरोधी करार

रूसी क्रांति (1917) के पहले से (1919) तक रूस में तीन साम्यवादी आंतरराष्ट्रीय संस्था 'कोमिन्टर्न' (कामदार पक्ष का आंतरराष्ट्रीय संगठन) स्थापित हुआ। उसका ध्येय रूस में साम्यवाद की रक्षा करना तथा विश्व में साम्यवाद के विचारों का प्रचार-प्रसार करना था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व साम्यवादी और लोकतांत्रिक जैसे दो विरोधी विचारधाराओं में बँट गया तब लोकतांत्रिक देशों में कोमिन्टर्न की प्रवृत्तियों को रोकने, साम्यवाद के प्रसार को अटकाने या उसके खिलाफ रक्षण पाने के लिए उसके खिलाफ संधियाँ हुईं। जिसमें अमेरिका की प्रेरणा से उत्तर अटलांटिक किनारे के देशों का संगठन (1949) - 'नाटो' (NATO) दक्षिण पूर्व एशिया के देशों की रक्षा के लिए 'सीटो' (SEATO 1954) तथा तत्पश्चात् इंग्लैंड, अरब संघ तथा अमेरिका ने केन्द्रीय संधि 'सेंटो' (CENTO) की रचना की। हालाँकि इसके परिणामस्वरूप परिस्थिति और अधिक तनावपूर्ण बनी और इन संधियों में नहीं जुड़नेवाले राष्ट्र असुरक्षा का अनुभव करने लगे।

म्युनिख करार

उग्रवादी तथा साम्राज्यवादी वृत्तिवाला हिटलर समग्र विश्व पर जर्मनी का आधिपत्य जमाना चाहता था। इसके लिए जर्मनी में विशाल जर्मन राष्ट्र की रचना के लिए उसने उग्र आक्रमक नीति अपनाई। जर्मनी के औद्योगिक विकास के लिए जेकोस्लोविया चेकोस्लोवाकिया में सुडेट्नलैंड नामक प्रदेश खूब उपयोगी था। साथ ही यहाँ जर्मन आबादी का प्रमाण भी अधिक था, इसलिए हिटलर ने इस प्रदेश पर अपना दावा पेश किया। इससे ब्रिटेन के प्रधानमंत्री (चेम्बरलें) और फ्रांस के प्रधानमंत्री (दिलेदियर), हिटलर और मुसोलिनी म्युनिख में मिले। यहाँ हिटलर ने सुडेटनलैंड पर दावा करके कुछ शर्तें रखीं जिसे जेकोस्लोवाकिया की सहमति के बिना। ब्रिटेन तथा फ्रांस के प्रधानमंत्रियों ने स्वीकार कर लिया, इस समझौते को म्युनिख करार के रूप में जाना जाता है। इस संधि से हिटलर ने जर्मन आबादी वाले जेक प्रदेश पर संपूर्ण अधिकार कर लिया, परिणामस्वरूप किसी भी तरह के प्रबल विरोध के बिना जेकोस्लाविया का पतन हुआ।

म्युनिख करार के परिणामस्वरूप तानाशाही शासन के सामने इंग्लैंड तथा फ्रांस की कमजोरियाँ खुल गईं और हिटलर की साम्राज्यवादी तानाशाही नीति को पोषण मिला। निकट भविष्य में ही उसकी यह स्वेच्छाचार पूर्ण साम्राज्यवादी नीति ने समग्र विश्व को दूसरे विश्वयुद्ध का रण मैदान बना दिया।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) राष्ट्रसंघ की स्थापना के उद्देश्य क्या थे?

(2) फासीवादी विचारधारा की विशेषताएँ बताइए।

(3)नाज़ीवाद के उदय के कौन-से कारण थे?

(4) विश्वसत्ता के रूप में जापान का उदय कैसे हुआ?

(5) प्रथम विश्वयुद्ध के अंत में अफ्रीकी देशों में कौन-से परिवर्तन हुए?

2. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) राष्ट्रसंघ ने कौन-कौन से सामाजिक सुधार किए?

(2) प्रथम विश्वयुद्ध के बाद इंग्लैंड में हुए परिवर्तनों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

(3) 'न्यू डील' नीति किसने और क्यों अमल में लाई?

(4) तुष्टीकरण की नीति अर्थात् क्या?

(5) कोमिन्टर्न का मुख्य ध्येय क्या था?

3. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) राष्ट्रसंघ की स्थापना कब हुई?

(अ) 1820 (ब) 1920 (क) 1939 (ड) 1945

(2) हिटलर ने अपने कारावास दरम्यान कौन-सी पुस्तक लिखी?

(अ) मेरा ध्येय (ब) मेरा देश (क) मेरा संघर्ष (ड) मेरा स्वप्न

(3) सोवियत समाजवादी गणतांत्रिक संघ का संक्षिप्त नाम क्या है ?

(अ) यू.एस.एस.ए. (ब) यू.एस.पी.एस.

(क) यू.एस.ए.आर. (ड) यू.एस.एस.आर.

(4) 'दक्षिण मंचूरियन रेल्वे कंपनी' के स्थापक देश का नाम बताइए।

(अ) जापान (ब) जर्मनी (क) चीन (ड) जेकोस्लाविया

(5) किस करार से इंग्लैंड तथा फ्रांस की तानाशाही के सम्मुख कमजोरियाँ जाहिर हुई?

(अ) वर्सेल्स की संधि (ब) म्युनिख करार

(क) वार्सा करार (ड) सिमला करार

●

14 द्वितीय विश्वयुद्ध (1939-1945)

मानवजाति के इतिहास में सर्वाधिक विनाशकारी और रक्तरंजित महायुद्ध का प्रारंभ हिटलर की नाजी सेना पोलैंड पर आक्रमण से हुआ। इंग्लैंड तथा फ्रांस ने दो दिन बाद (3 सितम्बर, 1939) जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। वास्तव में इस विश्वयुद्ध के आरंभ का बीज तो पेरिस शांति सम्मेलन में ही पड़ चुका था। आंतरराष्ट्रीय शांति स्थापना हेतु बनाया गया राष्ट्रसंघ भी इन महासत्ताओं को सैन्यवाद की दौड़ से रोक न सका। उग्र राष्ट्रवाद ने साम्राज्यवाद को पनपाया। साम्राज्यवाद ने सैन्यवाद को बढ़ावा दिया। अंत में अधिकांश विश्वयुद्ध की चपेट में आ गया। यहाँ, इस विश्वयुद्ध के उद्‌भव-प्रसार के लिए जवाबदार परिबलों की चर्चा करेंगे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण

वर्सेल्स की संधि (1919) : प्रथम विश्वयुद्ध के अंत में पेरिस शांति सम्मेलन में जर्मनी पर मित्रराष्ट्रों ने कई कठोर शर्तें रखीं : ये शर्तें वर्सेल्स की संधि कहलाती हैं। इस संधि के अनुसार जर्मनी के कुछ प्रदेशों को फ्रांस ने हथिया लिया। जर्मनी की जीवन डोरी के समान रहाइन नदी को आंतरराष्ट्रीय जलमार्ग के लिए खोल दिया गया। जर्मनी का अनिवार्य निशस्त्रीकरण किया गया। ऐसी कठोर तथा राष्ट्रीय अपमानजनक प्रावधानों के कारण जर्मनी शर्मनाक स्थिति में आ गया। हिटलर ने जर्मन प्रजा का सम्मान वापस दिलाने हेतु ऐसी शर्तों का विरोध करके उसे अस्वीकार कर देने का आह्‌वान किया। इटली, जापान आदि देशों ने भी इस संधि को अस्वीकार करके विरोध प्रकट किया। इससे ये राष्ट्र अब बदले की भावना और साम्राज्यवादी मनोदशाग्रस्त हो गए, जिसमें से द्वितीय विश्वयुद्ध का आरंभ हुआ।

यूरोपीय राष्ट्रों की गुटबंदियाँ : प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर विश्वशांति बनाए रखने के लिए राष्ट्रसंघ की रचना की गई थी, फिर भी यूरोपीय राष्ट्रों में परस्पर अविश्वास और भय कम नहीं हुआ। इसी कारण जर्मनी, इटली, जेकोस्लोवाकिया (चेकोस्लोवाकिया), यूगोस्लाविया आदि देशों द्वारा अलग-अलग देशों के साथ संधि करने से वे गुटबंदी में बँट गए, जिससे द्वितीय विश्वयुद्ध के बादल घिर आए।

सशस्त्रीकरण की दौड़ : परस्पर सहयोग और नि:शस्त्रीकरण की बात करनेवाले राष्ट्रसंघ के निष्फल होने से अशांति, भय, अविश्वास और सशस्त्रीकरण में वृद्धि हुई। मुसोलिनी तथा हिटलर तेजी से शस्त्रसज्ज हो रहे थे। उनके विरुद्ध फ्रांस, पोलैंड तथा अन्य राष्ट्रों को अपनी सुरक्षा के लिए सशस्त्र सज्ज बने बिना छुटकारा न था। एशिया में जापान भी वैसा ही कर रहा था। अंत में इंग्लैंड भी सशस्त्रीकरण की दौड़ में कूद पड़ा, जिससे इस महायुद्ध का आविर्भाव हुआ।

उग्र राष्ट्रवाद :

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद कुछ देशों में उग्र राष्ट्रवाद का विकास हुआ। उनमें मुख्यत: पराजित जर्मनी, असंतुष्ट इटली और महत्वाकांक्षी जापान का समावेश होता है। ये राष्ट्र किसी भी कीमत पर अपने राष्ट्र को महान बनाना चाहते थे। उन राष्ट्रों के शासकों ने अपनी-अपनी प्रजा में राष्ट्रवाद की भावना उकसाकर उसे जनूनी स्वरूप दिया। परिणामस्वरूप युद्ध अनिवार्य हो गया।

राष्ट्रसंघ की अवगणना : विश्वशांति के लिए स्थापित राष्ट्रसंघ के साथ रहनेवाले शक्तिशाली देश विश्व में शांति-सुरक्षा की कोरी बातें करते थे। जापान ने चीन के प्रदेश मंचूरिया पर आक्रमण (1931) किया। चीन ने राष्ट्रसंघ का दरवाजा खटखटाया, पर कोई समाधान न आया। इटली के मुसोलिनी ने भी एबीसीनिया पर कब्जा किया और राष्ट्रसंघ की सदस्यता छोड़ दी। इस तरह विश्वयुद्ध के लिए मार्ग खुलता गया।

हिटलर की साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा :

हिटलर जर्मनी को यूरोप का महान और शक्तिशाली राष्ट्र बनाना चाहता था। हिटलर ने जापान, रुस, इटली के साथ संधि करके अपनी साम्राज्यवादी नीति को आक्रमक बनाया।

आस्ट्रिया पर कब्जा :

हिटलर की साम्राज्यवादी नीति का पहला शिकार आस्ट्रिया बना हिटलर अपनी सेनासहित वियेना तक पहुँच गया। थोड़े दिनों बाद आस्ट्रिया में जनमत संग्रह कराया गया। उसके आधार पर आस्ट्रिया को जर्मनी में मिला दिया गया (1938)।

जेकोस्लोवेकिया पर कब्जा :

जेकोस्लोवेकिया के एक नगर सुडेट्नलैंड में 32 लाख जितने जर्मनों के निवास को आधार बनाकर हिटलर ने उसे जर्मनी में मिलाने की घोषणा की। वहाँ की सरकार ने उसका विरोध किया। जर्मनी ने कठोर कदम उठाए। म्युनिख़ सम्मेलन में पारित प्रस्ताव के दूसरे ही दिन (1 अक्टूबर, 1938) आक्रमण किया। जर्मन सेना ने ज़ेकोस्लोवाकियि में प्रवेश किया। साथ ही हंगरी और रूमानिया पर अधिकार कर लिया। हिटलर द्वारा दुबारा ज़ेकोस्लोवाकिया पर अधिकार कर लेने से उसकी स्वतंत्रता का अंत हुआ तथा यह युद्ध शुरू हुआ।

लिथुआनिया के मेमल बंदरशाह पर अधिकार :

हिटलर की नजर मेमल बंदरगाह पर पहले से ही थी। मेमल बंदरगाह पर कब्जा हो जाय तो यूरोप के कुछ प्रदेशों पर अपनी नजर रहेगी, इस कारण इस बंदरगाह पर उसने अधिकार किया। इसी समय हिटलर के मित्र मुसोलिनी ने अल्बेनिया पर कब्जा जमा लिया (1939)।

जर्मनी द्वारा पोलैंड पर आक्रमण और विश्वयुद्ध का प्रारंभ

हिटलर ने आयोजनपूर्वक आगे बढ़ते हुए आस्ट्रिया, ज़ेकोस्लोवाकिया तथा मेमल बंदरगाह पर कब्जा करने के बाद पौलैंड पर अपना पंजा मारा। उसने पोलैंड के प्रदेशों को जोड़नेवाले कॉरीडोर (पट्टी) को झगड़े का कारण बनाकर उस पर अपना अधिकार दर्शाया। हिटलर ने पोलैंड के साथ बातचीत करने का प्रयत्न किया किन्तु उसमें सफलता नहीं मिलने से उसने पोलैंड पर आक्रमण किया (1 सितम्बर, 1939)। युद्ध आरंभ होते ही जर्मन सेनाओं ने पोलैंड को घेर लिया। पोलैंड के किलों, रेलवे, कारखानों तथा सैन्य ठिकानों पर बम वर्षा करने लगा। रूस ने भी पूर्वी पोलैंड में सेना भेजकर उस पर अधिकार कर लिया। अंत में पोलैंड की राजधानी वार्सा का पतन होने पर उसका विभाजन किया गया।

बाल्टिक देशों पर रूस का अंकुश

रूस, पोलैंड के प्रदेश को प्राप्त करने के बाद पश्चिमी सीमा पर लिटेविया, लुथआनिया तथा फिनलैंड के पास से उनके हवाई अड्डों पर कब्जा करना शुरू किया। फिनलैंड द्वारा विरोध किए जाने पर रूस ने उस पर आक्रमण किया। थककर फिनलैंड ने अपने कुछ सैनिक तथा हवाई अड्डे रूस को सौंप दिए।

नार्वे तथा डेनमार्क पर जर्मनी का अधिकार

इंग्लैंड द्वारा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषित करते ही फ्रांस की उत्तर सीमा तथा मेजीनोट रेखा की रक्षा के लिए ब्रिटिश सैन्य टुकड़ी भेजी गई। जर्मनी को नार्वे से प्राप्त शस्त्रसामग्री, कच्चा लोहा न मिलने पर उसने डेन्मार्क पर आक्रमण किया और एक ही दिन में उसको जीत लिया। नार्वे ने दो महीने बाद शरणागति स्वीकार कर ली (1940)।

फ्रांस का पतन (फ्रांस पर जर्मनी का अधिकार)

हिटलर ने अब अपना ध्यान फ्रांस पर केन्द्रित किया। फ्रांस ने जर्मनी की ओर की अपनी सीमा पर किलों की शृंखला बनाई थी, परंतु बेल्जियम की ओर की सीमा अरक्षित थी। बेल्जियम पर अधिकार होने के साथ ही जर्मन सेना फ्रांस में प्रविष्ट हुई। फ्रांसीसी सेना ने सामना किया। परंतु आकाश में से निरंतर की जा रही बमवर्षा तथा जर्मन टैंकों ने फ्रांसीसी सेना को हराया। मुसोलिनी ने भी फ्रांस पर आक्रमण किया। अंत में जर्मनी ने पेरिस पर कब्जा किया (1940)। जर्मनी ने नई सरकार की रचना की जो 'कठपुतली सरकार' साबित हुई। तत्पश्चात् जनरल दे गाल के नेतृत्व में आजाद फ्रांसीसी सरकार की रचना हुई जिसने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध जारी रखा।

विश्वयुद्ध की व्यापकता

जर्मनी ने यूरोप के अधिकतर भागों पर कब्जा कर लिया। उसके मित्र मुसोलिनी ने भी अफ्रीका के कुछ प्रदेशों पर अधिकार किया। अब तक जर्मनी की एक भी हार न होने से उसका आत्मविश्वास बढ़ता जा रहा था। जर्मनी ने नार्वे से लेकर स्पेन तक के यूरोप के समुद्री तट को अपने कब्जे में लेकर पश्चिम तथा मध्य यूरोप की साधन संपत्ति पर अपना कब्जा स्थापित किया। मात्र इंग्लैंड अडिग खड़ा था। यूरोप का स्वामी बनना चाहते हिटलर ने इंग्लैंड पर हवाई हमला किया, जिसे 'ब्रिटन युद्ध' के नाम से जाना जाता है। जर्मनी विमानों ने पाँच महीने तक इंग्लैंड की भूमि पर बम वर्षा करके इंग्लैंड के व्यापार, उद्योगों तथा नगर मुख्यालयों का नाश किया फिर भी इंग्लैंड अजेय रहा, जर्मनी की विजय न हुई। धुरी राज्यों में से इटली ने भूमध्य तथा रूसियों ने बाल्टिक प्रदेशों में अपने पैर फैलाए। अंत में हंगेरी और रूमानिया धुरी राष्ट्रों के गुट में शामिल हुए।

युद्ध में मित्रराष्ट्रों को अमेरिका की सहायता

विश्वयुद्ध आरंभ हुआ उस समय अमेरिकी प्रजा ने उसमें तटस्थ रहना पसंद किया। अमेरिकी राष्ट्रपति फ्रेंकलिन-डी-रूजवेल्ट की इंग्लैंड तथा लोकतांत्रिक देशों के प्रति सहानुभूति होने के बावजूद वे मदद नहीं कर सकते थे। जर्मनी द्वारा इंग्लैंड पर आक्रमण किए जान के साथ ही धुरी राष्ट्रों की सदस्य संख्या बढ़ने लगी। अमेरिकन की विशेष सहानुभूति इंग्लैंड के प्रति थी। इसलिए वह इंग्लैंड तथा मित्रराष्ट्रों को शस्त्रसामग्री तथा अनाज भेजता था। अमेरिकी राष्ट्रपति तथा इंग्लैंड के प्रधानमंत्री के बीच अटलांटिक महासागर में एक युद्ध जहाज पर मिलने के अंत में एक घोषणापत्र तैयार किया गया, वह अटलांटिक घोषणापत्र के रूप में प्रकाशित हुआ (1941)। इंग्लैंड को अमेरिकी मदद मिलते ही मजबूत होकर उसने जर्मनी की सेना का जोरदार मुकाबला किया।

हिटलर द्वारा रूस पर आक्रमण

इंग्लैंड की सेना द्वारा जर्मनी के आक्रमणों को निष्फल बनाने पर हिटलर ने दूसरी चाल चली। उसने ईरान, इराक पर आक्रमण करने के लिए रूस को ललचाया। रूस हिटलर के पक्ष में खड़ा रहकर युद्ध में शामिल नहीं हुआ था। रूस को युद्ध में शामिल करने के लिए हिटलर ने ईरान से होकर भारत तक के प्रादेशिक विस्तार की संभावनाएँ रूस के समक्ष रखी परंतु रूश ने उसे स्वीकार नहीं किया तथा हिटलर और रूस के बीच वैमनस्य पैदा हुआ। अब जर्मनी की इच्छा रूस पर कब्जा करने की हुई। समग्र यूरोप पर स्वामित्व स्थापित हो सकेगा ऐसा सोचकर जर्मन सेना ने रूस पर आक्रमण किया (1941, 22 जून)। जर्मन सेना शुरुआत में रूस के कुछ भागों में आगे बढ़ी, परंतु थोड़े ही समय में जर्मन सेना के रूसी सेना से हारने पर जर्मनी की हार होती गई (1942)।

युद्ध में अमेरिका (यू.एस.ए.) का प्रवेश

युद्ध आरंभ हुआ उसी समय से ही अमेरिकी संस्थानों तथा मित्रराष्ट्रों के संस्थानों पर जापान में आक्रमण करके उन प्रदेशों को जीत लिया था। जापान महत्त्वाकांक्षी राष्ट्र था। जापान ने (1931) मंचूरिया पर आक्रमण करके उसका प्रमाण दिया था। इस युद्ध से लाभ उठाकर जापान ने एशिया तथा प्रशांत महासागर के विस्तार में आनेवाले कुछ प्रदेशों पर कब्जा कियाा था। जापान को युद्ध में आगे बढ़ने के लिए मात्र एक ही देश बाधक था-अमेरिका। इसलिए उसने अमेरिका के नौसेन केन्द्र हवाई टापू के पर्ल हार्बर बंदरगाह पर बमबारी की (7 दिसम्बर, 1941)। जिसमें अमेरिका के 2000 से भी अधिक अफसरों-सैनिकों तथा छोटे-बड़े अनेक युद्ध जहाजों का नाश हुआ। इसलिए अमेरिका ने जापान के खिलाफ युद्ध घोषित किया। उधर जापान के देशों जर्मनी, इटली साथी और रूमानिया आदि ने भी अमेरिका के खिलाफ युद्ध की घोषणा की।

विश्वयुद्ध का दूसरा चरण और मित्रराष्ट्रों की विजय की शुरुआत

अमेरिका ने युद्ध में प्रवेश करके मित्रराष्ट्रों के पक्ष में युद्ध घोषित किया तथा शस्त्रों का तेजी से उत्पादन आरंभ किया। अमेरिकी मदद मिलने पर मित्रराष्ट्रों की उत्तरी अफ्रीका में विजय प्राप्त हुई (1942)। उत्तर

अफ्रीका में मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने जर्मनी तथा इटली को हराकर मिस्र (इजिप्त) में से भगा दिया। मित्रराष्ट्रों की इस सेना ने सिसली पर अधिकार किया (1943)।

इटली की शरणागति और मुसोलिनी का पतन

इटली की प्रजा ने अपने पर मित्रराष्ट्रों के भय को पहचाना क्योंकि सिसली इटली से एक कदम दूर था। 24 जुलाई को इटली के राजा विक्टर तृतीय से सत्ता सँभालने के लिए प्रजा ने विनती की। राजा ने सत्ता के सूत्र हाथ में लेते ही मुसोलिनी को कैद किया और फॉसिस्ट दल को गैरकानूनी घोषित किया। मित्र राष्ट्रों की सेना इटली में उतरी (1943)। इटली की सरकार ने उसके सामने बिना शर्त के आत्मसमर्पण कर दिया और मित्र राष्ट्रों द्वारा पहले नेपल्स फिर रोम पर अधिकार कर लेने से इटली पर उनकी संपूर्ण विजय हुई (जून, 1944)।

रूस में जर्मनी की पराजय

जर्मनी की वही दशा रूस के मोर्चे पर हुई। पिछले कुछ समय से साढ़े तीन लाख जर्मन सैनिक स्टालिनार्ड पर अधिकार जमाने के लिए जी-जान से लगे थे। परंतु रूस जरा भी ढील नहीं दे रहा था। दूसरी ओर मित्र राष्ट्रों के युद्ध विमान जर्मनी पर लगातार बमवर्षा कर रहे थे, इसलिए जर्मनी को भी अपनी रक्षा करनी थी। जर्मन अब रूस में हार रहे थे। रूसी सेना ने जर्मन सेना को हराकर(फरवरी, 1943) पोलैंड पहुँची। रूसी सेना के पोलैंड पहुँचने के पहले ही पोलैंडवासियों ने जर्मनी का जुआ कंधे से उतार फेंका था।

उत्तरी अफ्रीका, इटली में जर्मन सेना की विजय से जर्मन सेना को फ्रांस से दूर करने का समय आ गया था। मित्र राष्ट्रों ने इंग्लिश चैनल में अपनी सेना भेजकर फ्रांस की मदद दी।

जर्मनी पर मित्रसेना का आक्रमण तथा हिटलर की पराजय

फ्रांस को जर्मन आधिपत्य से मुक्त कराने के बाद मित्रराष्ट्रों की सेना ने बेल्जियम, लक्ज़ेमबर्ग तथा हालैंड से जर्मन सेना निकाल बाहर किया (1944)। हिटलर ने मित्रराष्ट्रों की सेना को रोकने के लिए अकेले लंदन पर उसने 500 मील प्रति घंटा की गति छूटनेवाले दो हजार जितने बम छोड़े थे। डेढ़ सौ मील की ऊँचाई से फेंका जा सके ऐसे राकेट भी उसने इंग्लैंड पर दागे थे। हिटलर और भी विनाशक शस्त्र तैयार करता रहा था परंतु मित्रराष्ट्रों की सेना ने जर्मनी की सीमा में घुसकर बर्लिन को चारों ओर से घेरकर उस पर कब्जा कर लिया (मई, 1945)। हिटलर अपनी प्रेयसी इवा ब्राउन के साथ भाग गया। अंत में उसने आत्महत्या कर ली (1945)। अन्य नाज़ी नेताओं की गिरफ्तारी की गई। इस तरह यूरोपीय मोर्चे पर इस महायुद्ध का अंत हुआ (8 मई, 1945)।

जापान की करुण पराजय और युद्ध की पूर्णाहुति

मित्रसेना ने अब अपना ध्यान पूर्वी मोर्चे पर केन्द्रित किया। भारतीय सीमा पर के मणिपुर, कोहिमा, इम्फाल तथा दक्षिण-पूर्व रशिया के बर्मा, फिलीपाइंस, इंडोनेशिया इत्यादि देशों को मित्रराष्ट्रों की सेना ने जापान के पास से छुड़वाया। मित्रराष्ट्रों ने जापान से युद्ध बंद करने की अंतिम अपील की। जापान ने अपील का कोई उत्तर न दिया। मित्रराष्ट्रों ने आखिरी कदम उठाया और जापान के नगर हिरोशिमा पर अमेरिकी विमान ने परमाणु बम डाला (6 अगस्त, 1945)। थोड़े ही सेकंडों में विनाश हो गया। इस बम से लगभग 75 हजार लोग मारे गए। लाखों लोग रोगों के शिकार हुए। जापान में लाखों परचे विमान द्वारा गिराए जाते थे जिसमें इस बम की भयंकरता तथा विनाशक शक्ति का विवरण मित्रराष्ट्रों द्वारा जापानी प्रजा को बतलाया जाता था। जापान की सरकार से पुनः शरणागति की अपील की गई किन्तु जापान झुका नहीं, इसलिए दूसरा परमाणु बम जापान के नागासाकी शहर पर डाला गया (9 अगस्त, 1945)। नागासाकी शहर

हिरोशिमा पर अमेरिकी परमाणु बम फेंका गया

संपूर्ण विनष्ट हो गया। 50 हजार लोग तत्काल मारे गए। अंत में जापान सरकार ने शरणागति स्वीकार की (15 अगस्त, 1945)।

द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम

द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम स्वरूप लगभग 220 लाख लोग मारे गए तथा 340 लाख घायल हुए। यूरोप तथा विश्व के अर्थतंत्र पर भयंकर असर पड़ा। धन-संपत्ति की अपार हानि हुई। हर देश की चलनी मुद्रा की कीमत घटी, भाव बढ़े। जीवनस्तर नीचे गिरा। देशों की सरकारों द्वारा भारी कर लगाए गए। अनेक देशों में अनाज का रेशनिंग करना पड़ा। संयुक्त राष्ट्र (U.N.) की स्थापना हुई। चीन में साम्यवादी सरकार की रचना हुई। अफ्रीका-एशिया के कतिपय राष्ट्र स्वतंत्र हुए। महासत्ताओं के स्थान में परिवर्तन हुआ। विश्व के दो गुटों में बंट जाने से शीतयुद्ध आरंभ हुआ।

संयुक्त राष्ट्र (U.N.) : प्रथम विश्वयुद्ध की तुलना में द्वितीय विश्वयुद्ध अधिक भयंकर सिद्ध हुआ। इस युद्ध से विश्व की जनता त्रस्त हो उठी। विश्व के भले, समझदार नेताओं ने एक बार फिर से युद्ध को हमेशा के लिए बंद करने हेतु विचार-विमर्श आरंभ किया। अमेरिकी राष्ट्रपति एफ. डी. रूजवेल्ट विश्वशांति की स्थापना के लिए प्रयास किए। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ही उन्होंने चार अत्यंत महत्त्वपूर्ण-आवश्यक स्वतंत्रताओं की घोषणा की, जिनमें विचार एवं वाणी स्वातंत्र्य, धर्म स्वातंत्र्य, आवश्यकता से मुक्ति तथा भय से मुक्ति मुख्य है। एफ. डी. रूजवेल्ट का दूसरा कदम अटलांटिक दस्तावेज के नाम से प्रकाशित हुआ। वह शांति वार्ता के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। यूरोप के राष्ट्रों के भी इसमें जुड़ने से इस विश्वसंस्था की स्थापना हुई।

रूस, अमेरिका, इंग्लैंड तथा चीन के विदेशमंत्री मास्को में मिले (1943)। विश्व के लिए जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी एक आंतरराष्ट्रीय संस्था की आवश्यकता है, यह घोषणा की। इस संस्था की नींव शांति की कामनावाले सभी देश के सार्वभौमत्व तथा समानता का सिद्धांत रहना चाहिए। विश्व के सभी देश छोटे हों या बड़े, सभी आंतर राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए एक साथ मिल सकें। इस समग्र घटना के अंत में अमेरिका के डम्बार्टन ऑक्स (वाशिंग्टन) में 50 देशों के प्रतिनिधियों का एक सम्मलेन हुआ (जुलाई, 1944)। इस संस्था के लिए आंतरराष्ट्रीय धनराशि एकत्र किया गया। पुनर्वास, विकास के लिए आंतरराष्ट्रीय बैंक स्थापना आदि पर विचार-विमर्श किया। सानफ्रांसिस्को परिषद में विश्वसंस्था का दस्तावेज बनाया गया (1945) और उसमें उपस्थित 50 जितने देशों के प्रतिनिधियों ने इस दस्तावेज को अपने-अपने देशों की सरकार तथा विधायिका से मंजूर करने के लिए उनके सामने रखा। इस तरह 'संयुक्त राष्ट्रसंघ' (U.N.) नामक संस्था का जन्म हुआ (24 अक्टूबर, 1945)। 51 देश उसके सदस्य बने। आज उनकी संख्या चार गुना हो गई है। यह संस्था आज 'संयुक्त राष्ट्र' (U.N.) के रूप में जानी जाती है।

संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्य

संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों में आंतरराष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा की स्थापना करना। विश्व के देशों के बीच परस्पर मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित हों तथा वह बना रहे, ऐसे कार्य करना। विश्व की प्रजा पारस्परिक व्यवहार में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में परस्पर सहयोग करें, मानवाधिकारों का सम्मान करें, मूलभूत सभी मानवीय स्वतंत्रताओं की सभी रक्षा करें, ऐसे वातावरण का निर्माण करके विश्व में एकता स्थापित करना।

संयुक्तराष्ट्र के अंग

सामान्य सभा : सामान्य सभा की रचना सभी सदस्य देशों के प्रतिनिधियों की होती है। उसमें प्रत्येक राष्ट्र अधिक से अधिक पाँच प्रतिनिधि भेज सकता है। मतदान में एक ही मत गिना जाता है। इसके अध्यक्ष का चुनाव प्रतिवर्ष होता है।

सुरक्षा समिति : यह यू.एन. का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है। इसके कुल 15 सदस्यों में से 5 स्थायी सदस्य और दस अस्थायी सदस्य होते हैं। उन्हें सामान्य सभा दो वर्ष के लिए चुनती है।

सचिवालय तथा महामंत्री : संयुक्त राष्ट्र के महामंत्री की नियुक्ति सुरक्षा परिषद की संस्तुति पर सामान्य सभा 5 वर्ष के लिए चुनती है। महामंत्री का कार्यालय सचिवालय कहलाता है।

आंतरराष्ट्रीय न्यायालय : यह अंग संयुक्त राष्ट्र की पुरोगामी संस्था 'राष्ट्रसंघ' के समय की है, उसका ढाँचा वही रखा गया है। इसमें न्यायाधीशों की संख्या 15 रखी गई है, उनका कार्यकाल 9 वर्ष का रहता है।

अभिभावक समिति : यह अभिभावक समिति संयुक्त राष्ट्र की एक महत्त्वपूर्ण संस्था है। यह देशों की जनता के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रगति का ध्यान रखती है।

आर्थिक-सामाजिक समिति : विश्व में युद्ध को रोकने के साथ ही बेकारी और अज्ञानता के दूर करने में यह संस्था खूब महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसमें कुल 18 सदस्य देश हैं। इनका चुनाव प्रति तीन वर्ष पर होता है और वर्ष में तीन बार इसकी बैठक होती है।

संयुक्त राष्ट्र का मानवाधिकार घोषणापत्र

मानवजाति के लिए आज U.N. एक उज्ज्वल आशा है। संयुक्त राष्ट्र में हर राष्ट्र को प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। इसके अलावा सुरक्षा समिति में से 'वीटो' की सत्ता दूर करके मानवाधिकारों की तत्काल आवश्यकता है। विश्व राजनीति में आंतरिक मामले की व्याख्या स्पष्ट होनी चाहिए तथा संयुक्त राष्ट्र के आधीन आंतरराष्ट्रीय सैनिक दल की रचना करनी चाहिए। सबसे जरूरी यह कि विश्व की प्रजाओं को स्वयं अपने स्वभाव में परिवर्तन लाना होगा। आज विश्व की सभी प्रजाएँ-यूरोप, एशिया, अमेरिका, अफ्रीका की काली-गोरी, किसी लिंग, किसी भी धर्म-पंथ की प्रजा 'पंचशील' का सूत्र स्वीकार करे और उसके अनुरूप व्यवहार करने का दृढ़ निश्चय करे तभी पारस्परिक सहयोग से मानव कुटुंब का मंगल गान इस धरती पर गूँजने लगेगा और इसके साथ वह मंगल दिन खूब जल्दी आए, तब संयुक्त राष्ट्र द्वारा विश्वएकता और विश्वबंधुत्व का स्वप्न साकार होगा।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) द्वितीय विश्वयुद्ध के परिबल।

(2) द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मनी की विजयों की चर्चा कीजिए।

(3) द्वितीय विश्वयुद्ध की प्रमुख घटनाएँ।

(4) द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान की विजयों का वर्णन कीजिए।

(5) द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) जर्मन सेना का नाम बताइए।

(2) अमेरिका के किस नौसेना केन्द्र पर जापान ने बम फेंका था?

(3) हिटलर किस दल का नेता था?

(4) अमेरिका ने जापान के किन शहरों पर परमाणु बम गिराया था?

(5) संयुक्त राष्ट्र के मुख्य केन्द्र का नाम बताइए।

3. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारंभ वर्ष 1939 की किस तारीख को हुआ था?

(अ) 1 अक्टूबर (ब) 1 सितम्बर (क) 10 सितम्बर (ड) 14 अक्टूबर

(2) द्वितीय विश्वयुद्ध में अमेरिका ने कब प्रवेश किया?

(अ) 1939 (ब) 1940 (क) 1941 (ड) 1942

(3) नागासाकी पर परमाणु बम कब डाला गया था?

(अ) 6, अगस्त, 1945 (ब) 5, मई, 1945 (क) 9, अगस्त, 1945 (ड) 18, मई, 1945

(4) विश्वशांति के लिए दस्तावेज बनाने वाले एफ. डी. रूजवेल्ट किस देश के निवासी थे?

(अ) रूस (ब) अमेरिका (क) इंग्लैंड (ड) फ्रांस

(5) स्थापना के समय संयुक्त राष्ट्र (U.N.) में कितने राष्ट्र जुड़े थे?

(अ) 48 (ब) 49 (क) 50 (ड) 51

●

15 द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद का विश्व

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर विश्वशांति के लिए राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई थी परन्तु इस दिशा में वह सफल नहीं हो सका। यूरोपीय महासत्ताएँ जहाँ तक उनका स्वार्थ सिद्ध होता हो वहाँ तक राष्ट्रसंघ को स्वीकार करने के लिए तैयार थीं परन्तु यदि उनका हित राष्ट्रसंघ के विरुद्ध जा रहा हो तो वे महासत्ताएँ राष्ट्रसंघ को छोड़ने के लिए तैयार थीं। इस कारण राष्ट्रसंघ विजेता राष्ट्रों का संघ बनकर रह गया। जर्मनी के प्रति वैरवृत्ति रखकर की गई संधि के कारण जर्मनी में हिटलर का उदय हुआ। नाज़ीवाद और हिटलर ने जर्मनों में राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित कर विश्व को दूसरे विश्वयुद्ध की ओर धकेला। प्रथम विश्वयुद्ध की अपेक्षा द्वितीय विश्वयुद्ध अधिक भयंकर था। परमाणु बम का प्रथमबार उपयोग इसी युद्ध में हुआ था। विश्व की महासत्ता इससे चौंक उठीं क्योंकि प्रथम विश्वयुद्ध के मात्र 20 वर्ष बाद ही यह युद्ध हुआ था। इस कारण महासत्ताएँ उस परिस्थिति का पुनरावर्तन करने को तैयार न थीं जो प्रथम विश्वयुद्ध के समय हुई थी। इस कार्य में वे काफी हद तक सफल भी हुई। जिससे अभी तृतीय महायुद्ध देखने का अवसर नहीं आया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के विश्व का पुनर्गठन

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी के प्रति वैरभाव रखकर पेरिस शांति सम्मेलन में संधि हुई थी परंतु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी के प्रति उस नीति को त्याग दिया गया था।

पोट्र्सडाम में विजेता राष्ट्रों के बीच हुई संधि के अनुसार जर्मनी की पूर्वी सरहद ओडर और नीस नदी तक कामचलाऊ रूप से तय हुई। उसकी पूर्वी सरहद के उत्तरी भाग पर रूस का नियंत्रण रखा गया। पौलैंड को डांज़िग, साइबेरिया, बेंडबर्ग, पामेरेनिया के प्रदेश मिले। फ्रांस को आल्सेस-लॉरा, स्पेन को यूपेन तथा मल्मेडी, ज़ेकोस्लोवाकिया को स्युडेटलैंड ज़मर्नी के पास से मिला। इनके सिवा बाकी बचे जर्मनी पर इंग्लैंड, फ्राँस, अमेरिका तथा रूस के संयुक्त नियंत्रण में रखा गया। जर्मनी की राजधानी बर्लिन को चार भागों में बाँटकर उन पर उपर्युक्त महासत्ताओं के नियंत्रण में दे दिया गया। इन चारों सत्ताओं के शासन तंत्र के संकलन के लिए 'संयुक्त-नियंत्रण समिति' (Allied Control Council) की रचना की गई। नाज़ी पार्टी को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया।

आस्ट्रिया को फिर से जर्मनी से अलग करके स्वतंत्र राष्ट्र बनाया गया। उस पर भी जर्मनी की ही तरह चार विभाग करके उस पर चार महासत्ताओं का शासन स्थापित कर दिया गया। वियेना की व्यवस्था भी जर्मनी की ही तरह की गई। इटली के पास से 1870 से बाद के उसके द्वारा कब्जा किए गए प्रदेशों को वापस ले लिया गया। आल्बेनिया, ट्रीएस्ट, लीबिया और एबीसीनिया को स्वतंत्र घोषित किया गया। जापान में वहाँ के राजा का शासन जापान की एकमात्र शर्त के साथ यथावत् रखा गया। परंतु जापान पर अमेरिकी सेनापित मेक आर्थर का अंकुश स्थापित कर दिया गया। इस तरह, इस बार प्रथम विश्वयुद्ध के समय की स्थिति का अधिक पुनरावर्तन नहीं किया गया।

साम्राज्यवादी संस्थाओं का विघटन

द्वितीय विश्वयुद्ध के लिए उत्तरदायी परिबलों में से एक था। विदेश व्यापार तथा संस्थानवाद। इसलिए युद्ध के पश्चात् इसलिए इंग्लैंड के संस्थानों में से इज़िप्त, सूडान, टोगोलैंड, गोल्डकोस्ट, सिल्वर लेकोस्ट, केन्या, युगांडा, नाइजीरिया, न्यासालैंड तथा रोडेशिया स्वतंत्र हुए। जबकि फ्रांस के आधिपत्य से हिन्दीचीन (इंडोचाइना), अल्जीरिया, ट्यूनीसिया स्वतंत्र हुए। इस तरह इंग्लैंड तथा फ्रांस जैसी साम्राज्यवादी सत्ताएँ कमजोर हुईं। विश्व-राजनीति पर उनकी पकड़ कमजोर हुई। इस परिस्थिति में अमेरिका तथा सोवियतसंघ (यू.एस.एस.आर.) का महासत्ता के रूप में उदय हुआ।

यू.एस.ए. तथा यू.एस.एस.आर. का महासत्ता के रूप में उदय

द्वितीय विश्वयुद्ध में सोवियत रूस को बहुत हानि उठानी पड़ी थी, परंतु उसने जो प्रदेश प्राप्त किए थे उन्हें उसके पास ही रहने दिया गया। इससे उसे भी युद्ध से लाभ हुआ। युद्ध के बाद पूर्वी जर्मनी, पोलैंड, रूमानिया, हंगेरी, बल्गेरिया, आल्बेनिया, ज़ेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया जैसे देशों पर साम्यवादी प्रभाव बढ़ा। एशिया में तुर्कीस्तान, मंगोलिया, उत्तर कोरिया, उत्तर वियतनाम और अरब देशों को स्वतंत्र कराने में रूस ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसलिए ये देश रूसी गुट की ओर झुके।

फिर भी युद्ध अमेरिकी भूमि से दूर था, युद्ध सामग्री की बिक्री से अमेरिका को लाभ मिला। यूरोपीय देश अमेरिका पर आाश्रित बने। साथ ही, युद्ध के बाद अमेरिका ने यूरोपीय देशों को आर्थिक मदद भी की थी जिससे इस क्षेत्र में उसका प्रभुत्व स्थापित हुआ। इससे इंग्लैंड, फ्रांस, पश्चिम जर्मनी और बेल्जियम जैसे देश पहले से ही उसके साथ थे। अब इज़िप्त, इज़राइल, फार्मोसा, म्यानमार, श्रीलंका, वेस्ट इंडीज द्वीपसमूह तथा अफ्रीकी देशों को स्वतंत्रता प्राप्त करने में अमेरिका द्वारा सहायता करने से बे अमेरिका के गुट में जुड़े।

इस तरह, पूँजीवादी देशों के गुट का नेतृत्व अमेरिका ने तथा साम्यवादी निचारधारा से प्रभावित देशों का नेतृत्व सोवियत रूस ने लिया। परस्पर एकदम विरोधी विचारधारा तथा शासन पद्धतिवाले दो सत्तागुट बने। ऑर्नोल्ड टॉयन्बी सरीखे इतिहासकार इन दो सत्ता गुटों को 'दो ध्रुवीय विश्व' कहते हैं।

इज़रायल की रचना

लगभग 2000 वर्ष पूर्व यहूदियों को पेलेस्टाइन में से भगा दिए जाने के कारण उन्हें यूरोप के देशों में अत्याचार, हिंसा, अन्याय तथा सामूहिक नरसंहार जैसी पीड़ा सहनी पड़ी। यहूदियों के लिए स्वतंत्र अलग राज्य की स्थापना के लिए आांदोलन का नेता थियोडोर हर्ज़ल था। विश्व के सभी यहूदियों ने उसके इस विचार का स्वागत किया। उन्होंने स्विट्ज़रलैंड के बेसल शहर में विश्व यहूदी संगठन की स्थापना (1897) की। उसने यहूदियों को उनकी मूल मातृभूमि वापस मिले इसके लिए ब्रिटेन से बातचीत आरंभ किया। (क्योंकि पेलेस्टाइन (फिलीस्तीन) क्षेत्र एक समय ब्रिटेन का एक भाग था।)

प्रथम विश्वयुद्ध दरम्यान तुर्की ने यहूदियों पर लगे नियंत्रणों को और कठोर बनाया, फिर भी यहूदियों की अलग राज्य की माँग जारी रही। विश्वयुद्ध में यहूदियों का समर्थन पाने के लिए इंग्लैंड ने पेलेस्टाइन में अलग यहूदी राज्य की स्थापना और इस आंदोलन को समर्थन घोषित किया। इससे यहूदी इस क्षेत्र में एकत्र होने लगे (1917)। इंग्लैंड के विदेश मंत्री बाल्कर ने ब्रिटिश यहूदी नेता लार्ड रोथचाइल्ड को पत्र लिखा जो 'बाल्फर घोषणापत्र' के रूप में जाना जाता हे। जिसमें स्पष्ट रूप से पेलेस्टाइन में यहूदियों के लिए अलग राष्ट्रीय निवास की स्थाापना का समर्थन किया गया। इसी अरसे में अंग्रेज सेनापति एलन्बी के जेरूसलेम पर कब्जा करने से पेलेस्टाइन में अलग यहूदी राज्य की स्थापना को तीव्रता से गतिशील बनाने की प्रेरणा मिली। इससे अरब प्रजा निराश हुई। अंग्रेजों ने उन्हें आश्वासन दिया कि पूरे का पूरा पेलेस्टाइन उन्हें नहीं दिया जायेगा, परन्तु इस घोषणा से आरबों तथा यहूदियों को संतोष न होने से यहूदियों ने उग्र संघर्ष का मार्ग अपनाया। हिटलर के अमानवीय ज़ुल्म से त्रस्त रहनेवाले यहूदियों ने (1944 तक) तो पेलेस्टाइन में गैरकानूनी ढंग से प्रवेश कर लिया था।

द्वितीय विश्वयुद्ध में बड़ी भारी संख्या में यहूदियों का कत्लेआम हुआ। लगभग 60 लाख यहूदियों की हत्या की गई। इससे यहूदियों में भय फैल गया और उन्होंने घोषित किया कि द्वितीय कक्षा के नागरिक के रूप में वे वर्षों तक यूरोप में रहे हैं। अब वे उस तरह नहीं रहना चाहते। घर-बारविहीन बहुत से यहूदियों को पेलेस्टाइन में बसाने के लिए यहूदी संस्थाओं ने उग्र आंदोलन चलाए। उस समय अमेरिका के दबाव से 1,00,000 यहूदियों को पेलेस्टाइन भेजने का इंग्लैंड द्वारा विरोध किए जाने पर यहूदियों ने त्रासवादी आंदोलन शुरू किया। अंत में आरब-

यहूदियों का यह स्फोटक प्रश्न यू.एन. में प्रस्तुत हुआ। यू.एन. की विशेष समिति ने स्वतंत्र यहूदी राज्य तथा स्वतंत्र आरब राज्य की रचना की। जेरूसलेम को आंतरराष्ट्रीय हुकूमत में रखा गया। उसका प्रशासन यहूदियों तथा आरब लोगों को संयुक्त रूप से करना था। यहूदियों ने विभाजन स्वीकार किया किन्तु आरबों ने उसका विरोध किया। इस स्थिति में ब्रिटेन ने (मई, 1948 तक) पेलेस्टाइन छोड़कर चले जाने की घोषणा की और जेरूसलेम से तत्काल अपनी सेना वापस बुला ली। पूर्व घोषणा के अनुसार अंग्रेजों द्वारा पेलेस्टाइन छोड़कर चले जाने पर स्वतंत्र यहूदी राज्य की स्थापना की घोषणा (14 मई, 1948) की गई और उसे 'इज़रायल' नाम दिया गया। परन्तु तुरंत ही मिस्र, सीरिया, जार्डन, ईराक तथा लेबनान ने मिलकर आक्रमण कर दिया। अभी तक इस समस्या को ले कर आरबों तथा यहूदियों के बीच घर्षण जारी ही है।

चीन में साम्यवादी क्रांति - 1949

शिनहाई क्रांति (1911 की गणतंत्र क्रांति) से चीन मंचू शासकों तथा विदेशियों से स्वतंत्र हुआ। डॉ. सुन-यात-सेन के सत्ता से विमुख रहने पर उनके साथी च्यांग-काई-शेक को चीन की सत्ता सौंपी गई। परंतु इस सरकार द्वारा चीन की अपेक्षाएँ पूरी न कर सकने से साम्यवादी क्रांति हुई। डॉ. सुन-यात-सेन के अवसान (1925) के बाद चीन की संपूर्ण सत्ता च्यांग-काई-शेक के हाथ में आई। शुरुआत में च्यांग-काई-शेक साम्यवादियों का विरोधी नहीं था। वह ट्रॉटस्की से भी खूब प्रभावित था। 1928 तक उसने चीन में एकता स्थापित की, फिर भी कुछ प्रदेश ऐसे थे कि जिनके लिए युद्ध करना पड़े ऐसी स्थिति थी। चीन में आखिरी सत्ता के लिए साम्यावादियों तथा कुओं-मितांग (जनता पक्ष) के बीच संघर्ष अनिवार्य था। (1933 तक) चीन के विभिन्न प्रांतों में साम्यवादियों अपनी सरकारें स्थापित की, यह क्षेत्र 9 करोड़ आबादीवाली लगभग 3,33,000 वर्ग मील का था। इसलिए उन्हें हराना च्यांग-काई-शेक के लिए कठिन था। इसलिए उसने साम्यवादियों के दमन के लिए 'नीली कमीजधारी' नामक त्रासवादी सेना का गठन किया और हजारों साम्यवादियों का कत्ल करवाया। साम्यवादियों को कुचलने के लिए च्यांग-काई-शेक इस सेना का उपयोग करता था। साम्यवादियों ने उत्तर चीन में से महाप्रस्थान (Long March) किया। माओ-त्से-तुंग के नेतृत्व में यह लोंग मार्च क्वांगशी से उत्तर में शेत्सी की ओर का था। इस मार्च के उत्तर तक पहुँचने पर उन्हें रूस की मदद मिलेगी, ऐसा उनका आशय था। 6000 मील की लम्बी यात्रा 368 दिन में पूरी होने पर साम्यवादी चीन की सामान्य प्रजा का समर्थन पा सके।

च्यांग-काई-शेक साम्यवादियों को परास्त करने में असफल गए। जापानी आक्रमण के समय साम्यवादी पक्ष ने जापान के विरुद्ध युद्ध जारी रखा। इसलिए लोगों में साम्यवादियों के प्रति सम्मान पैदा हुआ। च्यांग-काई-शेक ने साम्यवादियों के विरुद्ध सेना भेजी। परन्तु इस सेना द्वारा युद्ध करने से इनकार कर देने पर खुद च्यांग-काई-शेक के युद्ध मैदान में पहुँचने पर उसको गिरफ्तार कर लिया गया। उसको अपनी सैन्य नीति बदलने की शर्त पर रिहा किया गया। 1927 से 1937 के दस वर्ष के संघर्ष के बाद दोनों के बीच समझौता हुआ और गृहयुद्ध समाप्त हुआ। इसी समय द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ होने से चीन और जापान के बीच हुआ युद्ध विश्वयुद्ध का एक भाग बन गया।

जापान की पराजय होने पर चीन में च्यांग के नेतृत्ववाली सरकार को विश्व का समर्थन मिला। परन्तु चीन के जिन प्रांतों पर जापान ने अधिकार किया था वहाँ से उसके हटने के बाद उन प्रदेशों पर साम्यवादी 'लाल सेना' के प्रमुख ने अपना नियंत्रण स्थापित कर दिया। इसको लेकर दोनों पक्षों के बीच घर्षण हुआ। साम्यवादियों ने मुकडेन पर अधिकार कर लिया (1948)। पेकिंग पर कब्जा किया (जनवरी, 1949) और 10 लाख की सेना के साथ नानकिंग तथा शंघाई पर कब्जा जमाया। (20 अप्रैल, 1949)। 1949, अक्टूबर तक तो कुओ मितांग के सत्ताकेन्द्रों पर साम्यवादियों ने अधिकार कर लिया, जिससे च्यांग फार्मोसा टापू पर भाग गया। 1 अक्टूबर, 1949 को माओ-त्से-तुंग ने पेकिंग में चीन को प्रजाकीय गणतांत्रिक देश घोषित कर दिया। चीन में साम्यवादी क्रांति सफल हुई और 'लाल चीन' (साम्यवादी चीन) की रचना हुई।

नाटो तथा वॉर्सो करार

दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति पर विश्व पूँजीवादी तथा साम्यवादी जैसे दो गुटों में बँट जाने पर अमेरिका तथा सोवियत रूस ने अपनी ताकत को मजबूत बनाने के लिए सैन्य गुट बनाने शुरू कर दिए जिसकी शुरुआत अमेरिका ने की। उसने 'नाटो' (NATO-North Atlantic Treaty Organization - 1948) की रचना की, जिसमें अमेरिका, ब्रिटेन, फ्राँस, केनेडा, बेल्जियम, डेनमार्क, इटली, लक्ज़ेमबर्ग, आइसलैंड, नोर्वे तथा पुर्तगाल जुड़े। यूरोप के इस सैन्य गुट ने अनेक स्थानों पर सैनिक केन्द्र स्थापित किए। तत्पश्चात् अमेरिका और इंग्लैंड ने दक्षिण पूर्ण एशिया की रक्षा के लिए सीयाटो (सीटो) (SEATO-South East Asia Treaty Organization - 1954) की रचना की ।

इस संगठन के प्रतिपक्ष में रूस ने पोलैंड की राजधानी वार्सा में साम्यवादी राष्ट्रों का एक सामूहिक सम्मेलन बुलाकर संरक्षण संधि की, जिसे वार्सा संधि कहा जाता है। इस में पोलैंड, हंगेरी, रूमानिया, आल्बेनिया, पूर्वी जर्मनी, बल्गेरिया तथा ज़ेकोस्लोवाकिया जैसे देश शामिल हुए।

उपर्युक्त सैन्य गुटों की स्थापना के पश्चात् विश्व की राजनीतिक स्थिति में जो तनाव उत्पन्न हुआ, उसे 'शीत युद्ध' नाम दिया गया। कोल्ड वार शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग बर्नाड बारू ने किया (1946)। सोवियत रूस के राष्ट्रपति ख्रुशचेव की अमेरिका मुलाकात (1959) के बाद शीतयुद्ध का धीरे-धीरे अंत शुरू हुआ। शक्ति-स्पर्धा भी समाप्त हुई और शीतयुद्ध की स्थिति का अंत हुआ। आज विश्व में एकमात्र महासत्ता है - अमेरिका।

यूरोप पर शीतयुद्ध के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

शीतयुद्ध की स्थिति का औद्योगिक विकास पर प्रभाव पड़ा क्योंकि विश्व निरंतर तृतीय विश्वयुद्ध के भय के नीचे जी रहा था। विश्व की दो महासत्ताएँ विश्व के देशों की अपने-अपने गुट में खींचना चाहती थीं जिसके लिए वे इन देशों को आर्थिक मदद भी देते थे, जिससे इन देशों का पुनरुस्थान हुआ।

यूरोप में 'यूरोपीय आर्थिक सहयोग' संगठन की स्थापना हुई (1948)। जिससे व्यापार में दुगुनी वृद्धि हुई। आर्थिकरूप से विश्व के विकसित देशों ने जिनीवा में 'आंतरराष्ट्रीय व्यापार संघ' (ITO) की स्थापना करके चुंगी की दर घटाई और यूरोपीय समुदाय ने EEC (European Economic Community) की स्थापना की। रोम की संधि (1957) द्वारा सहकारी बाजार की स्थापना होने पर यूरोप में लौह उत्पादन 50% बढ़ गया। 1973 में ब्रिटेन भी उसका सदस्य बना। आज उपर्युक्त स्थिति में पूँजावादी राष्ट्र अपना विकास कर रहे थे, उस समय साम्यवादी देशों ने भी अपनी दशा सुधारने के लिए प्रयत्न किए। ख्रुश्चेव के नेतृत्व में साम्यवादी देशों ने 'कोमेरान' (Comecon) योजना लागू किया परन्तु उग्र जनविरोध के कारण यह योजना त्याग दी गई।

परमाणु शस्त्र

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद सशस्त्रीकरण की प्रक्रिया आरंभ होने पर युद्ध की नई-नई टेकनिकों का विकास हुआ जिसमें परमाणु शस्त्र को प्रमुख माना जा सकता है। विश्व को परमाणु बम की भयानकता का परिचय द्वितीय विश्वयुद्ध में उस समय हुआ जब अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम फेंका। शीतयुद्ध की स्थिति तथा अविश्वास के वातावरण में अनेक देश परमाणु शस्त्र रखने के लिए तत्पर बने। आज तो विश्व के अनेक देशों के पास परमाणु शस्त्र हैं, जिनमें छोटे देशच जैसे कि दक्षिण कोरिया और पाकिस्तान के पास भी है। आज विश्व की सत्ताओं को यह भय सता रहा है कि ये परमाणु शस्त्र किसी आतंकी संगठन के पास पहुँच जाएँ और उसका उपयोग वह विनाश के लिए करे तो विश्व की क्या दशा हो?

एशिया-अफ्रीका में परिवर्तन

द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले यूरोप के अनेक देशों ने संस्थानवादी नीति के अंतर्गत अपना साम्राज्य एशिया और अफ्रीका के अनेक देशों को गुलाम बनाया था। युद्ध में उनकी स्थिति कमजोर पड़ने और इस क्षेत्र में जागृति आने से लोकतंत्र का तेज से प्रसार हुआ। जिससे एशिया-अफ्रीका के देशों में तीव्र परिवर्तन हुए और अनेक नए स्वतंत्र राष्ट्रों का उदय हुआ।

एशिया में राष्ट्रीय आंदोलन की सफलता

द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले एशिया के विभिन्न देशों में इंग्लैंड तथा फ्राँस के संस्थान थे। इनमें से अनेक राष्ट्रों ने प्रजातंत्र प्राप्त करने के लिए आंदोलन किए।

भारत, म्यानमार और श्रीलंका

भारत में गांधीयुग से ही स्वतंत्रता आंदोलन तेज हुआ था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अंग्रेजों को भारत में अपनी हुकूमत कायम रखने में कठिनाई होने पर भारत स्वतंत्र हुआ, परंतु ब्रिटिश भारत का विभाजन होने से पाकिस्तान की भी रचना हुई। म्यानमार पर इंग्लैंड का प्रभुत्व था। जापान ने उस पर कब्जा कर लिया था। जापान की पराजय के बाद इंग्लैंड ने दुबारा सत्ता पाने का प्रयास किया पर असफल रहा और म्यानमार स्वतंत्र हुआ (1948)। इसी तरह श्रीलंका ने भी इंग्लैंड के साम्राज्य से मुक्ति प्राप्त करके स्वतंत्रता प्राप्त की (1948)।

इंडोनेशिया एवं मलेशिया

इंडोनेशिया द्वीपसमूह पर हालैंड (नीदरलैंड) का वर्चस्व था। द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान ने इस पर वर्चस्व स्थापित किया, परन्तु जापान की पराजय के बाद वहाँ राष्ट्रीय सरकार की रचना हुई। डॉ. सुकर्णो के नेतृत्व में इंडोनेशिया ने प्रगति की।

मलेशिया ब्रिटिश शासन के अधीन था। द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान ने इसे जीत लिया परंतु प्रजा की स्वतंत्रता की भावना प्रबल होने पर जापान ने मलय प्रजा को शासनतंत्र सौंप दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध में जैसे ही जापान की पराजय हुई कि तुरंत इंग्लैंड ने उस पर पुनः अधिकार कर लिया। परन्तु प्रजा के उग्र संघर्ष के अंत में मलाया ने भी स्वतंत्रता प्राप्त की।

तिब्बत और चीन

18 वीं सदी में तिब्बत पर चीन का शासन था। चीनी प्रजातंत्रात्मक क्रांति (1911) से तिब्बत को स्वतंत्रता मिली। दलाई लामा यहाँ के आध्यात्मिक तथा राजनीतिक प्रमुख बने। डॉ. सुन-यात-सेन के अवसान के बाद चीन में साम्यवादी क्रांति होने पर चीन ने तिब्बत पर कब्जा कर लिया। इस कारण तिब्बत में चीन के विरुद्ध विद्रोह हुआ, परंतु चीन के सामने उसकी एक न चली। दलाई लामा ने भारत में शरण ली। 1954 में भारत-चीन के बीच पंचशील करार हुआ। फिर भी चीन ने तिब्बत का कब्जा छोड़ा नहीं।

कोरिया और वियतनाम

बीसवीं सदी के आरंभ में 1910 से ही कोरिया पर जापान का वर्चस्व था। दूसरे विश्वयुद्ध में जापान की पराजय के पश्चात् कोरिया के उत्तरी भाग पर रूस का तथा दक्षिणी भाग पर अमेरिका का वर्चस्व स्थापित हुआ। इससे यहाँ की प्रजा में परस्पर अविश्वास और वैमनस्य फैला। उत्तर की साम्यवादी सरकार तथा दक्षिण की बहुदलीय सरकार के बीच गृहयुद्ध आरंभ हुआ (1950) और उत्तर कोरिया तथा दक्षिण कोरिया नामक दो स्वतंत्र राष्ट्रों का निर्माण हुआ।

वियतनाम पर फ्रांस का वर्चस्व था। द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान की शरणागति के पश्चात् फ्रांस ने फिर से वहाँ वर्चस्व स्थापित करना चाहा। तब 'वियेत-मीन' (वियतनामी स्वतंत्रता लीग) के नेता हो-ची-मिन्ह के नेतृत्व में प्रजासत्ताक तंत्र की स्थापना हुई। यद्यपि वियतनाम के कतिपय धार्मिक नेताओं ने हो-ची-मिन्ह का

विरोध करने पर फ्रांस ने फिर से वियतनाम पर कब्जा करने का प्रयास किया। फ्रांस ने वियतनाम को करारी शिकस्त दी। जिनीवा में हुए सम्मेलन में साम्यवादी उत्तर वियतनाम तथा गैर साम्यवादी दक्षिण वियतनाम ये दो भाग कर दिए गए। इससे उत्तरी वियतनाम के साम्यवादी प्रभाववाले विस्तारों में दक्षिण वियतनाम को समर्थन देने की अनिवार्यता महसूस हुई। इस युद्ध में अमेरिका को बदनामी मिली। राष्ट्रपति निक्सन ने 50,000 सैनिक खोने के बाद युद्धविराम घोषित किया, फिर भी गृहयुद्ध 1975 तक चला।

स्वतंत्र हुए अरब राष्ट्र

खनिज़ तेल समृद्ध इन अरब देशों पर यूरोपीय सत्ताओं का प्रभाव था। परंतु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सीरिया, लेबनान, जार्डन, सउदी अरब तथा ईरान स्वतंत्र हुए। पेलेस्टाइन पर इंग्लैंड का वर्चस्व था, परंतु इंग्लैंड द्वारा अपना आधिपत्य त्यागने पर यहाँ 'इज़रायल' नामक यहूदी राज्य की रचना हुई, जिससे अरब देशों और इज़रायल के बीच संघर्ष आरंभ हुआ।

अफ्रीका में राष्ट्रीय आंदोलनों की सफलता

एशिया महाद्वीप की तुलना में अफ्रीका में स्वतंत्रता आंदोलन देरी से शुरू हुए। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण महासत्ताओं को अपना साम्राज्यवाद विवशता में छोड़ना पड़ा। उस समय प्रजा में आई जागृति से आंदोलनों के तेज बनने से बहुत से देश स्वतंत्र हुए।

इज़िप्त (मिस्र)

इज़िप्त पर इंग्लैंड का अधिकार था। पेरिस सम्मेलन में इजिप्त की आजादी की माँग होने पर अंग्रजों ने यहाँ संस्थानिक स्वराज देने की घोषणा की थी। तत्पश्चात् यहाँ चुनाव होने पर जगलुल पाशा चुने हुए प्रधानमंत्री बने, फिर भी स्वेज नहर पर इंग्लैंड का अधिकार था। 1936 की संधि से किटेन ने अपनी अधिकांश सेना वापस बुलाकर इज़िप्त के बाकी भागों को स्वतंत्र घोषित किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इजिप्त के बादशाह को पदभ्रष्ट करके कर्नल नासर ने इजिप्त में प्रजासत्ताक तंत्र की स्थापना की। (1954).

घाना

दक्षिण अफ्रीका में कोको की खेती के लिए विपुल खनिज संपदा से समृद्ध घाना 'गोल्ड कोस्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। घाना का टोगोलैंड राष्ट्रसंघ द्वारा ब्रिटेन के नियंत्रण में रखा गया (1919)। यहाँ विधान समिति की रचना और नये संविधान को भी लागू किया गया किन्तु घाना में क्वामेन नकुम के नेतृत्व मेंआंदोलन शुरू हुआ था वह स्वयं ही घाना का राष्ट्रपति बन बैठा (1953)। टोगोलैंड को भी स्वतंत्रता मिली। दोनों संयुक्त क्षेत्र घाना के नाम से जाने गए। घाना ने इस इलाके में सर्वप्रथम स्वतंत्रता प्राप्त की फिर भी वह राष्ट्रसमूह (कॉमनवेल्थ) में चालू रहा था, किन्तु विद्रोह के कारण डॉ. कॉरी बुशिया प्रधानमंत्री बने। तत्पश्चात् 1990 तक यहाँ सैन्य शासन रहा। अंत में घाना में लोकतंत्र की स्थापना हुई (1991)।

नाइजीरिया :

विपुल खनिजतेल से समृद्ध नाइजीरिया को नये संविधान के मुताबिक मर्यादित सत्ता प्रदान की गई (1946)। परन्तु प्रजाकीय आंदोलनों के प्रबल होने पर नया संविधान बनाया गया (1951)। तत्पश्चात् स्वतंत्र संसदीय लोकतंत्र स्थापित हुआ (1960)। फिर भी गृहयुद्ध जारी रहने पर सैन्य प्रमुख सानी अबासा ने रक्तविहीन विद्रोह द्वारा दक्षिण में सत्ता प्राप्त की जबकि उत्तर में इस्लामिक शरीयत के अनुसार शासन स्थापित हुआ (1993)।

अल्जीरिया

फ्रांसीसी आधिपत्य में रहे अल्जीरिया में अब्दुल हज़ीद बेनबेरी ने राष्ट्रीयता का प्रसार किया। द्वितीय विश्वयुद्ध में 45,000 अल्जीरियनों की हत्या के बाद भी स्वतंत्रता न मिलने पर यूनो की मध्यस्थता से जनमत संग्रह कराया गया। जिसमें बेनबेरी की जीत होने पर राष्ट्रपति के रूप में समाजवादी संविधान अल्जीरिया ने स्वीकार किया (1963)।

मोरोक्को, ट्यूनीशिया

फ्रांसीसी आधिपत्य वाले इन दोनों देशों में भी प्रजाकीय आंदोलन शुरू होने पर इन्हें भी स्वतंत्रता प्राप्त हुई (1956)।

इनके अलावा फ्रांस, इंग्लैंड, इटली, जर्मनी तथा बेल्जियम के आधिपत्य में से ज़ाम्बिया, मलावी, गोबिया, केन्या, युगांडा, तंजानिया, कांगो, एबीसीनिया, लीबिया, सूडान, चीली, कैमरून, सेनिगल, आयवरी कोस्ट, गेबन, चाड़, मोजाम्बिक और अंगोला जैसे देश स्वतंत्र हुए।

इस तरह, इन देशों ने यूरोपीय साम्राज्यवाद को हटाकर लोकतंत्रात्मक राज्य की स्थापना की। ऐसा होने का कारण बदली हुई वैश्विक परिस्थितियों तथा परिवर्तित विचारधारा को दिया जा सकता है।

रंगभेद-नीति के विरुद्ध संघर्ष

बीसवीं सदी के अंत तक (ई.स. 1990) दक्षिण अफ्रीका अपनी रंगभेद की नीति के कारण विश्व में चर्चित रहा। इस प्रदेश की 70% आबादी अश्वेत यानी काली प्रजा थी, जबकि 12% में भारतीय तथा अन्य एशियाई थे। बाकी के 18% गोरे लोग थे जिनके हाथ में राज्य का संचालन था। इसलिए वे वैभवी जीवन जीते थे। 70% प्रजा के लिए मात्र 7% भूभाग निश्चित किया गया था। उनके निवास स्थान गोरों की बस्ती से दूर होते थे। गोरों की बस्ती सुरक्षित स्थान पर होती थी। अश्वेत लोग गोरों की बस्ती के पास भी नहीं जा सकते थे। अश्वेत वहाँ तभी जा सकते थे कि जब उनके पास वहाँ जाने की अनुमति हो। उन्हें अपना जाति प्रमाणपत्र अनिवार्य रूप से अपने साथ रखना पड़ता था। बस तथा रेलगाड़ी में उन्हें अलग बैठना पड़ता था। उन्हें किसी तरह का कोई राजनीतिक अधिकार नहीं था।

दक्षिण अफ्रीका की गोरी प्रजा का रंगभेदनीति को पूर्ण सहयोग था। क्योंकि इस समय ब्रिटिश राष्ट्रमंडल द्वारा जातीय समानता की भावना को बल मिलता था। इस कारण 1948-54 की अवधि में प्रधानमंत्री डेनियल मला ने रंगभेद की नीति को अधिक दृढ़ तथा कठोर बनाया और नाज़ीवादी पद्धति से उसका प्रचार किया। आश्चर्य की बात तो यह है कि अफ्रीका डच-चर्चा द्वारा भी गोरी प्रजा की श्रेष्ठता को समर्थन दिया गया। इस तरह, दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की नीति मजबूत बनने से यह प्रदेश विश्व से अलग-थलग पड़ गया था।

रंगभेद नीति का विरोध

अश्वेतों को भीड़भाड़वाले नगरों - कस्बों में रहना पड़ता था। उनके बालकों को निम्नस्तरीय पाठशालाओं में पढ़ना पड़ता था। यदि अश्वेत इसका विरोध करे तो उसे साम्यवादी जैसा नाम देकर अनिश्चित काल के लिए जेल में भेज दिया जाता था। गांधीजी के आंदोलन से प्रेरणा लेकर आल्बर्ट लुथुली ने कुछ दिनों तक काम बंद करके (हड़ताल करके) सत्याग्रह जैसे आंदोलन चलाया। जिसका नेतृत्व अफ्रीकी राष्ट्रीय कांग्रेस ने लिया। इसके परिणामस्वरूप सरकार ने दमन करना आरंभ किया। 8000 लोगों को खुलेआम कोड़े मारने की सजा दी गई और लुथुली को कारागार में डाल दिया गया। जेल में ही उनकी मृत्यु हुई (1967)। परंतु ऐसा माना जाता है कि उनकी हत्या हुई थी। इसी अवधि में सरकार के दमन की परवाह किए बिना बिलमांट ब्लाईडन नामक नागरिक ने 'अफ्रीका - अफ्रीकियों के लिए' का नारा प्रचारित किया।

20 वीं सदी में रंगभेद को समय से पीछे का व्यवहार गिना गया। दक्षिण अफ्रीका को उसकी इस नीति के लिए राष्ट्रमंडल से निकाल देना ही था कि उसने अपनी सदस्यता वापस ले ली। संयुक्तराष्ट्र द्वारा उस पर आर्थिक प्रतिबंध लगाए गए, परंतु अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और पश्चिम जर्मनी द्वारा उसके साथ व्यापार जारी रखने से उस पर इसका कोई विशेष प्रभाव न पड़ा। यद्यपि इन देशों ने दक्षिण अफ्रीका की रंगभेद नीति का विरोध अवश्य किया था।

दक्षिण अफ्रीका के गैर गोरों के वर्ग ने अफ्रीकी राष्ट्रीय कांग्रेस के ध्वज तले एक स्वाधीनता चार्ट तैयार किया। जिसमें प्रजा की स्वतंत्रता तथा समानता के अधिकारों पर जोर दिया गया था। नेल्सन मंडेला ने इस आंदोलन का नेतृत्व किया, उनके प्रभाव से अनेक गोरे लोग भी इस आंदोलन से जुड़े।

रंगभेद नीति का अंत

रंगभेद से मुक्ति के लिए अश्वेत प्रजा को प्रथम बार (1979) राजनीतिक स्तर पर सफलता मिली जब प्रधानमंत्री पी. डबल्यू. बोथा ने रंगभेद की नीति में सुधार लाने का निर्णय किया। बोथा ने रंगभेद के खिलाफ बोलने का साहस किया और कहा कि, ''अफ्रीका में क्रांति दूर नहीं है। हमें उसे अपनाना पड़ेगा अथवा खुद को मिटा देना पड़ेगा।'' इसके साथ ही हबसी नेता आर्क बिशप डेसमंड मपिलो टूटू को विश्वशांति के संरक्षण के लिए उनके द्वारा किए गए कार्यों के लिए नोबेल पुरस्कार मिला (1984)। इस घटना से अश्वेत लोगों में अदम्य उत्साह का संचार होने पर सरकार ने अश्वेत लोगों के लिए जाति प्रमाणपत्र रखने के कानून को समाप्त कर दिया (1986)।

1986 तक दक्षिण अफ्रीका पर भयंकर आंतरराष्ट्रीय दबाव था। उसे किसी भी खेलकूद स्पर्धा में भाग नहीं लेने दिया जाता था। अमेरिकी कांग्रेस ने भी दक्षिण अफ्रीका पर प्रतिबंध लादने की माँग की। भारतीय प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने दक्षिण अफ्रीका पर प्रतिबंध लगाने के लिए दबाव डाला। 1989 में चुनाव होने पर एफ.डबल्यू.डी. क्लार्क राष्ट्रपति चुने गए। गोरों के विरोध के बावजूद नेल्सन मंडेला को 27 वर्ष बाद जेल से मुक्त किया गया (1990)। क्लार्क ने रंगभेद संबंधी सभी कानून दूर करके अश्वेतों को समानता के स्तर पर समस्त हक तथा अधिकार देने की घोषणा की। हालांकि इस घोषणा से क्लार्क को विरोध का सामना करना पड़ा। दक्षिण अफ्रीका में पहली बार सामान्य चुनाव होने पर नेल्सन मंडेला विजयी हुए (1994)। उनके राष्ट्रपति बनने पर स्थायी रूप से रंगभेद का नाश हुआ और अश्वेत प्रजा समानता के स्तर पर गौरवपूर्ण जीवन जीने लगी।

बांडुंग परिषद (ई.स. 1955)

विश्व में भारत की आजादी के बाद का समय पंडित नेहरू, मार्शल टीटो तथा सुकर्णो जैसे तटस्थ तथा गुटनिरपेक्ष नीति के प्रवर्तक नेताओं का स्मरणीय तथा गौरवप्रद समय है। आजादी की पूर्वसंध्या को दिल्ली में 'एशियाई संपर्क सम्मेलन' में पंडित नेहरू ने स्पष्ट किया कि विश्वसंकट-निवारण में एशिया अनिवार्य रूप से अग्रिम भाग लेगा। अब इन देशों का कोई मोहरे के रूप में उपयोग नहीं कर सकेगा। उन्होंने इस बात को पुन:दोहराया (1949) कि एशियाई राष्ट्र फिर से संस्थानवाद का शिकार नहीं बनेंगे। दिल्ली एशियाई सम्मेलन (अप्रैल 1955) के बाद इंडोनेशिया के प्रसिद्ध शहर बांडुंग में एशियाई-अफ्रीकी राष्ट्रों का जो सम्मेलन हुआ वह बांडुग परिषद के नाम से प्रसिद्ध है। (18 अप्रैल, 1955)

इन राष्ट्रों ने एक साथ मिलकर संस्थानवाद का विरोध करके तटस्थता (गुट निरपेक्षता) की नीति तथा पंचशील के सिद्धांतों को भी स्वीकार किया। इस परिषद भारत के प्रधानमंत्री पंडित नेहरू, इंडोनेशिया के राष्ट्रपति डॉ सुकर्णो, मिस्र के राष्ट्रपति जमाल अब्दुल नासिर तथा यूगोस्लाविया के मार्शल टीटो ने मुख्य भूमिका निभाई। इस परिषद में एशिया के 23 तथा अफ्रीका के 6 देशों ने एक समूह बनकर संयुक्त रूप से कार्य करने पर बल दिया। तत्पश्चात् यूगोस्लाविया की राजधानी बेलग्रेड में गुट निरपेक्ष देशों की प्रथम शिखर परिषद आयोजित हुई, जिसमें

बांडुंग परिषद

'गुट निरपेक्ष संगठन' (NAM = Non Alligned Movement) की स्थापना की गई। आरंभ में इसमें 25 सदस्य देश थे जो आज 114 से अधिक हो गए हैं, जो इस नीति की सफलता दर्शाती है। इस संगठन का 13 वाँ अधिवेशन (2003 में) हुआ।

दक्षिण अफ्रीका की रंगभेद नीति दूर करने तथा यूएन में संस्थानवाद का प्रबल विरोध के लिए किए गए ऐतिहासिक प्रस्ताव को पारित करने (14 नवंबर, 1960) में भारत सहित इन राष्ट्रों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान समय में ये देश विश्वशांति के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

गुट निरपेक्षता

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व की राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन तथा यूरोपीय महासत्ताओं के कमजोर पड़ने से अमेरिका तथा सोवियत रूस का महासत्ता के रूप में उदय हुआ। दोनों महासत्ताएँ अपनी सत्ता तथा विचारधारा के प्रसार हेतु प्रयत्नशील थीं। इससे नाटो, सीटो (सियाटो), सेंटो तथा वार्सा करार जैसे संगठन अस्तित्व में आए और शीतयुद्ध की स्थिति का निर्माण हुा। उसी समय एशिया तथा अफ्रीका में प्रजाकीय आंदोलनों के सफल होने से स्वतंत्र बने राष्ट्र ऐसे करारों द्वारा फिर से गुलामी स्वीकार करने को तैयार न थे। उन्होंने अलग रहने का निर्णय किया। इन राष्ट्रों को 'तटस्थ राष्ट्र' तथा इनके द्वारा अपनाई गई नीति को 'गुट निरपेक्षनीति' कहते हैं।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) रंगभेद की नीति के विरुद्ध दक्षिण अफ्रीका के संघर्ष का वर्णन कीजिए।

(2) गुट निरपेक्षता को विस्तार से समझाइए।

(3) इज़रायल की रचना के बारे में जानकारी दीजिए।

(4) शीतयुद्ध यानी क्या? समझाइए।

(5) द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद रचे गए सैनिक गुटों की जानकारी दीजिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) चीनी क्रांति के समय हुए महाप्रस्थान (Long March) के बारे में संक्षेप में बताइए।

(2) गुट निरपेक्षता की नीति को समर्थन करनेवाले महान नेताओं के नाम बताइए।

(3) नेल्सन मंडेला के बारे में जानकारी दीजिए।

(4) माओ-त्से-तुंग के बारे में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(5) बांडुंग परिषद के विषय में जानकारी दीजिए।

3. नीचे विभाग 'क' में देश के नाम दिए गए हैं। विभाग 'ख' में देश पर आधिपत्य जमानेवाले राष्ट्र के नाम दिए हैं। उनके जोड़े मिलाइए :

विभाग 'क'	**विभाग 'ख'**
(A) भारत	(1) फ्रांस
(B) अल्जीरिया	(2) जापान
(C) कोरिया	(3) हालैंड
(D) इंडोनेशिया	(4) बेल्जियम
	(5) इंग्लैंड

●

16 समकालीन विश्व में राजनीति, अर्थनीति एवं समाज

समकालीन इतिहास का प्रारंभ प्रथम विश्वयुद्ध से माना जाता है, इस बारे में सभी इतिहासकार एकमत हैं। समकालीन इतिहास का प्रभाव हम वर्तमान समय में भी देख सकते हैं। सामान्य तौर पर समकालीन का अर्थ ''जिस वर्तमान समय में हम जी रहे हैं।'' ऐसा किया जा सकता है।

समकालीन विश्व में राज्य व्यवस्था के मुख्य स्वरूप

विश्व में आज 200 से भी अधिक स्वतंत्र देशों का अस्तित्व है। प्रत्येक स्वतंत्र देश के लिए निश्चित भू-भाग विस्तार, मानव समुदाय, सामाजिक संगठन एवं प्रादेशिक अखंडता जरूरी हैं। प्रत्येक देश का अस्तित्व राज्य की सर्वोपरि सत्ता एवं सामाजिक संरक्षण पर आधारित है। प्रत्येक राज्य अपनी स्वतंत्रता बनाए रख सके तभी तक स्थिर शासन समाज को दे सकता है। राज्य की शासन-व्यवस्था कालक्रम में बदलती हुई दिखाई देती है। समय-समय पर प्रत्येक शासन-व्यवस्था के प्रति प्रजा का दृष्टिकोण बदलता रहता है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से समकालीन समय तक शासन व्यवस्था में परिवर्तन होता रहा है। इस शासन व्यवस्था में प्रजा पर एक व्यक्ति, निश्चित वर्ग या वर्गों का आधिपत्य दिखाई देता है।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद विश्व के देशों में शासन व्यवस्था विविध रूपों में देखने को मिली है, जिनमें से कुछ सफल भी रही हैं जब कि कतिपय शासन व्यवस्था ने कुछ देशों का विनाश भी किया है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद विश्व के देश दो शासन व्यवस्थाओं - साम्यवाद तथा लोकतंत्र में बँट गए हैं। अमेरिका, ब्रिटेन, यूरोप तथा एशिया-अफ्रीका के नव स्वतंत्र कुछ देशों ने लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली स्वीकार की है; जब कि सोवियत रूस, चीन तथा यूरोप और अफ्रीका के कुछ देशों ने साम्यवादी शासन व्यवस्था अपनाई है।

महान दार्शनिक एरिस्टॉटल (अरस्तू) ने प्राचीन समय की राज्यव्यवस्था का वर्गीकरण किया है। उनके मतानुसार एकतंत्री राजाशाही तथा निरंकुश राजाशाही मुख्य थी। जब कि वर्तमान विश्व में लोकतंत्र और अन्य शासन व्यवस्थाएँ देखने को मिलती है, जो निम्नानुसार हैं :

आधुनिक युग की शासन व्यवस्था के स्वरूप

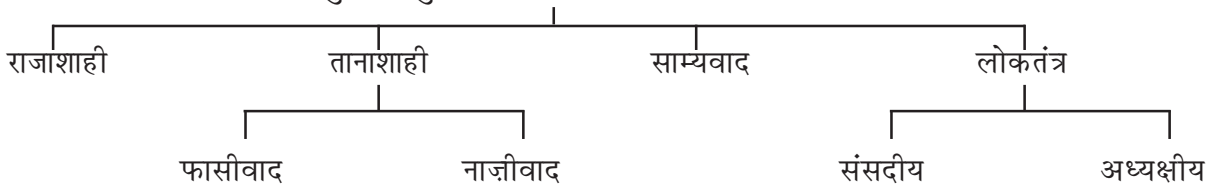

राजाशाही

प्राचीन विश्व से लेकर आधुनिक काल तक शासन व्यवस्था का एक प्रकार राजाशाही रही है। राजाशाही में शासन में सर्वोपरि राजा होता है तथा वंशपरंपरागत रूप से सत्ता प्राप्त होती है। प्रजा को कभी-कभी अच्छे राजा के समय में थोड़े अधिकार प्राप्त हुए हैं जबकि अधिकतर राजा निरंकुश, स्वेच्छाचारी होते हैं, परंतु आधुनिक युग में राजाशाही को भी प्रजा को अधिकार देने पड़े हैं।

तानाशाही

अधिकतर निरंकुश सत्ताधारी राजाशाही की ही तरह यह शासन व्यवस्था देखने को मिलती है, परंतु इसमें वंशपरंपरा का तत्त्व नहिंवत् होता है। यह शासन व्यवस्था कभी-कभी राजनीतिक क्रांति के परिणाम स्वरूप आती है तब उसे प्रजा के विशाल वर्ग का समर्थन मिलता है। कभी-कभी व्यक्तिगत या सैन्य विद्रोह द्वारा भी तानाशाह सत्ता के सूत्र अपने हाथ में ले लेते हैं। उदा. जर्मनी का चांसलर (प्रधानमंत्री) हिटलर ने राष्ट्रपति

हिन्डेगबर्ग के अवसान के बाद राष्ट्रपति पद का चुनाव न कराके खुद ही राष्ट्रपति बन बैठा। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद उत्पन्न हुई परिस्थिति ने विश्व में फासीवाद-नाज़ीवाद का परिचय कराया। वर्ल्सेल्स की संधि में हुए अन्याय, अपमान, वैरभाव तथा बिगड़ी हुई आर्थिक दशा जैसे परिबलों के कारण जर्मनी में हिटलर तथा इटली में मुसोलिनी सर्वोच्च सत्ता प्राप्त कर सके। ऐसे तानाशाह देश के संविधान को अपने मनोनुकूल तैयार करवाते हैं। उदा. के लिए मुसोलिनी ने चुनाव में बहुमत पाने वाले को नहीं अपितु जिन्हें जनमत अधिक मिला हो वह सत्ता सँभाले, ऐसा सुधार करवाकर गठबंधनवाली संरचना नहीं आ सकी और मुसोलिनी शासक बन बैठा। ऐसे तानाशाहों को प्राय: सैन्य का पीठबल प्राप्त रहता है। वे एक नेता, एक पक्ष तथा एक प्रजा के कार्यक्रम का अनुसरण करते हैं। इटली और जर्मनी में प्रथम विश्वयुद्ध के बाद इन तानाशाहों ने राजनीतिक स्थिरता प्रदान करने के साथ बिगड़ी हुई अर्थव्यवस्था को भी कम समय में मजबूत बनाने में वे सफल रहे थे। परंतु प्रजा का राष्ट्रवाद उग्र बनाकर पानेवाले ये शासक अल्पजीवी सिद्ध हुए। उन्होंने अपने साथ अन्य देशों को भी विनाश के मार्ग पर धकेला, यह एक तथ्य है।

साम्यवाद

समकालीन विश्व की शासन प्रणाली में साम्यवाद सबसे अंत में आया है। ये लोग कार्ल्स मार्क्स की विचारधारा का अनुसरण करते हैं। 'दास कैपिटल' तथा 'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' में इस विचारधारा का विस्तार से वर्णन है। राजनीतिक, सामाजिक और विशेषरूप से आर्थिक क्षेत्र में समानता के सिद्धांत पर यह विचारधारा कार्य करती है। कार्ल मार्क्स की विचारधारा के अनुरूप कामदारों, सामाजिक न्याय को प्राधान्य दिया जाता है। निजी संपत्ति तथा पूँजीवाद यहाँ देखने को नहीं मिलता। समस्त अंतिम सत्ता राजाशाही की भाँति यहाँ सरकार के हाथ में होती है।

इस विचारधारा के अनुसार विश्व में पहली क्रांति सोवियत रूस में हुई। यहाँ निरंकुश, स्वेच्छाचारी ज़ारशाही को हटाकर लेनिन ने कामदारों को प्रभुत्ववाली सरकार की रचना करके एक दल का शासन स्थापित किया। साम्यवाद की विचारधारा को लागू किया गया, परंतु इस विचारधारा के महद्‌अंश तक असफल होने से लेनिन को नई अर्थनीति अपनाने के लिए विवश होना पड़ा और सोवियत संघ अभूतपूर्व विकास करके विश्व की महासत्ता बना। हालाँकि मिख़ाइल गोर्बाचोव के समय में सोवियत संघ का विघटन होने से साम्यवाद का अंत हुआ तथा रूस में प्रजासत्ताक तंत्र की स्थापना हुई?

विश्व में दूसरी महत्त्वपूर्ण सामाजिक क्रांति चीन में हुई। इस क्रांति पर माओ-त्से-तुंग का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। रूसी क्रांति में कामदारों का प्रभुत्व था जब कि चीनी क्रांति में किसानों का प्रभाव क्रांति तथा सरकार में देखा जा सकता है। उत्पादन के सभी साधन खेती, कारखानों और बैंकों पर राज्य का नियंत्रण है। राज्य की सभी प्रवृत्तियाँ लगभग सामूहिक स्तर पर होती हैं। कार्ल मार्क्स की विचारधारा के अनुरूप शुद्ध साम्यवादी शासन-व्यवस्था चीन में स्थापित हुई दिखती है। एक आदर्श समाजवादी सिद्धांत के अनुसार की शासन व्यवस्था के रूप में साम्यवाद अच्छा है, परंतु कभी-कभी साम्यवाद के बहाने तानाशाही की स्थापना भी होती है।

लोकतंत्र

आधुनिक काल से लेकर समकालीन विश्व में शासन व्यवस्था के एक प्रकार के रूप में लोकतांत्रिक व्यवस्था लोकप्रिय साबित हुई है। लगभग सभी पूँजीवादी देशों ने सत्ता के विभाजन के मुताबिक अपने अनुकूल लोकतंत्रात्मक शासन पद्धति अपनाई है। इस पद्धति में राज्य के प्रत्येक नागरिक की सक्रिय भूमिका तथा भागीदारी रहती है। इसमें लोकतंत्र को समर्पित राजनीतिक दलों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। वे लोकतंत्र को सशक्त बनाने का कार्य करते हैं। इसमें शासन पद्धति में संसदीय तथा अध्यक्षीय लोकतंत्र जैसे दो प्रकार होते हैं।

संसदीय लोकतंत्र

प्रजासत्तात्मक तंत्र में प्रजा द्वारा चुनकर आए सदस्यों से रचित कार्यकारिणी (मंत्रिमंडल) संसद को यानी कि चुने हुए प्रतिनिधियों के प्रति जवाबदार रहकर कार्य करती है। वे संयुक्तरूप से जवाबदार होते हैं। ऐसे लोकतंत्र को संसदीय लोकतंत्र कहते हैं। इस पद्धति में अधिकतर दो सदन होते हैं। भारत में संसदीय प्रणाली स्वीकार की गई है। यहाँ संसद के ऊपरी सदन को राज्यसभा तथा निचले सदन को लोकसभा कहा जाता है। लोकसभा प्रजा के प्रतिनिधियों तथा प्रत्यक्ष चुनाव से बनती है जब कि राज्यसभा के प्रतिनिधियों का चुनाव परोक्ष मतदान से होता है।

इंग्लैंड का लोकतंत्र भी संसदीय है, फिर भी वह हमारे लोकतंत्र से थोड़ी भिन्न है। रक्तविहीन क्रांति (1688) द्वारा इंग्लैंड से राजाशाही को संपूर्ण समाप्त नहीं किया गया है अपितु राजा का पद वंशपरंपरागत रखकर उसे नाममात्र की सत्ता, भारत के राष्ट्रपति की ही तरह दी गई है। राज्य की वास्तविक सत्ता भारत की ही तरह संसद के पास है। लोकतंत्र की स्थापना होने के बावजूद इंग्लैंड में राजा-रानी के प्रति प्रजा अत्यंत आदर रखती है।

अध्यक्षीय लोकतंत्र

इस शासन प्रणाली में सर्वोच्च सत्ता पद अध्यक्ष या राष्ट्रपति का चुनाव प्रजा द्वारा होता है। इस तरह के लोकतंत्र का सर्वोत्तम उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका है। यहाँ राष्ट्रपति चार वर्ष की अवधि के लिए प्रजा द्वारा चुनकर आता है। वह स्वयं अपनी कार्यकारिणी (मंत्रिमंडल) बनाता है। कार्यकारिणी के सदस्य संसदीय प्रणाली की भाँति संसद के प्रति जवाबदार न होकर राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यहाँ राष्ट्रपति अपने निर्णय के लिए स्वतंत्र होता है।

सत्ता के विभाजन के आधार पर विश्व में लोकतंत्री शासन व्यवस्था में एकतंत्री तथा समवायतंत्री स्वरूप की प्रशासनिक व्यवस्था देखने को मिलती है। एकतंत्री शासन में भी संसदीय तथा अध्यक्षीय पद्धति देखने को मिलती है। जब की तत्संबंधी देश के संविधान के अनुसार केन्द्र तथा राज्यों के बीच सत्ता का स्पष्ट विभाजन किया गया होता है उसे समवायी शासन कहा जाता है। समवायतंत्र में राज्य में अपने आंतरिक मामलों के लिए स्वतंत्र होते हैं। विदेश, संरक्षण तथा मुद्रानीति केन्द्र सरकार के अधीन रहती है। भारत में समवायतंत्री शासन व्यवस्था है परंतु आपात् काल में भारत एकतंत्री शासन में परिवर्तित हो जाता है, यह एक खासियत है।

प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की कमियों को दूर करने के लिए विशाल क्षेत्रफलवाले देशों में लोक-प्रतिनिधि प्रजातंत्र यानी कि लोकतंत्र स्वीकार किए हैं। आधुनिक युग में प्रजा में आई जागृति से प्रत्येक देश की प्रजा से शासन-व्यवस्था में सक्रिय भागीदारी की अपेक्षा रहती है। इसी कारण ही विश्व में लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली का व्यापक प्रमाण में स्वीकार हुआ है।

समकालीन विश्व में अर्थनीतियाँ

समकालीन विश्व में तीन प्रकार की अर्थव्यवस्था दिखाई देती है : (1) पूँजीवादी (2) साम्यवादी और (3) मिश्र अर्थव्यवस्था। लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्थावाले देशों में मुख्यत: पूँजीवादी दिखाई देती है। जबकि प्रथम विश्वयुद्ध बाद कार्ल मार्क्स की विचारधारा के मुताबिक सर्व प्रथम रूस में तथा बाद में कुछ अन्य देशों में साम्यवादी शासन प्रणाली अस्तित्व में आई, वहाँ की अर्थव्यवस्था जो राज्यकेन्द्रित है, उसे साम्यवादी अर्थव्यवस्था कहते हैं।

यूरोपीय देशों की अर्थव्यवस्था

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय यूरोपीय अर्थव्यवस्था टूट गई थी, उस समय उसके पुनरुत्थान के लिए प्रथम प्रयास अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रूमन ने किया, जिसे 'ट्रूमन सिद्धांत' के नाम से जानते हैं। इसका मूल उद्देश्य यूरोपीय देशों में साम्यवाद के प्रसार को रोकना था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद मार्शल योजना के अंतर्गत अमेरिकी मदद से यूरोपीय राष्ट्रों पर अमेरिका का प्रभुत्व बढ़ा और अमेरिका एक महासत्ता बना।

यूरोपीय अर्थव्यवस्था को नई दिशा देने का काम फ्रांस के विदेशमंत्री रॉबर्ट शूमेन ने किया। यूरोप के छः देशों ने यूरोपीय 'लौह तथा कोयला समुदाय' की रचना की (1951)। इन देशों ने रोम में संधि करके यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC - European Economic Community) की रचना की। जिसके अनुसार पूँजी, यांत्रिक साधनों एवं मानवशक्ति का हेरफेर संभव हुआ। इस संगठन में धीरे-धीरे दूसरे देश भी जुड़े जिससे 'यूरोपीय मुक्त बाजार क्षेत्र' (European Free Trade Area) का गठन हुआ। 1961 में ब्रिटेन उसका सदस्य बनने के लिए इच्छुक था किन्तु फ्रांस के विरोध के कारण (1973 में) वह इस संघ का सदस्य बना।

यूरोपीय आर्थिक समुदाय ने इससे भी आगे बढ़कर पूरे यूरोप में एक समान मुद्रा रखने पर विचार आरंभ किया परंतु ब्रिटेन, नार्वे, डेनमार्क जैसे देश इसके खिलाफ़ थे। बाद में 'मास्ट्रिक संधि' (1991) के कारण एक शक्तिशाली केन्द्रीय बैंक तथा समान मुद्रा का मार्ग सरल बना। यूरोपीय देशों को इस संधि का अनुमोदन करने में सात वर्ष लग गए। अंत में (2000) में 'यूरो' के रूप में नई साझी मुद्रा अस्तित्व में आई, फिर भी ब्रिटेन ने अपनी मुद्रा पाउंड को भी बनाए रखा है।

औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया

इंग्लैंड में हुई औद्योगिक क्रांति के कारण मनुष्य को उद्योगों का महत्त्व समझ में आया और कृषि की अपेक्षा उद्योगों को अधिक महत्त्व मिला। उद्योगीकरण के प्रथम चरण में मूलभूत उद्योगों की स्थापना हुई तथा संशोधन हुए। जैसे कि बाष्प इंजन, सूती कपड़ा, लौह-इस्पात, रेलवे, स्टीमर, विमान उड्डयन इत्यादि। जब कि प्रथम विश्वयुद्ध के बाद परमाणु शक्ति, इलेक्ट्रोनिक उपकरणों का आगमन हुआ। परमाणु शक्ति का प्रथम विनाशक अनुभव विश्व को द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान हुआ।

उद्योगीकरण के लिए मूलभूत (ऊर्जा) आवश्यकता कोयला तथा खनिजतेल है। खनिज तेल के समृद्ध भंडारवाले अरब देशों ने संगठित होकर इस अवसर का लाभ उठाया है। उनका संगठन OPEC (ओपेक) के नाम से जाना जाता है। विश्व में अलग-अलग माल के विपुल उत्पादन से विश्व दो भागों के विभक्त हो गया; जिसमें अमेरिका, जापान, सोवियत संघ तथा यूरोपीय देशों तथा महाद्वीपों ने खूब प्रगति की इस कारण वे विकसित तथा औद्योगिक राष्ट्र कहलाए। जबकि दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान या बाद में स्वतंत्र बने अधिकांश देशों में उद्योगीकरण की प्रक्रिया की गति धीमी रही इस कारण वे अल्प विकसित या तीसरे विश्व के देश कहलाए। हालाँकि 1960 से 1970 के दशक में उत्तर कोरिया, ताइवान, मलेशिया, सिंगापुर तथा इंडोनेशिया जैसे छोटे देशों ने तेजी से विकास किया है।

उद्योगीकरण की शुरुआत भले ही इंग्लैंड में हुई हो परंतु दूसरे विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका में सच्चे अर्थों में उद्योगीकरण हुआ। अमेरिकी यंत्रोद्योग का बड़ा क्षेत्र अटलांटिक समुद्रतटीय क्षेत्र के पट्टे में स्थित है और देश की आबादी का आधा हिस्सा यहाँ के नौ औद्योगिक शहरों में बसा है।

उद्योगीकरण के प्रभाव

विश्व में उद्योगीकरण का समाज, अर्थनीति और शासनतंत्र पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। उत्पादन-वृद्धि से बाजार-व्यवस्था का विकास हुआ है। व्यक्ति की क्रयशक्ति बढ़ने से उपभोग में वृद्धि होने से भौतिक सुख-सुविधा में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई। वस्तु-विनिमय के स्थान पर मुद्रा का प्रचलन माध्यम के रूप में अधिक स्वीकार्य बना। बैंकिंग प्रणाली का विकास हुआ। उत्पादन के क्षेत्र में निजी तथा सार्वजनिक कारखानों की स्थापना हुई। विश्व में टेक्नोलॉजी के प्रसार निजी उद्योगों के कारण तेजी से विस्तृत हुआ। आवागमन के क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रांति से दुनिया के देशों के बीच व्यापार अधिक शीघ्रता से होने लगा। कोयला तथा खनिज तेल का उपयोग संचालन शक्ति के साधन के रूप में बढ़ने लगा। मनुष्य के पास पूँजी बढ़ने से वह भौतिक सुविधाओं को अधिकाधिक स्वीकार करने लगा। कृषि के क्षेत्र में रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से पैदावार बढ़ाने के प्रयत्न किए गए। आधुनिक खोजों से चिकित्सा के क्षेत्र में व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा औसत आयु में वृद्धि हुई है।

उद्योगीकरण सिक्के के दो पहलू जैसा है। उद्योगीकरण द्वारा मनुष्य का जीवनस्तर ऊपर उठा तथा देशों की प्रगति हुई-इसे उद्योगीकरण का सकारात्मक पहलू माना जा सकता है। परंतु इसके साथ ही दूसरी ओर इसके कुछ कुप्रभाव भी दिखाई दे रहे हैं। शस्त्र उत्पादन के कारण विश्व में शीतयुद्ध दरम्यान तीसरे विश्वयुद्ध का माहौल बना। परमाणु शस्त्रों की भयानकता का अनुभव विश्व ने द्वितीय विश्वयुद्ध में किया ही था। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से आर्थिक असमानता बढ़ने से कार्ल मार्क्स के विचार कामदारों में अधिक लोकप्रिय बने, जिससे साम्यवादी विचारधारा विश्व के देशों में मजबूत बनी। ब्रिटेन जैसे देश में तो लेबर पार्टी (मजदूर दल) की स्थापना हुई तथा उसने सत्ता भी प्राप्त की।

गैर औद्योगिक देशों पर प्रभाव

उद्योगीकरण से विश्व में औद्योगिक तथा गैर औद्योगिक दो तरह के देश बने। औद्योगिकीकरण के कारण यूरोप के देशों के आर्थिक रूप से समृद्ध बनने से उन्होंने एशिया तथा अफ्रीका के देशों में अपने संस्थान स्थापित किए तथा उनका शोषण किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व के बदलते परिदृश्य में इन देशों ने स्वतंत्रता प्राप्त की है परंतु अधिकांश देश तृतीय विश्व के देश रहे हैं। यानी कि इन गैर औद्योगिक देशों में गरीबी तथा बेकारी की समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं।

विकास की समस्याएँ

औद्योगिकीकरण तथा उत्पादन में शीघ्रता से वृद्धि के विश्व में कुछ गंभीर समस्याएँ भी उत्पन्न हुईं। गृह उद्योगों का विनाश हुआ है। शहरीकरण के साथ-साथ उससे जुड़ी समस्याएँ दिनोंदिन विकट होती जा रही हैं। गरीबी तथा बेकारी में वृद्धि होती रही है। विश्व के देशों में उत्तर की दिशा वाले देशों की तुलना में दक्षिणी देशों में जनसंख्या अधिक बढ़ी है। परिणामस्वरूप न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति और रोजगारी प्राप्त करना मुश्किल हो गया है। संचालन शक्ति के प्राकृतिक संसाधन-कोयला तथा खनिजतेल के भंडार घट रहे हैं। रासायनिक उर्वरक, कीटनाशकों तथा जहरीली गैसों के उपयोग का पर्यावरण पर कुप्रभाव पड़ा है। ग्लोबल वार्मिंग की समस्या उत्पन्न हुई है। प्रदूषण की समस्या भयजनक बनी है।

आतंकवाद

आत्मघाती आतंकवादियों द्वारा अपहृत विमानों से अमेरिकी वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर से टकराने से दोनों टावर पत्ते के महल की तरह टूट गए। (11 सितंबर, 2001) । इस विनाशक कृत्य से समस्त विश्व हिल उठा। इस दुष्कृत्य से विमान में रहे सैकड़ों लोग तथा इमारत में काम कर रहे हजारों लोग मारे गए। इस घटना ने यह संकेत दिया कि भावी युद्ध युद्धभूमि में ही लड़े जाएँ यह जरूरी नहीं है उसके बाद आतंकवादियों द्वारा इस तरह भी आक्रमण किया जा सकता है।

म्युनिख ओलंपिक में इज़रायली खिलाड़ियों की पेलेस्टाइन के आंतकवादियों द्वारा की गई क्रूर हत्या ने आतंकवाद का परिचय दुनिया को दिया (1972)। आतंकवाद की सरल परिभाषा सर्वप्रथम ब्रसेल्स के न्याय विषयक संमलेन में दी गई थी। उसके अनुसार, भौतिक अखंडता अथवा मानव समुदाय को खतरे में डाले ऐसा और बड़े पैमाने पर संपत्ति को नुकसान पहुँचाने उन कार्यों को अंजाम देकर भय का वातावरण खड़ा करना है। परंतु वर्तमान समय में हरेक देश के अनुसार आतंक की परिभाषा अलग-अलग मालूम पड़ती है। इस कारण इसे कोई एक निश्चित परिभाषा देना मुश्किल है। आज आतंकवाद एक वैश्विक समस्या है।

आतंकवाद का स्वरूप

आतंकवाद का आरंभ किसी धार्मिक, राजनीतिक या सामाजिक संगठन द्वारा कोई निश्चित उद्देश्य सिद्ध करने के लिए धाक-धमकी, खून, मानव हत्या तथा मानव संपत्ति को नुकसान पहुँचाए वैसी प्रवृत्तियों द्वारा

सरकार पर दबाव लाने का प्रयास करते हैं। सामान्य रूप से इसे आतंकवाद नाम दिया जाता है। आतंकवादी अधिकतर सरकार के साथ सीधे संघर्ष में नहीं आते, परंतु वे तथाकथित दुश्मन के हृदय पर घाव करे ऐसे हमलों का आयोजन करते हैं। इस कारण एक वर्ग उन्हें आतंकवादी कहता है जब कि दूसरा वर्ग उन्हें स्वतंत्रता सेनानी मानता है। परंतु आतंकवादियों तथा स्वतंत्रता सेनानियों के बीच मौलिक अंतर यह है कि स्वतंत्रता सेनानी कभी भी निर्दोष लोगों की हत्या नहीं करता परंतु ये आतंकवाद वैसा कृत्य करने में जरा भी नहीं हिचकिचाते। विश्वभर में उत्तर आयरलैंड, अल्जीरिया, दक्षिण अफ्रीका और चीली जैसे देशों में राजनीतिक ध्येय सिद्धि के लिए आतंकवाद आरंभ हुआ।

आतंकवाद की उत्पत्ति के परिबल

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद में छोटे-छोटे देश स्वतंत्र हुए। इन देशों में भी धार्मिक समूह, कुछ जातियों ने अपनी अलग पहचान के लिए आतंकवाद का सहारा लिया। उदा. के लिए श्रीलंका (एल.टी.टी.ई:, चेचन्या (रूस)। कुछ देश अपनी राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए आयोजनबद्ध रीति से आतंकवादी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देते हैं, सहायता करते हैं। कभी-कभी महासत्ताएँ भी ऐसे संगठनों की सहायता करती दिखाई देती हैं। इंटरनेट, फैक्स, सेटेलाइट फोन जैसे संदेशाव्यवहार के आधुनिक साधनों से आतंकवाद को व्यापक प्रसिद्धि प्राप्त होती जाती है। धार्मिक उन्माद भी कभी-कभी आतंकवाद का पोषण करता है। कभी-कभी आतंकवाद की आड़ में राजनीतिक प्रवृत्तियाँ होती दिखाई देती हैं।

आतंकवादी संगठन

एक अनुमान के मुताबिक इस समय विश्वभर में 500 से अधिक आतंकवादी संगठन कार्यरत हैं, इसमें दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। जिसमें महत्त्वपूर्ण है अलकायदा (ओसामा-बिन-लादेन) अफगानिस्तान, लिट्टे (एल.टी.टी.ई.) प्रभाकरन, श्रीलंका, इजिप्त में अलजिह्राह, भारत में हरकत उल अंसार, भारत-पाकिस्तान में हिज़बुल मुजाहिद्दीन, उत्तर आयरलैंड में आयरिश नेशनल लिबरेशन आर्मी, दक्षिण लेबनान में हिज़बुल्लाह, हमास, जार्डन में नेशनल लिबरेशन आर्मी, पेलेस्टाइन में न्यू पीपल्स आर्मी, भारत में पश्चिम बंगाल में नक्सलवादी, नेपाल में माओवादी जैसे संगठन प्रमुख हैं।

आतंकवादी प्रवृत्तियाँ

अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर किया गया हमला आतंकवाद का अब तक की सबसे विनाशक घटना थी। इसके अलावा चेचन्या के आत्मघाती हमलाखोरों द्वारा रूस के थियेटर पर निर्दोष लोगों को मौत के घाट उतारा। गुजरात में अक्षरधाम (गांधीनगर) पर हमला करके (2002) कितने ही दर्शनार्थियों को मार डाला। इनके अलावा जम्मू-कश्मीर विधानसभा , जम्मू के रघुनाथ मंदिर, भारतीय संसद और मुंबई पर के हमलों को मुख्य कह सकते हैं। पाकिस्तान के मदरसे पर आतंकवादियों ने हमला करके अनेक निर्दोष बच्चों की हत्या की तब विश्व दहल गया।

इस तरह आतंकवाद के दिन-प्रतिदिन विस्तारित होने से विश्व पर आतंकवाद की खतरा मँडरा रहा है। यदि आतंकियों को स्थानीय लोगों का साथ-सहयोग न मिले तो यह महत्त्वपूर्ण कार्य होगा। दूसरा, कुछ देश आंतकवाद का पोषण बंद करें, आतंकवाद को लेकर विश्व की महासत्ताएँ दोधारी नीति न अपनाएँ और प्रत्येक राष्ट्र अपनी विचारधारा में परिवर्तन करके देश में एक समतामूलक न्यायसंगत समाज की रचना करे तो आतंकवाद को अवश्य नियंत्रित किया जा सकता है।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) तानाशाही के विषय में टिप्पणी लिखिए।

(2) संसदीय लोकतंत्र के बारे में जानकारी दीजिए।

(3) उद्योगीकरण के प्रभावों की चर्चा कीजिए।

(4) आतंकवाद उत्पन्न करनेवाले परिबलों तथा उसकी प्रवृत्तियों पर टिप्पणी लिखिए।

(5) साम्यवाद के बारे में जानकारी दीजिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) समकालीन विश्व में शासन व्यवस्था के मुख्य स्वरूपों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

(2) विश्व में हुए आतंकवादी हमलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(3) समकालीन विश्व की मुख्य अर्थव्यवस्थाओं के नाम बताइए।

(4) अमेरिका की राष्ट्रपति पद्धति के लोकतंत्र के बारे में दो-तीन वाक्य लिखिए।

(5) समवायतंत्र के बारे में संक्षिप्त जानकारी दीजिए।

3. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) अध्यक्षीय पद्धति का लोकतंत्र किस देश में है?

(अ) अमेरिका (ब) इंग्लैंड (क) भारत (ड) कोई नहीं

(2) यूरोप महाद्वीप की साझी मुद्रा कौन-सी है?

(अ) पौण्ड (ब) डॉलर (क) यूरो (ड) रुपया

(3) उद्योगीकरण की शुरुआत किस देश में हुई?

(अ) अमेरिका (ब) फ्रांस (क) इंग्लैंड (ड) अफ्रीका

(4) आतंकवाद की पहली सरल परिभाषा किस सम्मेलन में दी गई?

(अ) पेरिस शांति सम्मेलन (ब) ब्रसेल्स सम्मेलन (क) बर्सेल्स सम्मेलन (ड) कोई नहीं

(5) रक्तविहीन क्रांति किस देश में हुई?

(अ) फ्रांस (ब) इटली (क) अमेरिका (ड) इंग्लैंड

●

17 विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के कारण समाज तथा संस्कृति में परिवर्तन

20वीं सदी विज्ञान और टेक्नोलॉजी की दृष्टि से अभूतपूर्व कही जा सकती है। विद्युत, दूरसंचार, उपग्रह, एंटीबायोटिक, आवागमन के क्षेत्र में अनेकविध खोजों ने मानवजीवन को प्रभावित किया है। हमारे दैनंदिन जीवन में टेक्नोलॉजी बुन गई है। विश्व के वैज्ञानिक ज्ञान के स्तर में सतत वृद्धि हो रही है। 20 वीं सदी ने विज्ञान-टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में बड़े परिवर्तन देखे हैं। विशेष रूप से शिक्षा तथा आर्थिक विकास के कारण ये परिवर्तन देखने को मिले हैं। मध्ययुग में विज्ञान और टेक्नोलॉजी का लाभ मात्र उच्चवर्ग तक सीमित था परंतु 20वीं सदी में आए परिवर्तनों ने दुनियाभर के लोगों तक विज्ञान-टेक्नोलॉजी के लाभों को पहुँचाया है।

ऊर्जा के नए स्रोत

विज्ञान-टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में होनेवाले विकास मुख्यत: शक्ति या ऊर्जा के स्रोतों पर निर्भर होते हैं। आरंभ में लकड़ी, पवन और जल ऊर्जा के मुख्य स्रोत थे। बाद में उनका स्थान कोयले ने लिया और ईंधन के रूप में उसका व्यापक उपयोग हुआ। उसकी मदद से यंत्र चलाए जाते थे। 20वीं सदी की शुरुआत में पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस की खोज से टेक्नोलॉजी में व्यापक परिवर्तन आए, इतना ही नहीं बिजली तथा चुम्बकीय तत्त्वों की खोज से उसमें वृद्धि हुई। 20 वीं सदी में परमाणु ऊर्जा ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया।

वैज्ञानिक ज्ञान के विकास ने टेक्नोलॉजी में क्रांतिकारी परिवर्तन किये। गेलिलियो तथा जेम्सवाट की राह पर 20वीं सदी में अनेक वैज्ञानिकों ने काम किया वैज्ञानिकों ने नए सिद्धांत स्थापित किए, जिनमें परमाणुभट्ठी प्रकाश संचरण, इलेक्ट्रिक जेनरेटर, इंजीनियरिंग के सिद्धांतों का समावेश होता है। परमाणु संरचना की समझ, इलेक्ट्रान की खोज, परमाणु ऊर्जा के रहस्य खोजे गए। 20 वीं सदी के प्रारंभ से ही अनेक महान खोजों ने वैज्ञानिक क्रांति की, जिनमें प्लास्टिक की खोज (1906), रेडियो संचार (1912), नहरों की महान योजनाएँ (1914), रेडियो प्रसार नेटवर्क (1922), विश्व की सबसे ऊँची इमारत का निर्माण (न्यूयॉर्क 1930), रॉकेट (1926), टेलीविजन (1936), जल विद्युत (1936), गैस इंजन (1937), पेनिसिलीन (1942), परमाणु विखंडन (1942), परमाणु बम (1945), कंप्यूटर (1946), सुपर सोनिक विमान (1947), ट्रांजिस्टर (1948), परमाणु विद्युत (1952), अंतरिक्ष में मानव (1957), उपग्रह संचार व्यवस्था (1970), बॉयो टेक्नोलॉजी (1975), पर्सनल कंप्यूटर(1980) का समावेश होता है।

ऊर्जा के नए स्रोत देखें तो सौर (सूर्य) ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जलीय ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा, परमाणु ऊर्जा तथा हाइड्रोजन ऊर्जा का समावेश होता है।

सौर ऊर्जा

सूर्य ऊर्जा का सबसे विराट स्रोत है। 20 वीं सदी के आरंभ में हुई एक खोज के अनुसार सूर्यप्रकाश यदि सेलेनियम ऊपर व्यवस्थित रूप से पड़े तो उसमें से बिजली पैदा होती है। ई.स. 1954 में ऐसा पहला सौर-सेल बनाया गया था, हालाँकि उसमें बहुत कम सफलता मिली थी। बाद में सौर-सेल बनाने में सिलिकॉन का उपयोग होने लगा। अधिकांश कृत्रिम उपग्रहों में ऊर्जा के माध्यम के रूप में सौर-सेल का उपयोग किया जाता है। सौर ऊर्जा के उपयोग में भारत विश्व में प्रथम स्थान पर है।

पवन-ऊर्जा (वायु ऊर्जा)

सदियों से पवन ऊर्जा का महत्त्वपूर्ण स्रोत रहा है। 20वीं सदी में पवनचक्की की टेक्नोलॉजी ने बड़े पैमाने पर पवन ऊर्जा उत्पादन का काम किया है। भारत में 20 हजार वाट जितनी पवनऊर्जा का उत्पादन संभव है। 20 वीं सदी के अंत तक भारत में 125 मेगावाट जितनी पवन ऊर्जा प्राप्त हुई है।

जल-ऊर्जा

जल भी ऊर्जा का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इसे विशेष रूप से जलविद्युत के रूप में प्राप्त किया जाता है। सागर या महासागरों की लहरों, तूफानों का उपयोग करके भी यह ऊर्जा पैदा की जाती है। ज्वार-भाटा से भी यह ऊर्जा प्राप्त की जाती है। फ्रांस तथा ब्रिटेन जैसे देशों में ज्वार पर आधारित चक्कियों की स्थापना की गई है। नदियों का पानी रोककर बाद में उसे तीव्र गति से बहाकर ऊर्जा प्राप्त करने के लिए टर्बाइन का उपयोग किया जाता है। इससे बड़े पैमाने पर ऊर्जा प्राप्त की जाती है।

भू-तापीय ऊर्जा

पृथ्वी के भूगर्भ में रही उष्मा ऊर्जा का उपयोग मानवजाति के लिए करने की रीति यानी भूतापीय ऊर्जा। पृथ्वी की पपड़ी के 12 किमी नीचे का तापमान 1000 से 4000 डिग्री सेल्सियस होता है। गीज़र या पाइप द्वारा इस ऊर्जा को बाहर निकालकर इससे बिजली पैदा की जाती है। भारत में यह कम बहुत कम मात्रा में हो रहा है। परंतु अमेरिका तथा न्यूजीलैंड में भूतापीय ऊर्जा बड़े पैमाने पर व्यावसायिक उपयोग में ली जाती है।

हाइड्रोजन और परमाणु ऊर्जा

हाइड्रोजन, अल्कोहल तथा परमाणु ऊर्जा आधुनिक समय के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ऊर्जा स्रोत माने जाते हैं। पानी के विद्युत अपघटन से हाइड्रोजन प्राप्त की जाती है, जिसके दहन से ऊर्जा मिलती है। उसका प्रयोग अंतरिक्ष रॉकेटों के लिए किया जाता है। जूल बर्न जैसे महान साहित्यकार ने भविष्यवाणी की थी कि भविष्य में हाइड्रोजन ऊर्जा का मुख्य स्रोत बनेगा। इसी तरह ऑक्सीजन के साथ अल्कोहल की प्रक्रिया से ऊर्जा उत्पन्न होती है। अनेक देशों में मोटर गाड़ी में पेट्रोल के साथ अल्कोहल को मिश्रित करके ईंधन के रूप में उपयोग किया जाता है। हाँलाकि हाइड्रोजन तथा अल्कोहल ऊर्जा दोनों पर वैज्ञानिक प्रयोग-संशोधन चल रहे हैं।

परमाणु ऊर्जा

परमाणु विखंडन तथा संलयन से जुड़ी ऊर्जा परमाणु ऊर्जा के रूप में पहचानी जाती है। परमाणु विखंडन प्रक्रिया के लिए रिएक्टर (भट्ठी) तैयार की जाती है। विश्व के अधिकतर देश परमाणु ऊर्जा की ओर मुड़े हैं। भारत भी धीरे-धीरे इस तरफ आगे बढ़ रहा है।

औद्योगिक उत्पादन

औद्योगिक क्रांति के बाद 20वीं सदी औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। 20वीं सदी औद्योगिक उत्पादन के साथ संलग्न है। 20वीं सदी के अंत भाग में विश्व की जनसंख्या 6 अरब पार कर गई है। एक ओर बस्ती बढ़ रही है उसके लिए पर्याप्त अनाज की पूर्ति तथा उसके जीवन के विभिन्न पहलुओं के लिए आवश्यक चीज-वस्तुओं का उत्पादन जरूरी बना है। अमेरिका, जर्मनी, नेदरलैंड और इज़रायल आदि कृषि उत्पादन के क्षेत्र में नवीनतम टेक्नोलॉजी का प्रयोग कर रहे हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद बड़े उद्योगों की शुरुआत हुई। प्लास्टिक, कंप्यूटर, उपग्रह जैसे आधुनिक टेक्नोलॉजी के उपकरणों के उत्पादन ने प्रमुख स्थान प्राप्त किया है। स्पेशियल इकोनॉमिक ज़ोन जैसे शब्द प्रचलित हुए हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद बड़े उद्योगों की शुरुआत हुई। प्लास्टिक, कंप्यूटर, उपग्रह जैसे आधुनिक टेक्नोलॉजी के उपकरणों के उत्पादन ने प्रमुख स्थान प्राप्त किया है। कपड़ा, रंग-रसायन, इस्पात, यातायात, हवाई जहाज, स्टीमर तथा संदेश व्यवहार के उद्योगों ने 20 वीं सदी में तेजी से प्रगति की है इनके साथ-साथ सेवा क्षेत्रों का भी खूब

विकास हुआ है। शहरीकरण के प्रसार ने आंतरिक ढाँचागत सुविधाओं के लिए औद्योगिक उत्पादनों को अनिवार्य बनाया है।

परिवहन तथा संदेशव्यवहार के साधन

विज्ञान टेक्नोलॉजी के विकास के साथ-साथ आवागमन-परिवहन और संदेश व्यवहार के साधनों में भी क्रांति आई है। ऊर्जा के नए स्रोतों के अनुरूप नए प्रकार के परिवहन साधन अस्तित्व में आए हैं। जमीन मार्ग, जल मार्ग तथा हवाई मार्ग में परिवहन को बाँटा गया है। सड़कों का निर्माण नवीन टेक्नोलॉजी के उपयोग के कारण इस क्षेत्र में परिवहन विकसित हुआ है। मोटर कार, बस, ट्रक और अंत में रेल परिवहन के युग की परिवर्तन श्रेणियाँ आई हैं। जल परिवहन मानो आर्थिक विकास का मापदंड बन गया है। भारत में लम्बे समुद्र तट के कारण जलपरिवहन का विकास हुआ है।

20वीं सदी में परिवहन क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण बात हवाई परिवहन के क्षेत्र में देखने को मिलती है। उसका विकास द्रुतगति से हुआ है। एक तरह से हवाई परिवहन विश्व के सांस्कृतिक-आर्थिक जीवन में मूलगामी परिवर्तन लानेवाला घटक बना है। हम विश्वग्राम की कल्पना का विचार इसके कारण ही कर सकते हैं। कम समय में बहुत दूरी की यात्रा कर सकने के कारण विश्व बहुत समीप आया है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद इसका बहुत विकास हुआ है। आज वह केवल यात्रियों को ले जाता है इतना ही नहीं है, बल्कि 'कुरियर सेवा' भी उस पर आधारित हुई है तथा 'कार्गो सेवा' उसकी एक महत्त्वपूर्ण इकाई है।

परिवहन माध्यमों में एक नवीनतम माध्यम 20 वीं सदी के अंतिम देश में देखने को मिला वह है पाइप लाइन परिवहन। पानी, तेल, गेसोलीन, पेट्रोलियम तथा गैस जैसे उत्पादनों को पाइपलाइन द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया जाता है। विश्व की शहरी आबादी मानो पाइपलाइन पर आधारित हो गई है। इसके कारण पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस उद्योग विकसित हुए हैं।

संचार के नए-नए साधनों की खोज से संदेश व्यवहार के क्षेत्र में खूब विकास हुआ है। 15वीं सदी मुद्रण टेक्नोलॉजी पर आधारित थी। माइकल फेराडे द्वारा विद्युत-चुंबकीय प्रेरण की खोज से संचार की दुनिया में क्रांति आई। ग्राहमबेल इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण नाम है। उनके द्वारा 1876 में की गई टेलीफोन की खोज विश्व की संचार क्रांति की आद्यस्थापक थी तो मोर्श ने टेलीग्राफ (तार) का विकास करके इस क्षेत्र में योगदान दिया। 20 वीं सदी के आरंभ में ही मार्कोनी ने बिना तार के संदेश भेज सकने में सफलता प्राप्त की और, बेतार संचार युग शुरु हुआ। हट्र्ज़ तथा भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बसु द्वारा विकसित विद्युत-चुंबकीय तरंगों का प्रयोग उसमें किया गया था। ई.स. 1920-1930 में रेडियो-टेलिविज़न की खोजों ने समग्र जनसमुदाय को संचार माध्यमों से जोड़ दिया। ई.स. 1962 में अंतरिक्ष में स्थापित उपग्रहों द्वारा लाइव टेलिविजन कार्यक्रम दिखाना शुरु हुआ तब तो लगा दुनिया मानो मनुष्य के बैठक कक्ष (ड्राइंग रूम) में पहुँच गई। 20वीं सदी के अंतिम दशकों में सेल्युलर फोन तथा कंप्यूटर द्वारा इस क्षेत्र में महत्तम क्रांति हुई। आज तो सेल्युलर फोन तथा कम्प्यूटर जीवन के अभिन्न अंग बन चुके हैं। एस.एम.एस. (शॉर्ट मैसेज सर्विस), ई-मेल, ट्विटर तथा अन्य एप्स दैनिक जीवन के घटक तत्त्व बन गए हैं।

जीवन विज्ञान में हुए परिवर्तन

ई.स. 1897 में जर्मन रसायनशास्त्री बूचर जैविक विज्ञान की खोज की। परिणाम स्वरूप विषाणु, जीवाणु जैसे सूक्ष्मजीवों के बारे में संशोधन आरंभ हुए। जीवाणु तथा विषाणु, मनुष्य, पशुओं और वनस्पतियों में किस तरह रोग उत्पन्न करते हैं, इसकी जानकारी प्राप्त हुई। इस विज्ञान के कारण पीलिया, चेचक, शरदी कमला

जैसी बीमारियों के कारणभूत वायरस तथा विषाणुओं की जानकारी प्राप्त हुई जिससे इनकी दवाएँ खोजना आरंभ हुआ। 20वीं सदी के पूर्वार्ध में जैव-रसायन में महत्त्वपूर्ण अनुसंधान हुए। जैविक क्रियाएँ कैसे काम करती हैं उनके लिए जीन शब्द प्रचलित हुआ। पेनिसिलीन तथा इंस्युलिन की खोज हुई। परिणामस्वरूप मृत्युदर में अच्छी खासी कमी आई। 20 वीं सदी के उत्तरार्ध में जेनेटिक विज्ञान पर विश्वस्तरीय संशोधन हुए। माइक्रोस्कोप तथा रेडियोलॉजी विज्ञान में इसमें क्रांति ला दी एक्सरे, अल्ट्रा सोनोग्राफी, कार्डियोग्राम, इको कार्डियोग्राम द्वारा शारीरिक रचनाओं और शरीर में रहे रोगों के बारे में ज्ञान बढ़ा।

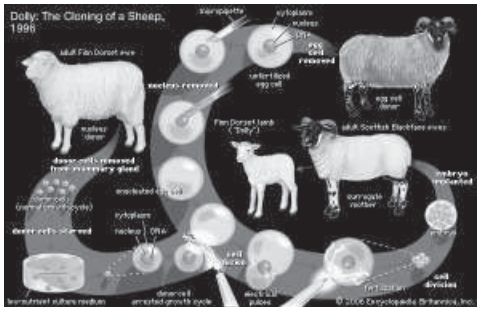

जीवन विज्ञान खोज

डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए. की खोज से मूलभूत जैविक मुद्दे समझने में मदद मिली। जेनेटिक कोड का अध्ययन शुरू हुआ, जिससे पैदा होने वाले बालक को रोगमुक्त करने में सफलता मिली। क्रीक तथा वाट्सन जैसे वैज्ञानिकों ने डी.एन.ए. का विश्लेषण किया। भारतीय मूल के महान वैज्ञानिक हरगोविंद खुराना तथा उनके साथी वैज्ञानिकों ने डी.एन.ए. का विश्लेषण 1970 में किया। कोहेन तथा बोयर जैसे वैज्ञानिकों ने जिनेटिक इंजीनियरिंग की स्थापना की। एंजाइम की खोज होने से मानव शरीर के लिए कम पड़नेवाले तत्त्वों पर काम हुआ। 1980 के दशक में एड्स वायरस पर संशोधन हुआ। ई.स. 1990 में कैंसर के जिनेटिकल कारणों की खोज में सफलता मिली। अनेक प्रकार के लेबोरेटरी परीक्षणों के कारण अस्तित्व प्राप्त जिनेटिकल इंजीनियरिंग 20वीं सदी की महानतम खोज है। इसने मानव को स्वस्थ तथा सशक्त बनाने के महत्त्वपूर्ण माध्यम के रूप में काम किया।

इन्फार्मेशन टेक्नोलॉजी (सूचना प्राद्योगिकी)

सूचना टेक्नोलॉजी, विशेष रूप से सूचना का संग्रह, भंडारण, संशोधन तथा अवगाहन पर रचित विज्ञान है। यह संदेश तथा कम्प्यूटर टेक्नोलॉजी से जुड़ा हुआ है। इस टेक्नालॉजी के परिणामस्वरूप मिनी तथा माइक्रो कम्प्यूटर का निर्माण हुआ है। टेलेक्स, फैक्स, कृत्रिम उपग्रहों तथा ऑप्टिकल फाइबर ने इस क्रांति को तीव्र गति प्रदान किया है। इस कारण दुनिया के किसी भी कोने में कुछ ही सेकंडों में सूचना का निर्वहन हो सकता है। सर्वप्रथम इलेक्ट्रानिक डिज़िटल कम्प्यूटर की शुरुआत (ई.स. 1946) अमेरिका में हुई। कम्प्यूटर क्रांति 20वीं सदी की संचार व्यवस्था में सबसे बड़ी क्रांति है। वह मानव जीवन-शैली तथा दर्शन को भी प्रभावित कर रही है। अधिकांश कामों में कागज का स्थान आज कम्प्यूटर ले रहा है। उसके व्यापक प्रयोग से बैंकिंग, स्वास्थ्य, परिवहन, कला इत्यादि में विकास हुआ है। मौसम की भविष्यवाणी करने में भी वह उपयोगी सिद्ध हुई है।

समकालीन विश्व पर साहित्य, कला और संदेश व्यवहार में आई क्रांति का प्रभाव

साहित्य कला तथा संदेशव्यवहार आई क्रांति के परिणामस्वरूप समकालीन विश्व में पिछली सदियों की अपेक्षा व्यापक परिवर्तन देखने को मिले हैं। प्राचीन काल तथा मध्ययुग में बौद्धिक अभिव्यक्ति मुख्य रूप से राज दरबारों या उच्च वर्ग तक सीमित थी या तो चर्च या पूजास्थलों तक मर्यादित थी। इसके अलावा अधिकांश लोग अपने सामाजिक, धार्मिक जीवन की अभिव्यक्ति सामान्य स्वरूप में ही करते थे, जिसे हम लोककला कहते हैं। साहित्य भी अधिकांशत: परंपरागत और लोककला के माध्यम के रूप में रहा था। कला का भी ऐसा ही था। 20वीं सदी में प्रिन्ट तथा इलेक्ट्रॉनिक एवं मास मीडिया के विकास से कला तथा साहित्य में भी आमूल परिवर्तन आए। साहित्य के सभी स्वरूप अब आम लोगों तक पहुँचते हैं। इंटरनेट-टेलिविज़न से विश्व के कोने-कोने तक मानव चेतना में फैल रहे हैं। जैसा कि रेडिक्लिफ कहते हैं, 'कला और शिल्प के स्वरूप में

अभिव्यक्ति पारंपरिक बौद्ध (बुद्धि का) संगठित स्वरूप है' जो परंपरानुसार किसी मानव समूह को परिभाषित करती है। परंतु वैश्वीकरण के समय में जैसा कि मैथ्यू ऑर्नाल्ड कहते हैं कि 'विश्व में कुछ सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है उससे संस्कृति हमें परिचित करवाती है।' लोगों को पता होने चाहिए कि वे एकसाथ अनेक संस्कृतियों के वाहक बने हैं। अमेरिका जैसे देश जहाँ बहुराष्ट्रीय संस्कृति विकसित हुई है। वैश्वीकरण की इस घटना ने समग्र विश्व की संस्कृति को प्रभावित किया है। विश्वभर की संस्कृतियों के बीच समानता पैदा की है। कई बार इसे नवसंस्थानवाद भी कहा जाता है। अब संस्कृति आर्थिक प्रवृत्ति की नई विचारधारा लेकर आती है। 19वीं सदी जिस तरह साम्राज्यवाद की सदी थी उसी तरह 20वीं सदी में सांस्कृतिक साम्राज्यवाद अस्तिस्व में आया है। नवीनतम स्वतंत्र राष्ट्रों ने यद्यपि विश्व व्यवस्था को चुनौती दी है। समकालीन इतिहास में ऐसी अनेक बातें दृष्टिगोचर होती हैं। नवीन आंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना (ई.स. 1974) संयुक्त राष्ट्र ने की। यह घोषणा 20वीं सदी में युगांतर मानी जाती है। आंतरराष्ट्रीय आर्थिक संबंधों की नई व्यवस्था में ही जोड़ा गया है जिसे हम ग्लोबल विलेज कहते हैं। फिल्म, उत्सवों, खेल-कूद को पूरे विश्व में प्रसारित किया जाता है, जिससे एक विचार समग्र विश्व में पहुँच जाता है। महात्मा गांधी, मार्टिन लूथर किंग, नेल्सन मंडेला, मदर टेरेसा जैसे महामानव समग्र विश्व में पूजनीय हैं। इसी कारण उनका मानवतावाद समग्र विश्व में फैल गया है।

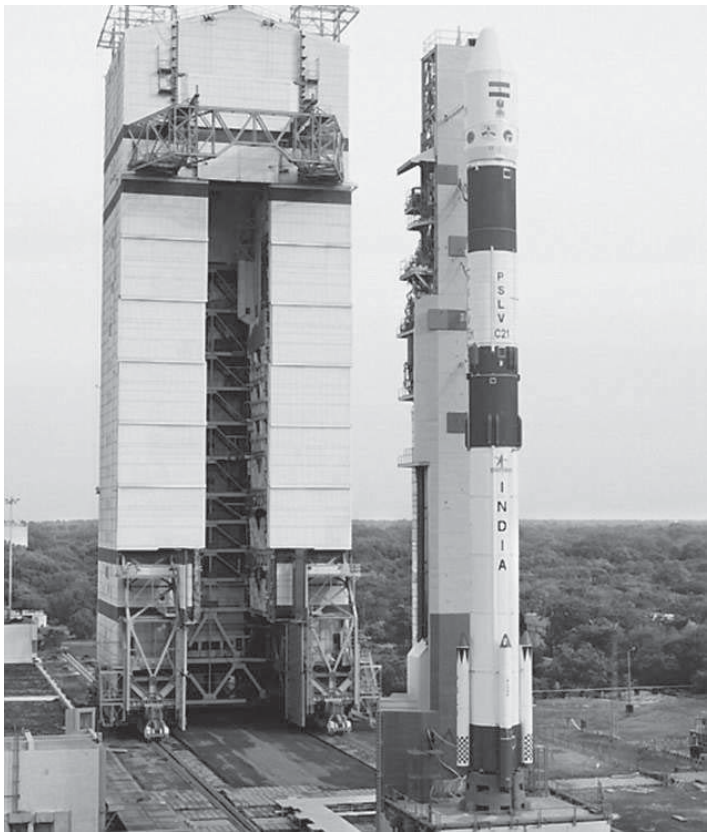

P.S.L.V. – सेटलाइट लांचर

समूह माध्यम मुद्रण और बीजाणु

सिनेमा, टेलिविज़न, रेडियो तथा समाचारपत्र जैसे समूह माध्यम का विकास सभी बाबतों में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। 19वीं सदी के अंतिम वर्षों (ई.स. 1895) में जनमा सिनेमा आज विश्वभर के लोगों के लिए मनोरंजन का महत्त्वपूर्ण साधन है। भारत में (ई.स. 1813) दादा साहब फालके ने 'राजा हरिशचंद्र' नामक फिल्म बनाकर 'भारतीय फिल्म युग' की शुरुआत की। यूरोप तथा अमेरिका में 20वीं सदी के आरंभ में बड़े पैमाने पर फिल्म उद्योग शुरू हो चुका था। आज तो विश्व की लगभग तमाम भाषाओं में फिल्म बनती है। नृत्य तथा नाटक की भाँति सिनेमा भी कला स्वरूप पा चुका है। हालाँकि मुद्रित तथा इलेक्ट्रॉनिक माध्यम की टेक्नोलॉजी के कारण सिनेमा का जन्म हुआ था। प्रथम विश्वयुद्ध के समय फ्रांस फिल्म उद्योग में अग्रगण्य था। बाद में विश्वभर में फिल्म उद्योग विकसित हुआ। चार्ली चैप्लिन, सर्गेई आइंस्टाइन, आकिरा कुरोसाना, सत्यजीत रे, अल्फ्रेड हिचकॉक और स्टीफन स्टीलबर्ग आदि लोगों ने दुनियाभर के लोगों में सिनेमा के प्रति दीवानगी पैदा की है।

संदेश तथा यातायात के महत्त्वपूर्ण विकास के साथ-साथ समाचारपत्र या अखबार ने सामान्य लोगों के बीच अपना स्थान बनाये रखा है। टी.वी और रेडियो के आने के बाद भी उसका आकर्षण कम नहीं हुआ है। दुनियाभर में दैनिक समाचार पत्र अलग-अलग स्वरूप में निकलते हैं। भारत में राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर हजारों समाचारपत्र छपते हैं।

किसी भी राष्ट्र की राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक स्थिति का चित्रण करने में मुद्रित माध्यम का खूब महत्त्व है। वे जनमत को प्रभावित करते हैं। खोजी पत्रकारिता का भोग बनकर अनेक सरकारें टूटी हैं। अमेरिका में वाटरगेट कौभांड या भारत में बॉफोर्स कांड इसके उदाहरण हैं। अमेरिका में एसोसिएटेड प्रेस, ब्रिटेन में राइटर्स, फ्रांस में एजेन्सी समाचार एजेन्सी काम कर रही हैं। भारत में यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया तथा प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया सरकारी समाचार संस्थाएँ हैं। साक्षरता वृद्धि के साथ-साथ पत्रकारत्व का भी विकास हुआ है। समाचार पत्रों में फोटोग्राफों का भी एक विस्तृत विभाग दिखाई देता है। इतना ही नही विज्ञापन या सूचनाओं का विकास भी इससे जुड़ा है। ई.स. 1920 में रेडियो लोगों के लिए संचार का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम बन चुका है। बी.बी.सी. और वॉयस ऑफ अमेरिका को दुनियाभर में ख्याति मिली है। भारत में आकाशवाणी अत्यंत लोकप्रिय है। इतना ही नहीं 20वीं सदी के अंत में एफ. एम. रेडियो चैनल खूब लोकप्रिय हुए हैं।

जनसंचार माध्यम में टेलिविजन क्रांति का प्रारंभ (ई.स. 1936) में उसके प्रथम प्रसारण से हुआ। आज दुनियाभर के लोग टेलिविज़न से जुड़े हैं। उपग्रह, टेक्नोलॉजी के विकास के कारण उसमें व्यापक परिवर्तन आए हैं। समाचार और उसके कारण सामाजिक बाबतों में जागृति आई है। केबल नेटवर्क ने उसमें भी क्रांति ला दी है। जिसके कारण अनेक चैनल देखने की सुविधा प्राप्त हुई है। सी.एन.एन., एशियन एज़, डिस्कवरी, नेशनल जियोग्राफी तथा स्टार जैसी आंतरराष्ट्रीय चेनलें करोड़ों दर्शकों का मनोरंजन कर रही हैं। भारत में ई.स. में 1980 दूरदर्शन की सरकारी संस्था के रूप में स्थापना हुई।

समाचारपत्र-पत्रिकाओं तथा सोशल मीडिया का समाज और संस्कृति पर प्रभाव

विज्ञान-टेक्नोलॉजी के इस अविष्कार ने समाज और संस्कृति पर सर्वाधिक प्रभाव डाला है। एक तरफ उसने कला, साहित्य तथा संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया है तो दूसरी ओर विश्वशांति के लिए खतरा भी उत्पन्न किया है। लोगों का जीवनस्तर सुधरा है तो उनकी मतिभ्रंश करने में भी उसका योगदान है। आज समाचारपत्र और सोशियल मीडिया छोटी-सी सामान्य घटना को तिल का ताड़ बना देते है, विवाद पैदा करता है, अपनी टी.आर.पी. बढ़ाने के लिए मीडिया किसी हद तक जा सकता है और लोगों की भावनाओं के साथ खिलवाड़ कर सकता है। एक तरफ समाज उससे शिक्षित होता है तो दूसरी तरफ शांति सह-अस्तित्व जैसी भावनाशील बातों में मीडिया द्वारा कान भरे जाने से परस्पर विरोधी बनते हैं। प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मन, इटालियन तथा फ्रांसीसी मीडिया ने इसी तरह का काम किया था। भारतीय मीडिया भारतीयों के मूलभूत प्रश्नों को उजागर करने के बदले राजनीतिक चर्चाओं में रचा-पचा रहता है। वास्तव में मीडिया संचार प्रणाली का एक सशक्त माध्यम है। परंतु असत्य लोगों की वृत्ति के कारण यह काफी बदनाम हुआ है।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) समकालीन विश्व में विज्ञान-टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में हुए परिवर्तनों को समझाइए।

(2) ऊर्जा (शक्ति) के विभिन्न स्रोतों की जानकारी दीजिए।

(3) समाचारपत्रों तथा सोशियल मीडिया का समाज पर कैसा प्रभाव पड़ा है?

(4) इंफॉर्मेशन टेक्नोलॉजी ने 'विश्व को एक गाँव' बना दिया है, चर्चा कीजिए।

(5) जीवन विज्ञान में हुए संशोधनों को समझाइए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) एंटीबायोटिक दवाओं से मानवजाति को क्या लाभ हुए?

(2) समाचारपत्रों का सामाजिक महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

(3) औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करनेवाले परिबल समझाइए।

(4) संचार माध्यम में टेलिविजन और रेडियो की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

(5) 20 वीं सदी के परिवहन यातायात की रूपरेखा दीजिए।

3. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) प्रथम सोलर सेल कब बनाया गया?

(अ) 1945 (ब) 1946 (क) 1947 (ड) 1943

(2) विज्ञान-कथा से जुड़ा महान साहित्यकार कौन है?

(अ) वड्र्सवर्थ (ब) कार्ल मार्क्स (क) जूलबर्न (ड) रस्किन

(3) जैविक विज्ञान का शोधकर्ता वैज्ञानिक कौन है?

(अ) बूचर (ब) बिथोवन (क) लेनिन (ड) रुदरफोर्ड

(4) टेलीफोन की खोज कब हुई?

(अ) 1875 (ब) 1876 (क) 1877 (ड) 1888

(5) डी.एन.ए. पर अनुसंधान कार्य करनेवाले भारतीय मूल वैज्ञानिक कौन थे?

(अ) अमर्त्य सेन (ब) हरगोविंद खुराना

(क) राधाकृष्णन् (ड) ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

• • •